श्रीः

हितोपदेशे मित्रलाभः

व्याकरणाचार्य

पण्डितश्रीविश्वनाथशर्मणा

'विमला'ख्यसंस्कृत-हिन्दीव्याख्यया

समलङ्कृतः सम्पादितश्च

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

भूमिका

हितोपदेश ग्रन्थ का अर्थ है वह पुस्तक जो भलाई का ज्ञान दे। यथार्थ में इस पुस्तक के पढ़ने वालों को भलाई-बुराई का ज्ञान होकर; भलाई करना, बुराई से दूर रहना, इसका उपदेश मिलता है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि—इसके पढ़ने से संस्कृत में पटुता तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की वाक्-चातुरी एवं नीतिशास्त्र का ज्ञान होता है। जिस प्रकार कच्चे घड़ पर जो ही रंग लगा दिया जाता है वही रंग बना रहता है उसी प्रकार कथाओं के द्वारा बालकों के मन में जो नीतिशास्त्र का ज्ञान भर दिया जाता है वह उनके मन में सदा के लिए बैठ जाता है। बाल्यावस्था में न बुद्धि ही इतनी परिपक्व रहती है कि कठिन विषय को समझ सके तथा न धैर्य ही उतना रहता है कि उस कठिन विषय को सुनने में मन लगाये, किन्तु सरल कथाएँ सुनने को उनका जी चाहता है और वे उन कथाओं को समझ भी सकते हैं, इसलिए महाविद्वान् विष्णु शर्मा ने कौवे, कछुए, गीदड़, बैल, हरिण और चूहों की कथाओं के द्वारा लड़कों को अमृतपान कराया है। औषधि खाने में कड़वी होती है, इसलिये औषधि खाने को जी नहीं चाहता, किन्तु जब मधु के साथ औषधि दी जाती है तो वह खाने के योग्य होती है और उसका परिणाम भी अच्छा होता है। इसी प्रकार कथारूप मधु के द्वारा नीतिशास्त्र-रूप औषधि पिलाई जाती है। विष्णु शर्मा ने राजपुत्रों को शिक्षित करने के लिए पञ्चतन्त्र का प्रणयन किया। उसी पञ्चतन्त्र का सार लेकर यह हितोपदेश बना है। हितोपदेश का संग्रह किसने किया यह विषय निश्चित नहीं है, किन्तु मूल पुस्तक पञ्चतन्त्र के लेखक विष्णु शर्मा के विषय में लोगों का मत यही है कि वे ही चाणक्यापर नामक अर्थशास्त्र के लेखक कौटिल्य हैं। ये चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री थे। इन्हीं का अपर नाम वात्स्यायन भी है जिन्होंने गौतम के न्यायसूत्र पर भाष्य लिखा है।

दो हजार वर्ष से ऊपर हुए जबसे यह पुस्तक प्रचलित है, करोड़ों बालकों को इस ग्रन्थरत्न के द्वारा उपदेश मिलता आ रहा है। इस ग्रन्थ का अनुवाद,

जगत् की जितनी समृद्धिशाली भाषायें हैं, उनमें हुआ है। इसी ग्रन्थ के आधार पर अन्य भाषाओं में भी उपदेशप्रद कथायें लिखी गयी हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ को संसार भर से यह प्रतिष्ठापत्र (Certificate) मिल गया है कि बालकों के लिए उपदेशप्रद ऐसा ग्रन्थ संसार में विरल है।

यह ग्रन्थ न केवल नीतिशास्त्र का उपदेश देता है; किन्तु बालकों को संस्कृत सिखाने के लिए यह अद्वितीय पुस्तक है। इसके सरल सुन्दर वाक्य अभ्यास के योग्य हैं, जिनके अभ्यास से अनायास संस्कृत आ जाती है। एक ही विषय को भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी युक्ति से कैसे समर्थन करते हैं तथा ऐसी परिस्थिति में तत्त्व विषय ग्रहण कैसे करना, इसमें बड़ी बुद्धिमत्ता है। इस हितोपदेश का मित्रलाभ प्रकरण बहुमूल्य वस्तु है। इस प्रकार इस पुस्तक के अभ्यास से अनेक गुण प्राप्त होते हैं।

पं० श्री विश्वनाथ झा व्याकरणाचार्य ने इस पुस्तक के मित्रलाभ प्रकरण की सरल संस्कृत व्याख्या तथा हिन्दी व्याख्या लिखकर बिना गुरु के ही अध्ययन योग्य बना दिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि इस सरल व्याख्या से छात्रों का परम उपकार साधित होगा।

सरस्वतीभवन

ग० सं० कालेज, काशी

५-८-१९५१

श्रीबलदेव मिश्र

संक्षिप्त कथासार

कथामुख

भगवती भागीरथीके तटवर्ती पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें सुदर्शन नामक सर्वगुणसम्पन्न राजा रहता था। एक दिन उसने किसी विद्वान्‌के मुँहसे दो श्लोक सुने, जिनका आशय था-"१–सपूर्ण सन्देहोंका निवारक, परोक्ष अर्थोंका भी दिग्दर्शक शास्त्ररूपी लोचन जिसके पास नहीं है वह आँखें रहते हुए भी अन्धा ही है। २–यौवन, सम्पत्ति, अधिकार और अविवेक इनमें प्रत्येक अनर्थकारी ही है यदि चारों एक ही व्यक्तिमें हों तब तो कहना ही क्या।"

यह सुनकर अपने अशास्त्रज्ञ एवं कुमार्गगामी पुत्रोंके विषयमें उद्विग्न हुआ राजा सोचने लगा—पुत्रोंका मूर्ख होना पिता के लिए सदैव लज्जास्पद होता है। जिस किसीका भी हो गुणवान् और विद्वान् पुत्र ही सर्वत्र सम्मान पाता है—आदि, ये मेरे मूर्ख पुत्र कैसे गुणवान् होंगे ? बहुत सोचकर राजाने विद्वानोंको बुलाया और कहा—क्या आप लोगोंमें कोई ऐसा व्यक्ति है जो मेरे मूर्ख और कुमार्गगामी पुत्रोंको नीतिशास्त्रका उपदेश देकर गुणी और सन्मार्गगामी बना सकता हो ? तब विष्णु शर्मा नामके महापण्डितने कहा—राजन् ! आपके इस उच्च कुलमें उत्पन्न इन पुत्रोंको मैं छ महीनेमें ही नीतिशास्त्रमें निष्णात कर सकता हूँ। राजा प्रसन्न हुआ और बोला—कीड़ा भी पुष्पके सहवाससे देवताओं तकके मस्तकपर चढ़ जाता है तो आप जैसे गुणज्ञके सहवाससे मेरे पुत्र भी अवश्य गुणी हो जायँगे, अतः मैं इन्हें आपको सौंपता हूँ। विष्णुशर्माने राजपुत्रोंको उपदेश देना प्रारम्भ किया—

राजभवनमें बैठे हुए राजपुत्रोंको विष्णुशर्मा कथाओंके द्वारा नीतिशास्त्रका उपदेश देने लगे—उन्होंने कहा–विद्वानोंका समय तो शास्त्रोंकी चर्चामें बीतता है, किन्तु मूर्ख दुर्व्यसन, निद्रा या झगड़ोंमें अपना समय व्यतीत करते हैं। अतः मैं आप लोगोंके विनोदके लिए कौवा, कछुआ आदिकी उपदेशपूर्ण कहानियाँ सुनाऊँगा। राजपुत्रों ने कहा—कहिये महाराज ! तब विष्णु शर्मा बोले–सुनो, पहिले मित्रलाभका प्रकरण कहता हूँ, जिसका यह प्रथम श्लोक है

"साधनहीन धनहीन भी बुद्धिमान् व्यक्ति मित्रतासे शीघ्र ही अपने कार्योंको

कौवे, कछुए, मृग और चूहेकी तरह सिद्ध कर लेते हैं।" राजपुत्रोंने पूछा—कौवे आदिने अपना काम कैसे सिद्ध किया था? विष्णुशर्माने कहा—

गोदावरीके किनारे एक विशाल सेमलका पेड़ था, जिसमें विभिन्न दिशाओंसे आते हुए पक्षी रात्रिको निवास करते थे। एक दिन प्रातःकाल लघुपतनक नामका कौवा ज्योंही उठा सामने साक्षात् यमराज सदृश पाशधारी व्याधको देखकर सोचने लगा—आज प्रातः ही अपशकुन हुआ, न जाने क्या होगा? यह सोचकर उसीके पीछे-पीछे चल दिया। कुछ दूर चलकर व्याधने चावलके दाने बखेरकर अपना जाल फैलाया। लघुपतनक छिपकर उसका कृत्य देखने लगा—चित्रग्रीव कपोतराज अपने आश्रितों सहित आकाशमें उड़ रहा था। निर्जन जंगलमें चावलोंको देख उसे सन्देह हुआ, उसने कहा—इस भयानक जंगलमें चावल कहाँ से आये। कहीं लोभी पथिक और दम्भी व्याघ्रकी-सी हमारी भी दशा न हो। कबूतरोंने कहा यह कैसे? वह बोला—

कथा १

चित्रग्रीवने कहा—मैंने एक दिन दक्षिणके वनोंमें घूमते हुए देखा कि एक बूढ़ा बाघ स्नान करके हाथमें कुशा लिये हुए कह रहा है—'ऐ राहगीरों! यह सोनेका कड़ा ले लो।" यह सुनकर एक लोभी पथिक ने सोचा बड़े भाग्यसे ऐसा अवसर आता है, किन्तु इसमें प्राणकी बाजी है, अतः नहीं लेना चाहिए। पर बिना संकट सहे धनोपार्जन हो भी नहीं सकता, अतः इससे पूछ तो लूँ! उसने कहा—तुम्हारा कंकण कहाँ है? बाघने हाथ फैलाकर दिखा दिया। तब पथिकने कहा—तुम हिंसक हो, मैं तुम्हारा विश्वास कैसे करूँ। बाघ बोला—"मैं अपने यौवनकालमें बड़ा ही दुर्वृत्त था, मैंने सैकड़ों जीवोंकी हत्या की, जिससे मेरे स्त्री-पुत्र सब नष्ट हो गये। वंशहीन हुआ मैं एक धर्मात्माके उपदेशसे इस धर्ममें प्रवृत्त हुआ हूँ। मैं वृद्ध, नख-दन्त विहीन हूँ, क्या फिर भी मेरा विश्वास नहीं करोगे? अपने हाथका सुवर्णका कड़ा मैं दूसरे को दे रहा हूँ, इसीसे तुम मेरी निर्लोभता समझ सकते हो। अहो दुनियाँ भी क्या गतानुगतिक है। केवल जातिका बाघ होनेसे मेरा विश्वास नहीं करती।" इस प्रकार कई धर्मशास्त्र वचन सुनाकर उसने लोभीसे कहा—तुम इस सरोवरमें स्नानकर कड़ेको ले लो। वह उसके वचनोंपर विश्वास करके ज्योंही स्नान करने गया तो बड़े कीचड़में फँस गया। तब मन-ही-मन बाघ प्रसन्न हुआ और बोला

'अरे तुम कीचड़में फँस गये; मैं तुम्हें निकालता हूँ' कहकर उसकी ओर लपका। पथिक सोचने लगा–शास्त्रोंको जानते हुए भी मैं उनपर विश्वास न करके लोभके कारण इस दुष्टकी बातोंमें आ गया, इतना सोचते हुए उसको बाघ मारकर खा गया। चित्रग्रीवने कहा—इसलिये मैं कहता हूँ—बिना सोचे-विचारे कोई काम नहीं करना चाहिये। तब एक कबूतर गर्वसे बोला–वृद्धोंकी बात केवल आपत्तिमें काम देती है, सदा उसीके भरोसे रहा जाय तो खाने का भी ठिकाना न रहे। यह कहकर सब कबूतर जालपर बैठ गये और फँस गये, तब उन्हें चित्रग्रीवकी बात समझमें आयी, किन्तु अब और कोई उपाय न देखकर वे सब मिलकर जालको ही लेकर उड़ गये। व्याध भी दूर तक इसी आशासे उनके पीछे दौड़ा कि, ये गिरेंगे तब मेरे हाथ लगेंगे, किन्तु जब वे आँखोंसे ओझल हो गये तो वह लौट गया। चित्रग्रीवने कबूतरोंसे कहा, गण्डकी तीरपर मेरा मित्र हिरण्यक चूहा रहता है, वहाँ चलो। वह इस जालको काट देगा। सब वहाँ पहुँचे, पहिले तो कबूतरोंके डरसे हिरण्यक बिलमें छिप गया, किन्तु चित्रग्रीवका स्वर पहिचानकर बाहर आ उसका पाश काटने लगा तब चित्र-ग्रीव ने कहा—'पहिले मेरे इन आश्रितोंका पाशच्छेदन करो, अपनी अपेक्षा आश्रितोंकी रक्षा करना परमधर्म है'—यह सुनकर हिरण्यक बड़ा प्रसन्न हुआ और कई प्रकारके शास्त्रीय वाक्योंसे उसे सान्त्वना देने लगा।

उसकी इस वाणीसे लघुपतनक कौवा बड़ा प्रसन्न हुआ और उसकी प्रशंसा करते हुए बोला—तुम जैसे शास्त्रज्ञसे मैं भी मित्रता करना चाहता हूँ। तब हिरण्यकने कहा—भक्ष्य और भक्षककी प्रीति विपत्तिका ही कारण होती है। जैसे सियारने मृगको जालमें फँसा दिया था, बेचारे कौवेने उसकी रक्षा की। कौवा बोला यह कैसे—हिरण्यकने कहा—

कथा २

मगध देशमें चम्पकवती नामक महावन है। वहाँ एक मृग और कौवा बहुत दिनोंसे मित्रतापूर्वक रहते थे। एक दिन घूमते हुए मृगको एक सियार-ने देखा और सोचने लगा—यह मृग बड़ा मोटा है, इसका मांस बड़ा स्वादु होगा, कैसे खाया जाय। अच्छा, पहिले इसे विश्वास दिला दूँ, यह सोचकर बोला–हे मित्र! तुम कुशली तो हो? मृगने कहा–तुम कौन हो? उसने कहा—मैं क्षुद्रबुद्धि नामक सियार हूँ, यहाँ मेरा कोई मित्र नहीं आज तुम जैसा मित्र

पाकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ, अब मैं तुम्हारा अनुचर रहूँगा। मृगने स्वीकार कर लिया। सायंकाल वे दोनों मृगके वासस्थानपर गये। वहाँ उसके मित्र सुबुद्धि ने पूछा—यह कौन है ? मृगने कहा—यह सियार मेरा मित्र बनने आया है, कौवा बोला—सहसा आनेवालोंसे मैत्री अच्छी नहीं, क्योंकि कहा भी है—जिसके कुल और व्यवहारका पता नहीं उसे स्थान नहीं देना चाहिये। बिल्लीके दोषसे बूढ़े जरद्गवकी हत्या हुई थी उन दोनोंने कहा—यह कैसे ? कौवा बोला—

कथा ३

गङ्गाके किनारे गृध्रकूट नामक पर्वतपर एक महान पाकरका वृक्ष था। अत्यन्त वृद्ध व अशक्त हुआ जरद्गव नामक गीध उसमें रहता था। वहीं रहनेवाले पक्षी अपने आहारमें-से कुछ उसे भी दे दिया करते थे। वह उनके बच्चोंकी रखवाली करता था, एक दिन दीर्घकर्ण नामका एक बड़ा बिलाव वहीं आया। उसे देखकर पक्षि-शावक चिल्लाने लगे। जरद्गव बाहर निकला, उसे देखते ही पहिले तो बिलावके होश उड़ गये, बादमें चतुरता व धैर्यसे कार्य निकालनेको सोचकर बिलाव गीधके पास जाकर बोला—मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। गीधने कहा—तुम कौन हो ? उसने उत्तर दिया मैं मार्जार हूँ। गीधने डाँट कर कहा—दूर हट यहाँसे, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूंगा। बिलाव बोला, केवल बिलाव होने मात्रसे मुझे कैसे मार लोगे, मेरा व्यवहार देख लो। गीधने कहा—कहो, यहाँ क्यों आये हो ? उसने कहा—मैं गंगातटपर नित्य स्नान-दान, जप-तप आदि करता हुआ चान्द्रायण करता हूँ, सभी मेरा विश्वास करते हैं, आप मुझसे विद्या एवं अवस्थामें वृद्ध हैं, अतः कुछ धर्मशास्त्र सुनने आया हूँ। यदि मुझ अतिथिको आप मारना चाहें तो मार सकते हैं, पर यह गृहस्थधर्म-के अनुकूल नहीं। अभ्यागत शत्रु भी हो तो उसे भी नहीं मारना चाहिए। गीधबोला—बिलाव हिंसक होते है और यहाँ पक्षियोंके बच्चे रहते हैं इसलिये मैंने ऐसा कहा। तब बिलाव बोला—अन्यत्र विविध विवाद करते हुए भी अहिंसा को सभी शास्त्रकारोंने परम धर्म माना है और मैंने उसे ही स्वीकार किया है।

इस प्रकार गीधको विश्वास दिलाकर वह बिलाव उसी वृक्षकोटरमें रहने लगा और दिनमें पक्षियोंके इधर-उधर जाने पर उनके बच्चों को मारकर खाने लगा। जिसके बच्चे मारे गये थे उन्होंने इधर-उधर खोजना शुरू किया तो बिलाव तो धीरेसे खिसक गया और गीधके कोटरे में हड्डियोंका ढेर देखकर

उसको हत्यारा समझकर पक्षियोंने मार डाला। इसीलिये मैं कहता हूँ—
"अज्ञातकुलशील व्यक्तिको आश्रय नहीं देना चाहिए।"

तब सियारने क्रोधमें आकर कहा—जब पहिले आपसमें मित्रता हुई थी तब आप भी तो अज्ञातकुलशील ही रहे, परन्तु आज आप दोनोंमें मित्रता कितनी प्रगाढ हो गयी है। मेरे तो जैसे मित्र ये हैं वैसे ही आप भी हुए। तब मृगने कहा—व्यर्थका विवाद करनेसे क्या लाभ, हम सभी वार्तालाप करते हुए सुखसे रहेंगे, क्योंकि कोई किसीका मित्र या शत्रु नहीं होता। व्यवहारसे ही मित्रता अथवा शत्रुता होती है, कौवा मान गया।

एक दिन सियारने मृगको वनमें पास ही एक हरा-भरा खेत दिखाया, मृग नित्य वहाँ जाकर चरने लगा। यह देखकर खेतके स्वामीने वहाँ जाल फैला दिया और मृग उसमें फँस गया। इतनेमें सियार वहाँ आया और अपनी कपट-पटुतापर मन ही-मन प्रसन्न हुआ कि मुझे इसकी मांसास्थि खानेको मिलेंगे। सियारको देखकर मृगने कहा—हे मित्र! शीघ्र मेरे इस जालको काटकर मुझे मुक्त करो। तब सियारने देखा जालकी गाँठें पक्की हैं और बोला-आज रविवार है, मैं इसे दाँतसे स्पर्श नहीं कर सकता, कल काट दूँगा। यह कहकर पास ही छिप गया। उधर सुबुद्धि कौवा मृगके रातमें न लौटनेसे चिन्तित हुआ उसे ढूँढने निकला और पाशमें फँसा देखकर बोला—यह क्या? चित्राङ्गने कहा—मित्र। तुम्हारी बात न माननेका यह फल है। दुष्ट सियार भी कहीं पास ही में छिपा है।

प्रातःकाल लाठी लिये खेतके स्वामी को आते देख कौवेने मृगसे कहा—हाथ-पाँव फैलाकर श्वास रोक लो; मैं धीरे-धीरे तुम्हारी आँखें कुरेदता हूँ, खेतका स्वामी तुम्हें मरा हुआ समझेगा और जालकी गाँठें खोल देगा। मेरे शब्द करने ही तुम भाग जाना। उसने ऐसा ही किया। कौवेको आँखें कुरेदता देख किसानने मृगको मरा समझा और जाल खोल दिया। कौआ बोला, और मृग जल्दीसे भाग गया। किसानने लाठी फेंकी जो पासमें छिपे दुर्बुद्धि सियारको लगी। वह मर गया, उसे अपने कुकृत्यका तत्काल फल मिल गया। इसलिये नीतिकारोंने कहा है—भक्ष्य-भक्षककी मित्रतासे विपत्ति बढ़ती है। तुम हमारे शत्रुपक्षके हो, तुमसे हमारी मित्रता कभी भी नहीं हो सकती, यह कहकर हिरण्यकने कई शास्त्रों के उदाहरण लघुपतनकको सुनाये, किन्तु लघुपतनकने कहा मैंने सब तुम्हारी बातें सुन लीं और मान भी लीं, पर मैं तुमसे मैत्रीका संकल्प कर चुका हूँ, अन्यथा ऐसा सुहृद् न मिलनेपर मैं प्राण त्याग दूँगा। तब हिरण्यकको दया आ गयी

और उसने सहृदय समझकर मैत्री स्वीकार कर ली। वे दोनों अपनी-अपनी आहार-क्रियासे निवृत्त होकर वहाँ नित्य सुखालाप करने लगे।

एक दिन लघुपतनकने हिरण्यकसे कहा—मित्र यहाँ अकाल पड़ गया है लोग अब काकबलि (भक्ष्य नहीं) छोड़ते, अतः मैं दण्डकारण्यमें कर्पूरगौर नामक तालाबके पास जाऊँगा जहाँ मेरा मित्र मन्थर (कछुआ) रहता है वह मुझे वहाँ अच्छे भोज्य पदार्थ देगा। हिरण्यकने कहा यदि ऐसा है तो मुझे भी वहीं ले चलो, मैं मित्रहीन होकर यहाँ कैसे रह सकता हूँ। लघुपतनकने स्वीकार कर लिया और उसे पीठपर चढ़ाकर वहाँ ले गया। उसका मन्थर से परिचय कराया और उसकी प्रशंसा उसे सुनायी। मन्थर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सविशेष हिरण्यकका सत्कार किया और उसके निर्जन वनमें आनेका वृत्तान्त पूछा। हिरण्यकने कहा—

कथा ४

चम्पका नगरीमें संन्यासियोंका एक मठ था। वहाँ चूड़ाकर्ण नामक एक संन्यासी, भिक्षासे बचे हुए अन्नको खूँटीमें टाँग देता था जिसे उछल-उछलकर मैं खा लिया करता था। एक दिन उसके यहाँ वीणाकर्ण नामक उसका मित्र संन्यासी आया। रातको दोनों परस्पर कथालाप करते हुए सोये, चूड़ाकर्ण बीच-बीचमें टूटे बाँसको मुझे डरानेके लिये जमीनपर पटकता रहता था। वीणाकर्णको यह बुरा लगा। उसने कहा—तुम्हें मेरी बातें अच्छी नहीं लग रही हैं जो तुम दूसरी ओर ध्यान देकर बार-बार बाँस पटक रहे हो। उसने कहा नहीं, मैं तुम्हारी बातें सुन रहा हूँ, पर यह दुष्ट चूहा इस खुंटीमें टँगे मेरे भिक्षान्नको खा जाता है, अतः बीचमें उसे डरानेके लिए बाँस पटक रहा हूँ।

वीणाकर्णने देखा और कहा—छोटा-सा चूहा इतना दूर नहीं उछल सकता इस चूहेके उछलनेमें कुछ-न-कुछ कारण है, यह कहकर वीणाकर्णने कुदाल लेकर खोदते हुए मेरे बिलसे मेरा सारा संचित धन निकाल लिया। तबसे मैं शक्ति-उत्साहहीन हो गया और अपना आहार भी नहीं जुटा सकता था। यह देखकर मैंने सोचा मुझे अब यहाँ नहीं रहना चाहिये और यह वृत्तान्त किसीसे कहना भी नहीं चाहिए। क्योंकि अर्थनाश, मनका सन्ताप, घरका दुश्चरित, अपना ठगा जाना व अपमान दूसरोंपर प्रकट नहीं करना चाहिए। दूसरोंके भरोसे जीना भी ठीक नहीं, इसी चिन्तामें

दिन बीत रहा था कि भाग्यसे इस लघुपतनकसे मित्रता हो गयी । इस मित्रने मुझे यहाँ पहुँचा दिया । अब तो आपके साथ मुझे स्वर्गसुखका अनुभव हो रहा है । मन्थरने कहा — तुमने अत्यन्त संचय किया जिससे यह दशा हुई । संचय नित्य करना चाहिये पर अतिसंचय नहीं । देखिये अतिसंचयशील जम्बुकको धनुषने मार डाला । वे दोनों (हिरण्यक-लघुपतनक) बोले—कैसे ? मन्थरने कहा-

कथा ५

कल्याणकटकनिवासी भैरव नामक व्याध एक दिन मृगोंकी खोजमें विन्ध्याटवीमें गया । एक मृगको मारकर ज्योंही जा रहा था तो मार्गमें उसने एक भीषणाकृति सूअर देखा । मृगको भूमिपर रखकर उसने सूअरको बाण मारा, सूअरने भी घोर गर्जना करके उस व्याधको मार डाला । उन दोनोंकी इस उछल-कूदमें एक सर्प भी पैरोंसे कुचलकर वहीं मर गया । इतने ही में दीर्घराव नामक सियार घूमता हुआ वहाँ आया । मृग, व्याध, सूअर तथा सर्पको मरा हुआ देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और सोचने लगा आज मुझे खूब भोजन मिल गया । तीन महीने तक मैं निश्चिन्त होकर भोजन कर सकता हूँ, क्योंकि एक महीने तक व्याधका भक्षण होगा, दो महीने तक मृग और सूअरका, एक दिनके लिये सर्प हो जायगा, अतः आज केवल धनुषमें लगी सूखी चमड़ेकी डोरीसे काम चला लूं । यह सोचकर उसने धनुषकी डोरीको खाना प्रारंभ किया ज्योंही डोरी धनुषसे पृथक् हुई, धनुष छटककर सियारकी छातीपर लगा और वह मर गया । इसलिये मैं कहता हूँ—अधिक संचय न करना चाहिए और हे मित्र ! तुम्हे वित्तनाश और आजीविकाकी चिन्ता भी न करनी चाहिये, क्योंकि वह तो प्राणीके पूर्वकर्मोके अनुसार विधाता निश्चित किये रहते हैं । इस प्रकार वे (हिरण्यक, लघुपतनक और मन्थर) सुखसे वहाँ रहने लगे ।

एक दिन चित्राङ्ग नामका मृग भयभीत हुआ वहाँ आया । उसे देखकर पहले तो कोई भयप्रद जन्तु आ रहा है, यह सोचकर मन्थर तालाबमें और हिरण्यक बिलमें घुस गया, लघुपतनक उड़ कर वृक्षमें चला गया, किन्तु जब उसने वृक्षसे दूर तक देखा और कोई भयप्रद जीव न दीखा तो सब मिलकर पुनः एकत्र हुए । मन्थरने कहा—हे मृग, तुम्हारा स्वागत है, स्वेच्छासे जल पी लो और विचरण करो । चित्राङ्गने कहा—व्याधों द्वारा डराया हुआ मैं आप

लोगोंकी शरण आया हूँ और मित्रता चाहता हूँ। वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले–तुम तो हमारे मित्र हो ही गये, सुखपूर्वक यहाँ रहो। जब वह भोजनादिसे तृप्त हो छायामें विश्राम करने लगा तो मन्थरने पूछा —मित्र, तुम भयभीत कैसे हो ? चित्रांगने कहा—मैंने व्याधोंसे सुना कि कलिंगदेशका राजा रुक्माङ्गद दिग्विजय करता हुआ चन्द्रभागानदीके तटपर पड़ाव डालकर रुका है। कल प्रातःकाल वे इस कर्पूर सरोवर पर रुकेंगे, इसीसे मैं डरा हूँ। अब जो ठीक समझ में आवे आप लोग करें। यह सुनकर मन्थर डर गया और बोला—मैं तो शीघ्र ही दूसरे जलाशयमें जाता हूँ। कौवा और मृग भी अन्यत्र जानेको तैयार हो गये, पर हिरण्यक् (चूहे) ने हँसकर कहा—समीप ही दूसरा जलाशय होता तो ठीक था, दूरके जलाशयमें थलमार्गसे चलते हुए मन्थरकी क्या दशा होगी।

हिरण्यकके हितवचनको न मानकर डरके मारे मूढ़ हुआ मन्थरक उस जलाशयको छोड़कर चलने लगा, तब वे भी हिरण्यक, लघुपतनक और चित्रांग किसी अनिष्टकी आशंका से उसके पीछे-पीछे चल दिये। कुछ दूर जाने पर भूमिपर धीरे-धीरे चलते हुए मन्थरको व्याधने पकड़कर अपने धनुषमें लटका लिया और घरकी ओर चल पड़ा। यह देखकर वे हिरण्यक आदि बड़े दुःखी हुए और उसके पीछे-पीछे चले। मार्गमें हिरण्यकने कौवेसे कहा–किसी प्रकार इसे छुड़ाने का यत्न करना चाहिए। कौवा बोला–क्या करें ? हिरण्यकने कहा–यह हमारा साथी मृग पानीके पास जाकर मरा हुआ बन जाय, तुम उसके ऊपर बैठकर चोंचसे उसके शरीरमें झूठे आघात करो, जिससे मृगमांसका लोभी व्याध मन्थरको जलके समीप रखकर मृगको लेने दौड़ेगा, पास में आते ही तुम दोनों भाग जाना। तब तक मैं मन्थरके बन्धनको काट डालूंगा और मन्थर पानीमें कूद जायगा, ऐसा ही किया गया। व्याधने मृगको मरा समझकर कछुवेको भूमिपर रख दिया और मृगकी ओर दौड़ा। कौवा और मृग भाग गये व्याध वापस लौटा तो तब तक चूहेने पाश काट डाला और मन्थर जलमें घुस गया। ठीक ही कहा है—जो निश्चितको छोड़कर अनिश्चितकी आशा में दौड़ता है, उसके निश्चित भी नष्ट हो जाते हैं, अनिश्चित तो नष्ट है ही। इस प्रकार फिर मन्थर, हिरण्यक आदि आनन्द से रहने लगे।

ॐ महागणाधिपतये नमः

हितोपदेशे

मित्रलाभः

पारावारजकालकूटगरलं त्रैलोक्य-दाहक्षमं
दृष्ट्वा देवगणार्थितस्तदपिबत्त्रैलोक्यगुप्त्यै हि यः ।
विश्वेशं प्रणिपत्य नम्रशिरसाऽहं विश्वनाथः सुधीः
कुर्वे साधु हितोपदेश-'विमला'-व्याख्यां सतां सन्मुदे ॥१॥

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु प्रसादात्तस्य धूर्जटेः ।
जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला ॥ १ ॥

अन्वयः—तस्य धूर्जटेः प्रसादात् सतां साध्ये सिद्धिः अस्तु, यन्मूर्ध्नि शशिनः कला जाह्नवीफेनलेखा इव (शोभते) ॥ १ ॥

सिद्धिरिति—धूर्जटेः=शिवस्य, प्रसादात्=अनुकम्पातः, सताम्=सत्पुरुषाणाम्, साध्ये=कर्मणि, सिद्धिः=स्वाभीष्टलाभः, अस्तु=भवतु, यस्य=शंकरस्य मूर्ध्नि=मस्तके, जाह्नवीफेनलेखा = जाह्नव्याः गंगायाः फेनः = जलकफः, "डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः" इत्यमरः तस्य लेखा = रेखा इव, शशिनः = चन्द्रमसः कला = षोडशो भागः "कला तु षोडशो भागः" इत्यमरः, विराजते = शोभते ॥ १ ॥

जिनके शिरपर गंगाजीके फेनकी रेखाके समान चन्द्रमा (प्रतिपदाके) की कला शोभित है, उन भगवान् शंकरकी कृपासे सज्जनोंके कार्य सफल हों ॥१॥

कथामुखम्

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु ।
वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च ॥ २ ॥

अन्वयः—अयं हितोपदेशः श्रुतः (सन्) संस्कृतोक्तिषु पाटवं ददाति । सर्वत्र वाचां वैचित्र्यं नीतिविद्यां च ददाति ॥ २ ॥

श्रुत इति—श्रुतः = अधीतः, ख्यातः प्रसिद्धो वेत्यर्थः, अयम् = एषः हितोपदेशः = हितः = हितकरः उपदेशः = शिक्षा यस्मिन् स हितोपदेशनामको ग्रन्थविशेषः, संस्कृतोक्तिषु = देवभाषाभाषणेषु, पाटवं = चातुर्यम्, ददाति । च =

पुनः, सर्वत्र = सर्वस्मिन् कार्य्ये व्यवहारे वा, वाचां वैचित्र्यं = वचनकौशलम् ददाति, नीतिविद्या = नीतेः विद्या नीतिविद्या, तां, नीतिशास्त्रज्ञानम्, च ददाति ॥ २ ॥

पढ़ा हुआ (या प्रसिद्ध) हितोपदेश नामक ग्रन्थ, विद्यार्थियों को संस्कृत (भाषाके) बोलनेमें पटुता और सभी जगह वाक्य-रचनाकी अद्भुत रीति, एवं नीतिविद्याकी शिक्षा देता है ॥ २ ॥

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—प्राज्ञः अजरामरवत् विद्याम् अर्थं च चिन्तयेत्, मृत्युना केशेषु गृहीत इव धर्मम् आचरेत् ॥ ३ ॥

अजरेति—प्राज्ञः = पण्डितः, अजरामरवत् = जरामरणरहित इव, विद्यां = शास्त्रकलादिज्ञानम्, अर्थं च = धनं च, चिन्तयेत् = विचारयेत्, विद्यामभ्यस्येत्, धनञ्चोपार्जयेदित्यर्थः । मृत्युना = यमेन, केशेषु = मूर्धजेषु, गृहीत इव = आकृष्ट इव, धर्मं = पुण्यम्, आचरेत् = अनुतिष्ठेत् ॥ ३ ॥

विद्वान् पुरुषको चाहिए कि वह अपने आपको अजर-अमर जानकर विद्या और धनकी चिन्ता करे । एवं मृत्युको बाल पकड़कर खींचते हुए-सा जानकर धर्माचरण करे । अभिप्राय यह है कि विद्या तथा धन के संचयमें विलम्ब सह्य हो सकता है किन्तु धर्माचरणमें विलम्ब ठीक नहीं ॥ ३ ॥

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्य्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥ ४ ॥

अन्वयः—(विद्वांसः) सर्वदा अहार्य्यत्वात्, अनर्घत्वात्, अक्षयत्वात् च विद्या एव सर्वद्रव्येषु अनुत्तमं द्रव्यम् (इति) आहुः ॥ ४ ॥

सर्वद्रव्येष्विति—विद्वांसः = पण्डिताः सर्वदा = सदा, अहार्यत्वात् = हर्तुमशक्यत्वात् अनर्घत्वात् = मूल्येनापि लब्धुमशक्यत्वात्, अक्षयत्वात्, च = नाशरहितत्वाच्च, सर्वद्रव्येषु = सर्ववस्तुषु, विद्यैव = शास्त्रज्ञानमेव, अनुत्तमम् = नास्ति उत्तमो यस्मात् तत् । उत्कृष्टम् श्रेष्ठमित्यर्थः, द्रव्यं = धनम्, आहुः = वदन्ति ॥ ४ ॥

विद्वानोंने सभी वस्तुओंमें विद्याको ही महोत्तम वस्तु कहा है—क्योंकि न चोर इसे चुरा सकते हैं, न मूल्य देकर ही यह खरीदी जा सकती है और न इसका नाश ही हो सकता है, चाहे जितना खर्च किया जाय बढ़ने के सिवा घटनेवाली नहीं है ॥ ४ ॥

संयोजयति विद्यैव नीचगाऽपि नरं सरित् ।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—नीचगा अपि सरित् दुर्धर्षं समुद्रम् इव नीचगा अपि विद्या एव नरं दुर्धर्षं नृपं संयोजयति, अतः परम् भाग्यम् ॥५॥

संयोजयतीति—नीचगा अपि = निम्नदेशगामिनी अपि, सरित् = नदी, दुर्धर्षं = दुष्प्रापम्, समुद्रमिव = अर्णवमिव, नीचगा अपि विद्या = नीचजन-स्थिताऽपि विद्या, एव, नरं = पुरुषम्, दुर्धर्षं = दुरतिक्रमम्, नृपं = राजानम्, संयोजयति = संगमयति, अतः = अस्मात्, परम् = अनन्तरम्, नरस्य भाग्यं दैवञ्च संयोजयति । विद्यैव दुर्गम्यं राजानं दर्शयित्वा ततो विदुषे धनलाभयोगं विदधातीति भावः ॥५॥

नीचेकी ओर बहनेवाली भी नदी, जैसे—फूस लकड़ी आदि को अथाह समुद्र से मिला देती है, उसी तरह नीच पुरुष के पास भी विद्या हो तो वह (विद्या) उस पुरुषको बड़े-बड़े राजाओंसे मिला देती है, बाद—उस पुरुषके भाग्यको भी बढ़ाकर उन राजाओंसे धनादिका लाभ करा देती है ॥५॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—विद्या (नराय) विनयं ददाति । विनयात् (नरः) पात्रतां याति, पात्रत्वात् धनम् आप्नोति, धनात् धर्मम् (आप्नोति) ततः सुखम् (आप्नोति) ॥६॥

विद्येति—विद्या = शास्त्रादिज्ञानम्, विनयं = नम्रताम्, ददाति, विनयात् = विनययुक्तः पुरुषः, पात्रतां = सज्जनताम्, याति = प्राप्नोति, पात्रत्वात् = योग्यत्वात्, धनमाप्नोति = धनं लभते, धनात्, धर्मं = पुण्यम्, आप्नोति, ततः = धर्मात्, सुखम्-आप्नोतीति सम्बन्धः । सकलाभीष्टमूलं विद्यैवेति तात्पर्यम् ॥६॥

विद्या मनुष्यको नम्रता देती है, वह नम्रतासे व्यक्तित्व, व्यक्तित्वसे धन, धनसे धर्म और धर्मसे सुख प्राप्त करता है । अर्थात् विद्या ही सब सुखकी जड़ है ॥६॥

विद्या शस्त्रञ्च शास्त्रञ्च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽऽद्रियते सदा ॥ ७ ॥

अन्वयः—शस्त्रं शास्त्रं च विद्या, द्वे विद्ये प्रतिपत्तये (भवतः), (तयोः) आद्या वृद्धत्वे हास्याय (भवति), द्वितीया सदा (जनैः) आद्रियते ॥ ७ ॥

विद्येति—शस्त्रञ्च-खड्गादिचालनं च, शास्त्रञ्च = वेदादिकञ्च, विद्या =

वेत्ति अनया इति विद्या, द्वे अपि विद्ये = उक्तरूपे प्रतिपत्तये=यशोलाभाय, ज्ञानप्राप्तये च भवतः, किन्तु आद्या = शस्त्रविद्या, वृद्धत्वे=वृद्धावस्थायाम्, बले नष्टे सतीत्यर्थः। हास्याय = उपहासाय भवतीति शेषः, द्वितीया=शास्त्र-विद्या, वेदव्याकरणादिज्ञानम्, सदा = सर्वस्मिन् काले, आद्रियते=पूज्यते, जनैरिति शेषः ॥ ७ ॥

विश्वमें दो प्रकारकी विद्याएँ प्रसिद्ध हैं—एक शस्त्रविद्या और दूसरी शास्त्रविद्या, इन दोनों ही से पुरुषको यश एवं धनादि प्राप्त होते हैं, किन्तु शस्त्र-विद्या बुढ़ापेमें (सामर्थ्यहीन होनेपर) हँसी कराती है और दूसरी शास्त्र-विद्या सर्वदा आदरको ही देती हैं ॥ ७ ॥

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् ।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते ॥ ८ ॥

अन्वयः—यत् नवे भाजने लग्नः संस्कारः अन्यथा न भवेत् । तत् इह कथाच्छलेन बालानां (कृते) नीतिः (मया) कथ्यते ॥ ८ ॥

यदिति—यत् = यस्मात् हेतोः, यथा वा, नवे = नवीने, आर्द्रे वा। भाजने = भाण्डे, बाले च, लग्नः = संसक्तः, संस्कारः=रेखादिकम्, विद्यादि-संस्कारश्च, अन्यथा = विपरीतो, न भवेत् = न स्यात्, तत् = तस्मात्कारणात्, तथा वा, इह=अस्मिन् हितोपदेशे, कथाच्छलेन = कथा एव छलं व्याजस्तेन—उपाख्यानव्याजेन, बालानां=शिशूनाम्, नीतिः=राजनीतिः लोकनीतिश्च, कथ्यते=उपदिश्यते ॥ ८ ॥

जिस प्रकार कच्चे घड़ेपर की गई नक्कासी (रेखादि चिन्ह) उसके टूट जाने तक नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार कथा-कहानियों के बहाने कही गई नीतिविद्या बालकों के कोमल हृदय में आजन्म स्थिर रहती है ॥ ८ ॥

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः सन्धिरेव च ।
पञ्चतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते ॥ ९ ॥

अन्वयः—पञ्चतन्त्रात् तथा अन्यस्मात् ग्रन्थात् आकृष्य मित्रलाभः, सुहृद्भेदः विग्रहः, सन्धिः एव च (मया) लिख्यते ॥ ९ ॥

मित्रेति—पञ्चतन्त्रात् = पञ्चानां तन्त्राणां समाहारः इति, तन्नामकग्रंथ-विशेषः तस्मात्, तथा = अथ, च अन्यस्मात् = परस्मात्, ग्रन्थात् = बृह-त्कथाकामंदकीय[illegible]रात्, आकृष्य=समादाय संक्षिप्य च, मित्र-लाभः=मित्रस्य लाभः=प्राप्तिः यत्र सः, सुहृद्भेदः—सुहृदः भेदः=विरोधो

यत्र सः, विग्रहः—युद्धम् सन्धिः=मेलनञ्च, इति प्रसिद्धं प्रकरणचतुष्कम्, लिख्यते=विरच्यते ॥ ९ ॥

पञ्चतन्त्र नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ तथा नीति विषयक अन्य ग्रन्थोंकी सहायतासे मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि इन चार प्रकरणों में विभक्त हितोपदेश नामक नीतिग्रन्थ बनाया जाता है ॥ ९ ॥

अस्ति भागीरथीतीरे पाटलिपुत्रनामधेयम् नगरम् । तत्र सर्वस्वामिगुणोपेतः सुदर्शनो नाम नरपतिरासीत् । स भूपतिरेकदा केनापि पठ्यमानं श्लोकद्वयं शुश्राव ।

अस्तीति—भागीरथीतीरे=भगीरथादागता भागीरथी, तस्याः तीरे=तटे, पाटलिपुत्रनामधेयं=नाम एव नामधेयं,—'पाटलिपुत्रम्' इति नामधेयं यस्य तत् पाटलिपुत्रनामकं—इदानीं 'पटना' इति प्रसिद्धम्, नगरं=पुरम्, अस्ति=विद्यते । तत्र=पाटलिपुत्रे, सर्वस्वामिगुणोपेतः=स्वामिनः गुणाः स्वामिगुणाः—प्रजापालकत्वं शौर्यादयश्च, सर्वे च ते स्वामिगुणाश्च इति सर्वस्वामिगुणाः, तैः उपेतः युक्तः, सुदर्शनो नाम=सुष्ठु दर्शनं यस्य स 'सुदर्शनः' इति तन्नामकः, नरपतिः=पातीति पतिः—रक्षकः नराणां पतिः नरपतिः=राजा, आसीत्=अभूत् । स भूपतिः—भुवः पतिः भूपतिः=पृथ्वीरक्षको राजा सुदर्शनः, एकदा=एकस्मिन् काले, केनापि=अपरिचितेन, पठ्यमानम्=अधीयमानम्, श्लोकद्वयं=पद्यद्वयम्, शुश्राव=आकर्णितवान् ।

भागीरथी (भगीरथसे लाई गई) गंगाके तटपर पटना नामक नगर है, वहाँ राजाओं के सभी गुणोंसे युक्त सुदर्शन नामका एक राजा था। उस राजा ने एक दिन किसी अज्ञात व्यक्तिके द्वारा पढ़े जाते हुए निम्न दोनों श्लोकोंको सुना ।

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥ १० ॥

अन्वयः—अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकं शास्त्रं सर्वस्य लोचनं (भवति)। (तत्) यस्य नास्ति सः अन्धः एव ॥ १० ॥

अनेकेति—अनेकसंशयोच्छेदि=अनेकान्=संशयान् उच्छिनत्ति तच्छीलमिति अनेकसंशयोच्छेदि=बहुविधसंदेहनिवर्तकम् परोक्षार्थस्य=भूतभविष्यार्थस्य, दर्शकम्=ज्ञापकम्, शास्त्रं=वेदव्याकरणज्योतिषादिकम्, सर्वस्य=अखिलस्य लोकस्य, लोचनम्=चक्षुः भवति । तच्छास्त्रं यस्य=पुंसः सविधे नास्ति स अन्ध एव=नेत्ररहित एव ॥ १० ॥

अनेक सन्देहोंको मिटानेवाला तथा परोक्ष विषयको भी समझानेवाला शास्त्र ही सभी का वास्तविक नेत्र है। इसलिए जिसने शास्त्र का अध्ययन नहीं किया अर्थात् शास्त्ररूपी नेत्र जिसके पास नहीं है वह अन्ध ही है ॥ १० ॥

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ॥
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—यौवनं, धनसम्पत्तिः, प्रभुत्वम्, अविवेकिता, (एषु वस्तुषु) एकैकम् अपि अनर्थाय (भवति), यत्र चतुष्टयम् (तत्र) किमु ॥ ११ ॥

यौवनमिति—यौवनं = युवावस्था, धनसम्पत्तिः—धनप्राचुर्यम्, प्रभुत्वं—प्रभोर्भावः प्रभुत्वं = स्वामित्वम्, अविवेकिता = विचारशून्यता, एषां वस्तूनां मध्ये-एकैकमपि = प्रत्येकमपि, अनर्थाय=विपत्तये भवति। यत्र = यस्मिन् पुंसि, चतुष्टयम् = चतुष्कम्, भवति, तत्र किमु = का कथा ॥ ११ ॥

नई जवानी, धनकी अधिकता, मालिकपना और अविचार, इनमें प्रत्येक विपत्तिके लिए पर्याप्त है। किन्तु जहाँ ये चारों एक साथ हों वहाँ की तो बात ही क्या कहनी है ॥ ११ ॥

इत्याकर्ण्याऽऽत्मनः पुत्राणामनधिगतशास्त्राणां नित्यमुन्मार्गगामिनां शास्त्राऽननुष्ठानेनोद्विग्नमनाः स राजा चिन्तयामास।

इतीति—इति=पूर्वोक्तश्लोकद्वयम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, आत्मनः = स्वस्य, पुत्राणां = पुंनामनरकात् त्रायन्ते इति पुत्राः, तेषाम्, अनधिगतशास्त्राणां=न अधिगतं शास्त्रं यैस्ते अनधिगतशास्त्रास्तेषां—शास्त्राध्ययनरहितानाम्, नित्यं = सदा, उन्मार्गगामिनाम्=उन्मार्गे गच्छन्तीति उन्मार्गगामिनः तेषां, दुर्व्यसना-सक्तानाम्, शास्त्राऽननुष्ठानेन = शास्त्रस्य-कर्तव्यकर्मणः, अध्ययनादेः वा अन-नुष्ठानम्—अनभ्यासस्तेन, उद्विग्नमनाः = उद्विग्नम् = अशान्तं मनो यस्य सः, व्याकुलात्मा, सः=सुदर्शनो नाम, राजा=नरपतिः, चिन्तयामास=विचारयामास।

इन श्लोकोंको सुनकर वह राजा नित्य कुमार्ग पर चलनेवाले औ शास्त्रपराङ्मुख अपने बालकोंके शास्त्र न पढ़नेसे व्याकुल हो सोचने लगा।

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुःपीडैव केवलम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—यः न विद्वान् न धार्मिकः (अस्ति) (तेन) पुत्रेण जातेन कः अर्थः ?। वा काणेन चक्षुषा किं (फलं भवति) केवलं चक्षुः पीडा एव (जायते)।

कोऽर्थ इति—यः = पुत्रः विद्वान् न=पण्डितः न, धार्मिकः न=धर्माचरणशीलो न (अस्ति) एवंभूतेन जातेन=उत्पन्नेन पुत्रेण, कः अर्थः=किं प्रयोजनम्, वा = यद्वा काणेन=दर्शनसामर्थ्यहीनेन, चक्षुषा = नेत्रेण, किं = किं फलम्, केवलम् = एकम्, चक्षुःपीडा एव = चक्षुषःपीडा चक्षुःपीडा एव, केवलं चक्षुःपीडाजनकमेव भवतीति भावः ॥ १२ ॥

जो (=पुत्र) न विद्वान् है और न धर्मात्मा है, ऐसे पुत्रके उत्पन्न होने से क्या लाभ ? जैसे कानी आँखसे दर्शनादि कार्य कुछ भी नहीं होते हैं, केवल उससे पीड़ा (दर्द) ही होती है। उसी प्रकार मूर्ख पुत्र से केवल कष्ट ही कष्ट होता है, सुख की आशा नहीं ॥ १२ ॥

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः।
सकृद् दुःखकराबाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे ॥ १३ ॥

अन्वयः—अजातमृतमूर्खाणाम् आद्यौ वरम् अन्तिमः न वरम्। आद्यौ सकृत् दुःखकरौ, अन्तिमः तु पदे पदे (दुःखकरः) ॥ १३ ॥

अजातेति—अजातमृतमूर्खाणां=न जातः अजातः = अनुत्पन्नः, मृतः = उत्पन्नः सन् तत्क्षण एव पञ्चत्वं गतः, मूर्खः=सदसद्विवेकरहितः एषां मध्ये, आद्यौ = अजातमृतौ, वरम् =ईषत्प्रियौ, च=पुनः, अन्तिमः=मूर्खः न वरम्, कुतः-आद्यौ = अजातमृतौ, सकृद्दुःखकरौ=एकवारमेव दुःखजनकौ, अन्तिमस्तु=मूर्खस्तु, पदे पदे=सर्वदैव दुःखजनकः, इति वचनविपरिणामेनान्वयः॥१३॥

बालक उत्पन्न ही न हो, या उत्पन्न होकर उसी क्षण मर जाय, अथवा उत्पन्न होकर मूर्ख हो, इन तीनों में प्रथम दो पक्ष कुछ ठीक हैं, परन्तु तीसरा—उत्पन्न होकर मूर्ख हो, अच्छा नहीं, क्योंकि प्रथम दानों क्षणिक कष्टकर होते हैं, परन्तु अन्तिम—मूर्ख पुत्रका होना—जीवनभर कष्टदायी होता है ॥१३॥

कथितञ्च—स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥ १४ ॥

अन्वयः—येन जातेन वंशः समुन्नतिं याति, स जातः। परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥१४॥

स इति—सः=पुत्रः, जातः = उत्पन्नः, येन पुत्रेण, जातेन=उत्पन्नेन सता, वंशः = कुलं, समुन्नतिं सम्यक् उन्नतिम्-ख्यातिम् याति=प्राप्नोति। परिवर्तिनि = परिवर्तनशीले, संसारे = जगति, मृतः = मृत्युमुपविष्टः इह

लोकं परित्यज्येति यावत्, को वा न जायते = न उत्पद्यते, बहवः प्राणिन

उत्पद्यन्ते विलीयन्ते च । स एव पुण्यजन्मा येन उत्पन्नेन कुलं पूज्यते ।।१४।।

कहा भी है—उसी पुत्र का जन्म सफल है, जिसके जन्मसे वंश प्रसिद्ध हो (जैसे—गांधी, नेहरू, तिलक, सुभाष आदिके जन्मसे) क्योंकि इस परिवर्तनशील संसारमें मरकर कौन उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् मरना और उत्पन्न होना तो यहाँ लगा ही रहता है, किसको कौन पूछता है ।। १४ ।।

अन्यच्च—गुणिगणगणनारम्भे पतति न कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति ।। १५ ।।

अन्वयः—गुणिगणगणनारम्भे यस्य (विषये) कठिनी सुसम्भ्रमात् न पतति तेन अम्बा यदि सुतिनी, तर्हि वन्ध्या कीदृशी भवति (इति) वद ।।१५।।

गुणीति—गुणिगणगणनारम्भे = गुणिनां पण्डितानां गणाः = समुदायाः तेषां गणना = सङ्ख्यानम्, तस्या आरम्भे—आदौ, यस्य = पुंसः, कठिनी = लेखसाधिका 'खलीति' प्रसिद्धा, अनामिका वा सुसम्भ्रमात् = सगौरवात्, न पतति = तन्नामोल्लेखनार्थं शीघ्रमुद्युक्ता न भवति, तेन = गुणरहितेन पुत्रेण, अम्बा = माता, यदि सुतिनी = पुत्रवती, चेत् = तर्हि, वन्ध्या = अजातपुत्रा, कीदृशी = का भवति इति = एतत्, वद = कथय ।।१५।।

और भी—विद्वानोंकी गिनतीके समय जिस पुरुषका नाम गौरवपूर्वक सर्वप्रथम खली से न लिखा जाय, अथवा जिसके ऊपर अनामिका न गिरे ऐसे पुत्रसे यदि माता पुत्रवती कहलाये, तो कहो बन्ध्या कौन कहलाती है ? अर्थात् विद्वानोंमें जिसका सुन्दर यश हो वही सफल जन्मवाला है और बाँझ वही कहलाती है, जिसका पुत्र विद्वानों में नहीं गिना जाता है । न केवल पुत्ररहित ही बाँझ कहलाती है, अपितु मूर्खपुत्रवाली माता भी बाँझ कहलाती है ।। १५ ।।

अपि च—दाने तपसि शौर्य्ये च यस्य न प्रथितं मनः ।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः ।।१६।।

अन्वयः—यस्य मनः, दाने तपसि शौर्ये विद्यायाम्, अर्थलाभे च न प्रथितम् स मातुः उच्चार एव ।। १६ ।।

दान इति—यस्य मनः = चित्तम् दाने = परोद्देश्येन त्यागे, तपसि = तपस्याम्, शौर्य्ये = वीरोचितकार्ये, विद्यायां = विद्योपार्जने, अर्थलाभे = धनार्जने च, न प्रथितम् = [illegible] यावत्, सः मातुः = [illegible] उच्चार एव = विष्ठैवेत्यर्थः, "उच्चारावस्करौ शमलं शकृद्" इत्यमरः ।।१६।।

और भी—जिस पुत्र का मन दान, तपस्या, वीरता, विद्योपार्जन और धनोपार्जन में न लगा, वह पुत्र माताके मल तुल्य है, अर्थात् मूर्ख पुत्रका जन्म लेना व्यर्थ है ॥१६॥

अपरञ्च—वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च ॥१७॥

अन्वयः—एकः (अपि) गुणी पुत्रः वरम्, मूर्खशतानि अपि न च वरम। एकः चन्द्रः तमः हन्ति तारागणः अपि च न (हन्ति) ॥ १७ ॥

वरमिति—एकः = एकाकी, गुणी = विद्वान्, ख्यातयशाः, पुत्रः, वरम् = ईषच्छ्रेष्ठः, मूर्खशतान्यपि = मूर्खाणां शतान्यपि, न च = नैव वरमिति यावत्। यतः-एकः=असहायः, चन्द्रः=निशापतिः तमः=ध्वान्तम्, हन्ति=नाशयति, तारागणः अपि=नक्षत्रसमूहोऽपि, न च = नैवान्धकारविनाशे समर्थो भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

और भी—एक गुणवान् पुत्र अच्छा है, परन्तु मूर्ख सौ पुत्र भी अच्छे नहीं क्योंकि अकेला ही चन्द्रमा अन्धकारों को नष्ट करता है, किन्तु लाखों ताराओं के समूह अन्धकार नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १७ ॥

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाऽप्यतिदुष्करम्।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः ॥ १८ ॥

अन्वयः—येन क्व अपि पुण्यतीर्थे अतिदुष्करं तपः कृतं तस्य पुत्रः समृद्धः धार्मिकः, सुधीः वश्यः (च) भवेत् ॥ १८ ॥

पुण्येति—येन = पुरुषेण, क्वाऽपि = कुत्रापि, पुण्यतीर्थे = पवित्रक्षेत्रके, अतिदुष्करम् = अतिकठिनम्, तपः = धर्म्मानुष्ठानम्, कृतम् = अनुष्ठितं, तस्य प्रागुक्तस्य पुंसः, पुत्रः = तनयः, समृद्धः, = धनादियुक्तः, धार्मिकः = धर्मशीलः सुधीः = पण्डितः, वश्यः = आज्ञाकारी च, भवेत् = स्यात् ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यने किसी तीर्थस्थानमें अत्यन्त कठिन तपस्या की है, उसीका पुत्र धनी, धर्मात्मा, विद्वान् और आज्ञाकारी होता है ॥१८॥

तथाचोक्तम्—
अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या, षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥१९॥

अन्वयः—नित्यम् अर्थागमः, नित्यम्, अरोगिता च, प्रिया प्रियवादिनी भार्या च, वश्यः पुत्रः च, अर्थकरी विद्या च (हे) राजन्! (इमानि) षट् जीवलोकस्य सुखानि (सन्ति) ॥ १९ ॥

अर्थेति—नित्यं = सर्वस्मिन् काले, अर्थागमः—अर्थस्य = धनस्य 'आगमः = प्राप्तिः, नित्यम्, अरोगिता = रोगाभावः, प्रियवादिनी = मधुरभाषिणी, प्रिया = मनोज्ञा, भार्या = स्त्री, वश्यः = वशे भवः वश्यः = आज्ञाकारी, पुत्रः = तनयः, अर्थकरी = धनदात्री, विद्या च एतानि षट् जीवलोकस्य = जगतः, सुखानि = सुखजनकानि भवन्तीति शेषः ॥ १९ ॥

जैसे कहा भी गया है—नित्य धनागम, स्वस्थ शरीर, मृदु बोलनेवाली प्रियतमा स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र और धन देनेवाली विद्या ये छः वस्तुयें संसार में प्राणियों को सुखकारक होती हैं ॥१९॥

को धन्यो बहुभिः पुत्रैः कुशूलापूरणाऽऽढकैः ।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्रूयते पिता ॥ २० ॥

अन्वयः—कुशूलापूरणाढकैः (इव) बहुभिः पुत्रैः कः धन्यः (भवति); (किन्तु) यत्र पिता विश्रूयते (एवम्भूतः) कुलालम्बी एकः (अपि पुत्रः) वरम् (भवति)।२०।

क इति—कुशूलापूरणाढकैः = कुशूलैः = तुषैः आसमन्तात् पूरणाः इति कुशूलापूरणाः कुशूलापूरणाश्च ते आढकाश्च इति कुशूलापूरणाढकाः तैः—तुषपूर्णाढकधान्यपात्रैः, बहुभिः = अनेकैः, = सुतैः, कः = कः पुत्रवान्, धन्यः = कृतकृत्यः, न कोऽपीत्यर्थः । किन्तु—कुलालम्बी = कुलम् आलम्बते इति कुलालम्बी—वंशप्रकाशकः, एकः = एकाकी पुत्रः वरं = श्रेष्ठोऽस्ति ,यत्र = यस्मिन्, येन पुत्रेणेत्यर्थः, पिता = जनकः, विश्रूयते = ख्यातो भवति ॥ २० ॥

भूसेसे भरे हुए वखारके समान अधिक पुत्रोंसे कौन कृतकृत्य (धन्य) हुआ है ? कोई नहीं, किन्तु कुलदीपक एक ही पुत्र अच्छा है, जिसके जन्मसे लोकमें पिताकी प्रसिद्धि हो ॥२०॥

यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान् पूज्यते नरः ।
धनुर्वंशविशुद्धोपि निर्गुणः किं करिष्यति ॥२१॥

अन्वयः—गुणवान् नरः यस्य कस्य अपि प्रसूतः (जनैः) पूज्यते, निर्गुणः वंशविशुद्धः अपि धनुः (इव) किं करिष्यति ? ॥२१॥

यस्येति—गुणवान् = गुणयुक्तः नरः = पुरुषः यस्य कस्य = महतः, अल्पीयसः वा वंशस्य—उच्चवंशरहितस्यापीत्यर्थः, प्रसूतः = उत्पन्नः, पूज्यते = मह्यते जनैरिति शेषः । वंशविशुद्धोऽपि = शुद्धवेणुनिर्मितोऽपि, धनुः = चापः धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकमित्यमरः । निर्गुणः = प्रत्यञ्चारहितः किं करिष्यति = शत्रुमारणादिकं कार्यं न करिष्यतीत्यर्थः, तद्वत् वंशविशुद्ध

उच्चवंशजोऽपि निर्गुणः विनयादिगुणरहितः पुरुषः किं करिष्यति न किमपीति भावः ॥ २१ ॥

उच्च कुलोत्पन्न हो या नीचकुलोत्पन्न गुणवान् पुरुष ही संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जैसे अच्छे बाँसका बना हुआ भी धनुष बिना गुण (डोरी) के किसी कामका नहीं होता, वैसे ही उच्चकुलोत्पन्न बिना विद्या-विनयादि गुण के पुरुष किसी योग्य नहीं होता—अतः मूर्ख पुत्रसे अपुत्र ही रहना अच्छा है ॥२१॥

हा हा पुत्रक! नाधीतं गतास्वेतासु रात्रिषु।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि ॥२२॥

अन्वयः—हा हा पुत्रक! एतासु गतासु रात्रिषु (त्वया यत्) न अधीतम् तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौः इव सीदसि ॥ २२ ॥

हेति—हा हा=इति खेदसूचकमव्ययम्, हे पुत्रक! अत्र स्वार्थिकः कप्रत्ययः हे पुत्र इत्यर्थः। गतासु=व्यतीतासु, एतासु=आसु, रात्रिषु=रजनीषु त्वया न अधीतं=न शास्त्रमभ्यस्तम्, तेन=कारणेन त्वं विदुषां=पण्डितानाम्, मध्ये=सभायाम् पंके=कर्दमे, गौरिव=गोवत्, सीदसि=दुःखीभवसीत्यर्थः ॥

हे पुत्र? खेद है कि बीती हुई इन रातों (दिनों) में तुमने विद्याभ्यास नहीं किया, इसीलिए आज विद्वानोंकी सभामें कीचड़में फँसी गायकी तरह तुम दुःखी हो रहे हो ॥२२॥

तत्कथमिदानीमेते मम पुत्रा गुणवन्तः क्रियन्ताम्? यतः—

तदिति—तत्=तस्मात् कारणात्, इदानीं=एतस्मिन् काले, एते=इमे मम पुत्राः=मत्सुताः, कथं=केन प्रकारेण, गुणवन्तः=गुणयुक्ताः, क्रियन्ताम्=सम्पाद्यन्ताम्। यतः=यस्माद्धेतोः—

इसलिये ये मेरे पुत्र किस प्रकार अब भी विद्या-विनयादि गुणोंसे युक्त किये जा सकते हैं! क्योंकि—

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्म्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥२३॥

अन्वयः—आहारनिद्राभयमैथुनम् एतत् च नराणां पशुभिः सामान्यम्। धर्मः हि तेषाम् अधिकः विशेषः, धर्मेण हीनाः (नराः) पशुभिः समानाः (भवन्ति) ॥ २३ ॥

आहारेति—नराणां=मनुष्याणाम्, आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च=आहारश्च निद्रा च भयं च मैथुनं चेत्येतेषां समाहारद्वन्द्वः—भोजननिद्राभयसुरतमेव

चतुष्टयम्, पशुभिः=अश्वादिभिः, सामान्यं = तुल्यम्, किन्तु—तेषां = मनुष्याणाम् धर्मो हि = धर्म एव, अधिकः = विशेषः=परं भेदकः=व्यावर्तक इति यावत् । धर्मेण हीनाः = धर्मरहिताः जनाः, पशुभिःसमानाः=पशुकल्पा एव भवन्तीति भावः ॥२३॥

भोजन, निद्रा, भय, तथा स्त्री के साथ संभोगव्यवहार ये चारों बातें तो पशुओं और मनुष्यों में समान ही देखी जाती हैं, केवल मनुष्यमें धर्म ही एक विशेष (भेदक—उनसे पृथक् करनेवाला) है, इसलिये धर्महीन मनुष्य पशुके समान हैं ॥ २३ ॥

यतः—धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—धर्मार्थकाममोक्षाणाम्, एकः अपि यस्य न विद्यते, तस्य जन्म अजागलस्तनस्य (जन्म) इव निरर्थकं (भवति) ॥२४ ॥

धर्मेति—यतः = यस्मात् कारणात्, यस्य = पुरुषस्य, धर्मार्थकाममोक्षाणां = धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च तेषां = पुरुषार्थचतुष्टयानां मध्ये, एकोऽपि = पुरुषार्थः=धर्मादिः, न विद्यते=नास्ति, तस्य = धर्मादिहीनस्य पुंसः, अजागलस्तनस्य इव--अजायाः गलस्य = कंठस्य स्तनस्य इव = लम्बमानं स्तनाकार-चर्मखण्डमिव, जन्म = उत्पत्तिः, निरर्थकम् = निष्फलमित्यर्थः ॥ २४ ॥

क्योंकि—जिस मनुष्यमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंमें से एक भी पुरुषार्थ नहीं है, उस पुरुषार्थहीन मनुष्यका जन्म बकरीके गलस्तन के समान व्यर्थ है ॥ २४ ॥

यच्चोच्यते—आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ २५ ॥

अन्वयः—आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनम् एव च, एतानि पञ्च अपि गर्भस्थस्य एव देहिन सृज्यन्ते ॥ २५ ॥

आयुरिति—आयुः = जीवनकालः, वयः इत्यर्थः कर्म = मरणपर्यन्तशुभाशुभानामाचरणञ्च, वित्तं=धनादि; विद्या = शास्त्राद्यभ्यासः, निधनम् = मृत्युः, एतानि पञ्च = आयुरादीनि पञ्चसंख्यकानि, गर्भस्थस्यैव = मातृगर्भस्थितस्यैव, देहिनः = प्राणिनः सृज्यन्ते ब्रह्मणेति शेषः ॥ २५ ॥

और कहा भी जाता है—कि, जब प्राणी माताके गर्भमें ही रहता है उसी समय ब्रह्मा उसके लिए आयु, जीविका साधक कार्य, धन, विद्या मृत्युकाल इन पाँचोंको निश्चित कर देते हैं ॥ २५ ॥

किञ्च—अवश्यम्भाविनो भावा भवन्ति महतामपि ।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः ॥ २६ ॥

अन्वयः—अवश्यम्भाविनः भावाः महताम् अपि भवन्ति, नीलकण्ठस्य नग्नत्वं, हरेः महाहिशयनं (च अत्र निदर्शनमितिशेषः) ॥ २६ ॥

अवश्यमिति—महतामपि=उत्तमानां नृपाणां देवानामपि, अवश्यम्भाविनः=अवश्यमेव भवितव्याः, भावाः=सुखदुःखादयो विषयाः भवन्ति= आपतन्ति । दृष्टान्तेनोपपादयति—नीलकण्ठस्य=सर्वेश्वरस्य शिवस्य नग्नत्वं= दिगम्बरत्वम्, हरेः=त्रिलोकीनाथस्य विष्णोः, महाहिशयनम्=शेषशय्या एवात्र निदर्शनमिति भावः ॥ २६ ॥

और भी—जो बात अवश्य होनेवाली होती है वह बड़ोंको भी होकर ही रहती है (उसे कोई रोक नहीं सकता), इसमें भगवान् शङ्करका नग्न रहना और विष्णुकी शेषशय्या ही प्रमाण है । इन लोगोंको किस बात की कमी है ? जो एक क्षणमें सब कुछ कर सकते हैं उन्हें वस्त्राभाव और शय्याका अभाव कैसा ? अतः यह इनके प्रारब्धका ही फल कहा जायगा । इसलिये भवितव्यता पर किसीका अधिकार नहीं है, वह होकर ही रहती है ॥ २६ ॥

अपि च—यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥२७॥

अन्वयः—यत् अभावि तत् न भावि, यत् भावि चेत् तत् अन्यथा न (भवति), इति अयं चिन्ताविषघ्नः अगदः किं न पीयते ॥ २७ ॥

यदिति—यत्=किमपि सुखदुःखादि, अभावि=न भावि अभावि— भविष्यत्कालेपि असम्भवि, तत्=तदसंभवसुखादि, न भावि=न भविष्यत्येव, यत्=सुखादि, चेत्=यदि, भावि=भविष्यत्येव, तत्=भाविसुखादि, अन्यथा न=विपरीतं दूरीकर्तुंवा न शक्यते, इति=अतः, अयम्=एषः, चिन्ताविषघ्नः= चिन्ता एव विषं तत् हन्तीति चिन्ताविषघ्नः चिन्तारूपविषापहारकः, अगदः= औषधम्, किं=कथं न पीयते=न सेव्यते, जनैस्त्वया वेति कर्तृपदमध्याहार्यम् ॥२७॥

और भी—"जो होनहार नहीं है वह न होगा और जो होनहार है वह अवश्य होकर रहेगा" चितारूप विषके नाशक इस औषधको मनुष्य क्यों नहीं सेवन करते हैं ? ॥ २७ ॥

एतत् कार्याक्षमाणां केषाञ्चिदालस्यवचनम् ।

एतदिति—"आयुःकर्मेत्यारभ्य यदभावीत्यन्तम्" एतत् = इदम्, कार्याक्षमाणां = परिश्रमसाध्यकार्ये असमर्थानाम्, केषाञ्चित् = पुरुषाणाम्, आलस्यवचनम् = आलस्येनोदीरितं वचनम्, दैवमेव सर्वं विधास्यति, आयासेन किं स्यात्' इत्यादिकमिति भावः।

"आयुः कर्म" से लेकर" यदभावि" यहाँ तक जो वचन कहे गये हैं ये किसी असमर्थ पुरुषके आलस्ययुक्त वचन हैं। इसलिए ये प्रमाण योग्य नहीं हैं। अतएव श्रेष्ठ पुरुषको उद्योगी होना चाहिए।

न दैवमिति सञ्चिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति ॥ २८ ॥

अन्वयः—(जनः) दैवं (यत् करिष्यति तदेव भविष्यति) इति सञ्चिन्त्य आत्मनः उद्योगं न त्यजेत्। यतः (जनः) अनुद्योगेन तिलेभ्यः तैलानि आप्तुं न अर्हति ॥ २८ ॥

नेति—दैवं = भाग्यम्, इति = एवं, सञ्चिन्त्य = विचार्य "अहं किं विधास्यामि यद्भाग्यं करिष्यति तदेव भविष्यति" इत्येवं रूपं पुरुषकारं विभाव्येत्यर्थः आत्मनः = स्वस्य, उद्योगं = व्यापारम् न त्यजेत् = न मुञ्चेत्। यतः अनुद्योगेन = व्यापाररहितेन, तिलेभ्यः = तिलाख्यान्नेभ्यः, तैलानि = स्नेहम्, आप्तुं = प्राप्तुम्, न अर्हति = न समर्थो भवतीति सम्बन्धः ॥ २८ ॥

'भाग्य में जो कुछ लिखा है, वही होगा इत्यादि सोचकर पुरुषको उद्योग-व्यापार, कर्तव्य कर्म नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि बिना यत्नके तिलसे तेल नहीं निकलता है। जैसे तेलसे भरा हुआ तिल बखार में रखा है, फिर भी बिना उद्योगके तेल मिलना अत्यन्त कठिन है। उसी तरह भाग्यपर निर्भर रह कर बिना यत्नके धन विद्यादिका लाभ नहीं हो सकता है। अतः भाग्यकी आशा छोड़कर अपनी उन्नतिके लिये मनुष्यको उद्योग (यत्न) करना ही चाहिए ॥ २८ ॥

अन्यच्च—उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥ २९ ॥

अन्वयः—उद्योगिनं पुरुषसिंहं लक्ष्मीः उपैति, दैवेन देयम् इति कापुरुषाः वदन्ति। (अतः) दैवं निहत्य आत्मशक्त्या पौरुषं कुरु, यत्ने कृते

(अपि) यदि (कार्यं) न सिध्यति (तदा) अत्र कः दोषः (इति चिन्तय) ॥२९॥

उद्योगिनमिति—उद्योगिनं=यत्नवन्तम्, पुरुषसिंहं=सिंहवत् विक्रमशालिनं पुरुषप्रधानम्, लक्ष्मीः=धनसम्पत्तिः, उपैति=स्वयमेव वृणुते। दैवेन=भाग्येन, सर्वं वस्तु—देयं=सम्पादनीयमिति, कापुरुषाः=कुत्सिताः पुरुषाः, सामर्थ्यहीनाः कातरा वा, वदन्ति=कथयन्ति, अतः दैवं=भाग्यम्, निहत्य=अनादृत्य, आत्मशक्त्या=स्वसामर्थ्येन, पौरुषं=यत्नम्, उद्योगम् कुरु=विधेहि' अथ यत्ने=व्यापारे, कृते=विहिते सति, यदि कार्यं न सिध्यति तर्हि; अत्र=अस्मिन् यत्ने कः दोषः इति चिन्तनीयः ॥ २९ ॥

और भी—उद्योगी और सिंहके समान पराक्रमी पुरुष को लक्ष्मी स्वयं वरती है। 'जैसा भाग्यमें होगा वैसा होगा' इत्यादि कायर मनुष्य कहा करते हैं। इसलिए भाग्यकी उपेक्षाकर अपनी शक्तिभर उद्योग करो। यदि उद्योग करने पर कार्यकी सिद्धि न हुई तो इस उद्योगमें क्या दोष है यह सोचना चाहिए ॥२९॥

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ ३० ॥

अन्वयः—यथा हि एकेन चक्रेण रथस्य गतिः न भवेत् एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ ३० ॥

यथेति—यथा=यद्वत्, एकेन=असहायेन, चक्रेण=रथांगेन—'पहिया' इति लोके प्रसिद्धेन, रथस्य=स्यन्दनस्य, गतिः=गमनम् न भवेत्=न स्यात्, एवं=तद्वत् पुरुषकारेण विना=उद्योगमृते, दैवं=भाग्यम् न सिध्यति=न फलति ॥३०॥

जैसे—एक पहिया से गाड़ी नहीं चल सकती वैसे ही उद्योगके विना भाग्य फल नहीं देता ॥ ३० ॥

तथा च—पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरुषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—(यत्) कर्म पूर्वजन्मकृतं (भवति) तत् दैवम् इति (बुधैः) कथ्यते, तस्मात् (जनः) अतन्द्रितः (सन्) पुरुषकारेण यत्नं कुर्यात् ॥ ३१ ॥

पूर्वजन्मेति—पूर्वजन्मकृतं=पूर्वस्मिन् जन्मनि कृतम्, यत्, कर्म तत्=तदेव, दैवं=भाग्यम्, इति कथ्यते लोकैरिति शेषः। तस्माद्धेतोः-पुरुषकारेण=पुरुषार्थेन, अतन्द्रितः=आलस्यरहितः सन् यत्नम्=उद्योगम्, कुर्यात् ॥ ३१ ॥

और भी—पूर्व जन्ममें किया हुआ जो कर्म है वही (इस जन्ममें) भाग्य

कहलाता है, इसीलिए पुरुषार्थसे मनुष्यको आलस्य छोड़कर उद्योग करना चाहिए॥

यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति ।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥ ३२ ॥

अन्वयः—यथा कर्ता मृत्पिण्डतः यत् यत् कर्तुम् इच्छति (तत् तत्) कुरुते एवं मानवः आत्मकृतं कर्म प्रतिपद्यते ॥ ३२ ॥

यथेति—यथा = यद्वत्, कर्त्ता = कुलालः, मृत्पिण्डतः = मृदां पिण्डं मृत्पिण्डम् = तस्मात् पञ्चम्याःतृतीयाया वा तसिप्रत्ययः । यद्यत्=घटशरावादि-कम्, इच्छति = चिकीर्षति, तत् तत् = ईप्सितम् वस्तु कुरुते = निर्माति, एवम् = उक्तप्रकारेण, मानवः = मनुष्यः, आत्मकृतम् = आत्मना कृतं सम्पादितम् कर्म= शुभाशुभं कर्मफलम् प्रतिपद्यते = भुङ्क्ते ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार कुम्भकार (कुम्भार) अपनी इच्छाके अनुसार मिट्टीके गोलेसे जो चाहता है वह बना लेता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने किये कर्म के अनुसार फलको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

काकतालीयवत् प्राप्तं दृष्ट्वाऽपि निधिमग्रतः ।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते ॥ ३३ ॥

अन्वयः—काकतालीयवत् प्राप्तं निधिम् अग्रतः दृष्ट्वा अपि दैवं स्वयं न आदत्ते (किन्तु तत्र अपि) पुरुषार्थम् अपेक्षते ॥ ३३ ॥

काकेति—काकतालीयवत् = काकतालीयन्यायेन दैववशात् अनायासेन, प्राप्तं = लब्धम्, निधिं = रत्नादिपूर्णं भाण्डम्, अग्रतः=पुरोभागे, दृष्ट्वाऽपि= विलोक्याऽपि, दैवं = अदृष्टम्, स्वयं न आदत्ते = आत्मना न गृह्णाति-अभिलषति न ददातीत्यर्थः, अपि तु तत्रापि पुरुषार्थम् = पुरुषयत्नम्, अपेक्षते = अभिलषति अतो मानवैः पुरुषार्थोऽवश्यं कार्यः ॥ ३३ ॥

काकतालीय न्यायके समान संयोग (भाग्य-दैवयोग) से प्राप्त हुए रत्नादि-पूरित भाण्ड (खजाने) को आगेमें देखकर भी भाग्य स्वयं लाकर नहीं दे देता है, अपितु (वहाँ भी) पुरुषार्थ की अपेक्षा होती है। उसे ग्रहण करने के लिए मनुष्यको यत्न करना ही पड़ता है । इसलिए भाग्यके भरोसे बैठा रहना उचित नहीं, किन्तु कर्तव्य करना चाहिये ॥ ३३ ॥

(काकतालीय न्यायका स्वरूप यह है—एक पेड़ से पका हुआ ताड़का फल भूमिपर गिरने ही वाला था कि उसीपर कौवेने बैठनेकी चेष्टा की अर्थात् फल को [illegible] कौवा भी आकर उसी पर बैठा।)

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—उद्यमेन कार्याणि हि सिध्यन्ति, मनोरथैः न सिध्यन्ति, हि मृगाः सुप्तस्य सिंहस्य मुखे न प्रविशन्ति ॥ ३४ ॥

उद्यमेनेति—उद्यमेन=उद्योगेन (प्रयत्नेन), कार्य्याणि=कर्माणि, सिध्यन्ति=फलन्ति, मनोरथैः=संकल्पमात्रैः कार्य्याणि न सिध्यन्ति । हि= यतः, सुप्तस्य=निद्रितस्य, उद्योगशून्यस्येति भावः । सिंहस्य=मृगराजस्य, मुखे=आनने, मृगाः=हरिणादयः पशवः, स्वयमेव—न प्रविशन्ति=न गच्छन्तीति भावः ॥३४॥

प्रयत्न करनेसे ही कार्य्य में सफलता मिलती है, न कि मनोरथ मात्रसे, क्योंकि सोये हुए (उद्योग शून्य) सिंह के मुख में आपसे आप मृग नहीं घुसते, किन्तु शिकार के लिये भी सिंह को प्रयत्न करना ही पड़ता है ॥३४॥

मातृपितृकृताभ्यासो गुणितामेति बालकः ।
न गर्भच्युतिमात्रेण पुत्रो भवति पण्डितः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—मातृपित[illegible]ः बालकः गुणिताम् एति, गर्भच्युतिमात्रेण पुत्रः पण्डितः न भवति ॥३५॥

मात्रिति—मातृपितृकृताभ्यासः=मात्रा पित्रा च कृतः=कारितः अभ्यासो येन सः—मातृपितृभ्यां पाठितः, बालकः=तनयः, गुणितामेति=पण्डितत्वं प्राप्नोति । गर्भच्युतिमात्रेण=केवलं गर्भान्निःसरणकालत एव, पुत्रः= बालकः, पण्डितः=विद्वान्, न भवति=न जायते ॥ ३५ ॥

माता-पिताके अभ्यास कराने पर ही बालक विद्वान् होता है, गर्भ से निकलते ही पुत्र विद्वान् नहीं हो जाता ॥३५॥

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ ३६ ॥

अन्वयः—येन (पित्रा) बालः न पाठितः (स) पिता बालस्य वैरी (अस्ति, यया वा) बालः न पाठितः (सा) माता (बालस्य) शत्रुः (अस्ति) (यतः) यथा हंसमध्ये बकः न शोभते (तथा) सभामध्ये (अशिक्षितः बालः अपि) न शोभते ॥ ३६ ॥

मातेति—येन=पित्रा माता वा, बालः=स्वपुत्रः, न पाठितः=न शिक्षितः स पिता, वैरी=अहितकारी, सा माता शत्रुः=अहितकारिणी भवति, अशि-

क्षितः स बालः हंसमध्ये = मरालेषु, बको यथा = बकवत्, सभामध्ये = विद्वत्सभायाम् न शोभते = न राजते, आदृतो न भवतीत्यर्थः ।। ३६ ।।

जिन मातापिताओंने अपने बालकको शिक्षित नहीं कराया, वे (माता पिता) उस बालकके शत्रु कहे जाते हैं । क्योंकि—हंसको सभामें बगुला जैसे शोभाको नहीं प्राप्त करता, वैसे ही पण्डितोंकी सभा में वह बालक आदरको नहीं प्राप्त करता है ।। ३६ ।।

रूप-यौवनसम्पन्ना विशाल-कुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ।। ३७ ।।

अन्वयः—रूपयौवनसम्पन्नाः विशालकुलसम्भवाः (अपि) विद्याहीनाः (जनाः) निर्गन्धाः किंशुका इव न शोभन्ते ।। ३७ ।।

रूपेति—रूपयौवनसम्पन्ना = रूपयौवनाभ्यां = सौन्दर्येण युवावस्थया च सम्पन्नाः विशालकुलसम्भवाः = श्रेष्ठवंशजाताः, विद्याहीनाः = विद्यया हीनाः—विद्यारहिताः जना इति शेषः, निर्गन्धा = गन्धरहिताः, किंशुकाः = पलाशपुष्पाणीव, न शोभन्ते = न राजन्ते ।। ३७ ।।

सुन्दरता और युवावस्थासे युक्त एवं उत्तम कुलमें उत्पन्न भी मूर्खपुरुष गन्ध रहित लाल एवं कोमल पलाश-पुष्पके समान शोभाको प्राप्त नहीं करते ।। ३७ ।।

मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः ।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किञ्चिन्न भाषते ।।३८।।

अन्वयः—सभायां वस्त्रवेष्टितः मूर्ख अपि शोभते, तावत् च मूर्ख शोभते यावत् किञ्चित् न भाषते ।। ३८ ।।

मूर्खेति—सभायां = पण्डितसदसि वस्त्रवेष्टितः = पट्टादिसद्वस्त्रावृतः मूर्खः = विद्यारहितः, तावत् = कदाचिदेव शोभते, तावत् च = तावत्पर्य्यन्तम्, मूर्खः शोभते, यावत् किमपि न भाषते = न वदति ।।३८।।

पण्डितोंकी सभामें विद्यारहित मनुष्य अच्छे वस्त्रोंको पहना हुआ भी तब तक ही शोभित होता है जब तक कि वह कुछ न बोले । अर्थात् जहाँ वह कुछ बोला कि उसकी पोल खुल जाती है ।। ३८ ।।

एतच्च चिन्तयित्वा स राजा पण्डितसभां कारितवान् । राजोवाच-भो भो पण्डिताः ! श्रूयताम्—अस्ति कश्चिदेवम्भूतो विद्वान् यो मम पुत्राणां नित्यमुन्मार्गगामिनामनधिगतशास्त्राणामिदानीं नीतिशास्त्रोपदेशेन पुनर्जन्म कारयितुं समर्थः ?

एतदिति—चिन्तयित्वा = विचार्य, पण्डितसभां = विद्वद्गोष्ठीम्। एवंभूतः = ईदृशः, उन्मार्गगामिनां = कुपथप्रवृत्तानाम्, अनधिगतशास्त्राणां = मूर्खाणाम् नीतिशास्त्रोपदेशेन = नीतिविद्याध्यापनेन, समर्थः = योग्यः।

इस तरह विचारकर उस राजाने विद्वानोंकी एक सभा बुलाई। बादमें राजाने सभी विद्वानोंको सम्बोधित करते हुए कहा कि—आपलोगोंमें कोई ऐसा विद्वान् है जो नित्य कुमार्गपर चलनेवाले और मूर्ख इन मेरे पुत्रोंको इस समय नीतिशास्त्र पढ़ाकर पुनर्जन्म करानेमें समर्थ हो?

यतः—काचः काञ्चनसंसर्गात् धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्॥ ३९॥

अन्वयः—(यथा) काचः काञ्चनसंसर्गात्, मारकतीं द्युतिं धत्ते तथा मूर्खः सत्सन्निधानेन प्रवीणतां याति॥ ३९॥

काच इति—काञ्चनसंसर्गात् = सुवर्णसंसर्गात्, काचः = अपकृष्टो धातुः, मारकतीं = मरकतमणिसम्बन्धिनीम्, द्युतिं = प्रभाम्, धत्ते = धारयति। तथा तद्वत्, मूर्खः, सत्सन्निधानेन = सतां विदुषां सन्निधानेन-सान्निध्येन, प्रवीणतां पाण्डित्यम् याति प्राप्नोति॥ ३९॥

क्योंकि—जैसे सोनेके संसर्गसे काँच मणिकी शोभाको प्राप्त करता है वैसे ही विद्वानोंके सहवाससे मूर्ख भी विद्वान् बन जाया करते हैं॥३९॥

उक्तं च—हीयते हि मतिस्तात! हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥४०॥

अन्वयः—हे तात! हि (जनस्य) मतिः हीनैः सह समागमात् हीयते, समैः च समतां, विशिष्टैः च विशिष्टताम् एति॥४०॥

हीयत इति—हे तात! जनस्य मतिः = बुद्धिः हीनैः = नीचैः सह = साकम्, समागमात् = सहवासात्, हीयते=नश्यति, समैः=आत्मतुल्यैः, समागमात् समतामेति तुल्यतां याति, विशिष्टैश्च = विद्वद्भिश्च, सह विशिष्टतां = महत्त्वं यातीत्यर्थः॥४०॥

कहा भी है—हे वत्स! अधम पुरुषके संग से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और अपने बराबरवालोंके साथ संग करनेपर बराबर की रहती है एवं विशिष्ट पुरुष (विद्वानों) के संगसे बुद्धि बढ़ती है। इसलिये महापुरुषों का ही संग करना चाहिये॥४०॥

अत्रान्तरे विष्णुशर्मनामा महापण्डितः सकलनीतिशास्त्रतत्त्वज्ञो

बृहस्पतिरिवाऽब्रवीत्—देव ! महाकुलसम्भूता एते राजपुत्राः । तन्मया नीतिं ग्राहयितुं शक्यन्ते । यतः—

अत्रेति—अत्रान्तरे = अस्मिन्नेवावसरे, विष्णुशर्मनामा विष्णुशर्म इति नाम यस्य सः विष्णुशर्माभिध इत्यर्थः, महापण्डितः = महाविद्वान्, सकलनीतिशास्त्रतत्त्वज्ञः = सकलानि च तानि नीतिशास्त्राणि चेति तानि, तेषां तत्वं जानातीति सम्पूर्णनीतिविद्याप्रवीणः, बृहस्पतिरिव = देवगुरुरिव, अब्रवीत् = अवादीत्, महाकुलसम्भूताः = श्रेष्ठवंशोत्पन्नाः, एते = इमे, राजपुत्राः = कुमाराः । तत् = तस्मात्, मया = विष्णुशर्म्मणा, नीतिं = राजशासनपद्धतिम्, ग्राहयितुं = बोधयितुम्, शक्यन्ते = पार्यन्ते ।

इसी समय (राजाकी उपर्युक्त बातें सुनकर) बृहस्पतिके समान सम्पूर्ण नीतिशास्त्रके सारको जाननेवाले महाविद्वान् विष्णुशर्मा बोले—राजन् ! ये राजपुत्र श्रेष्ठ राजकुल में उत्पन्न हुए हैं । इसलिये मैं इनको नीतिशास्त्रमें निपुण कर सकता हूँ क्योंकि—

नाऽद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती भवेत् ।
न व्यापार-शतेनापि शुकवत्पाठ्यते बकः ॥४१॥

अन्वयः—अद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती न भवेत् । बकः व्यापारशतेन अपि शुकवत् न पाठ्यते ॥४१॥

नेति—अद्रव्ये = असत्पात्रे, निहिता = स्थापिता प्रयुक्तेति भावः, काचित् क्रिया = कश्चनव्यापारः शिक्षा वा, फलवती = सफला, न भवेत् । यतः—व्यापारशतेनापि = उद्योगबाहुल्येनापि, बकः = मत्स्यादपक्षिविशेषः, शुकवत् = कीर इव, न पाठ्यते = नाध्याप्यते, तं कोऽपि पाठयितुं समर्थो न भवतीति भावः ॥४१॥

अयोग्य व्यक्तिके लिए किया गया परिश्रम कभी सफल नहीं होता । क्योंकि हजारों प्रयत्न करने पर भी सुग्गेकी तरह बगुला पढ़ाया नहीं जा सकता ॥४१॥

अस्मिंस्तु निर्गुणं गोत्रे नापत्यमुपजायते ।
आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥४२॥

अन्वयः—अस्मिन् तु गोत्रे निर्गुणम् अपत्यं न उपजायते, पद्मरागाणाम् आकरे काचमणेः जन्म कुतः ?

अस्मिंस्तु—अस्मिन् = श्रेष्ठतमे, तु, गोत्रे = वंशे, निर्गुणं = गुणरहितम्, अपत्यं = सन्ततिः, न उपजायते = न उदेति । यतः = यस्मात्, पद्मरागाणां =

मणिविशेषाणाम्, आकरे = खनौ, उत्पत्तिस्थाने, इत्यर्थः काचमणेः = काचस्य, जन्म = उत्पत्तिः, कुतः = कथम्, नैव सम्भवतीति भावः ॥ ४२ ॥

इस राजकुलमें गुणहीन दुर्बुद्धि सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती, क्योंकि पद्मराग मणिकी खानमें कचकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ॥ ४२ ॥

अतोऽहं षण्मासाभ्यन्तरे तव पुत्रान्नीतिशास्त्राऽभिज्ञान् करिष्यामि । राजा सविनयं पुनरुवाच—

अत इति—अतः = अस्मात् कारणात्, अहं = विष्णुशर्मा, षण्मासाभ्यन्तरे = षड्भ्यो मासेभ्योऽर्वाक् तव पुत्रान् = सुतान्, नीतिशास्त्राऽभिज्ञान् = नीतिज्ञान्, करिष्यामि = विधास्यामि । सविनयं = विनयेन सह वर्तमानम्, सप्रश्रयमिति भावः ।

इसलिए इस श्रेष्ठवंशमें उत्पन्न होनेके कारण—विद्या ग्रहण करनेमें समर्थ होनेसे— इन लोगोंको मैं ६ मासके भीतर नीतिविद्यामें निपुण (पारङ्गत) कर दूँगा ।

कीटोऽपि सुमनःसंगादारोहति सतां शिरः ।
अश्माऽपि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥४३॥

अन्वयः—सुमनःसङ्गात् कीटः अपि सतां शिरः आरोहति, महद्भिः सुप्रतिष्ठितः अश्मा अपि देवत्वं याति ॥ ४३ ॥

कीट इति—सुमनःसंगात् = पुष्पसंसर्गात्, कीटोऽपि = क्षुद्रजीवोऽपि, सतां = सज्जनानाम्, शिरः = मूर्धानम्, आरोहति = आरूढो भवति, महद्भिः = श्रेष्ठैः, सुप्रतिष्ठितः = स्थापितः, अश्माऽपि, = प्रस्तरोऽपि, देवत्वं = सुरभावम्, याति = प्राप्नोति ॥ ४३ ॥

क्षुद्रजीव कीड़ा भी पुष्पके संसर्गसे महापुरुषोंके मस्तकपर चढ़ जाता है एवं पत्थर भी श्रेष्ठ पुरुषके द्वारा स्थापित हो देवत्वको प्राप्त कर जाता है । उसी तरह ये मेरे पुत्र मूर्ख होनेपर भी आप जैसे महाविद्वान् के संसर्गसे अवश्य महत्त्वको प्राप्त करेंगे ॥४३॥

अन्यच्च—यथोदयगिरेर्द्रव्यं सन्निकर्षेण दीप्यते ।
तथा सत्सन्निधानेन हीनवर्णोपि दीप्यते ॥४४॥

अन्वयः—यथा द्रव्यम् उदयगिरेः सन्निकर्षेण दीप्यते तथा हीनवर्णः अपि सत्सन्निधानेन दीप्यते ॥४४॥

यथेति—उदयगिरेः = उदयाचलस्य, द्रव्यं = गैरिकादिपदार्थः, सन्निकर्षेण = सान्निध्येन सम्पर्केण इत्यर्थः। यथा यद्वत्, दीप्यते = प्रकाशते, तथा = तद्वत् सत्सन्निधानेन = सतां सन्निधानम् इति तेन, सज्जनसंसर्गेण, हीनवर्णोऽपि = नीचोऽपि, दीप्यते = विराजते, गुणवान् भवतीति भावः ॥४४॥

और भी—जैसे उदयाचलकी वस्तु भगवान् भास्कर के किरण-संसर्गसे प्रकाशित होती हैं उसी प्रकार विद्वानोंके संसर्गसे नीच (मूर्ख) भी शोभायमान (गुणसम्पन्न) हो जाते हैं ॥४४॥

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥४५॥

अन्वयः—गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य (तथैव) दोषाः भवन्ति (यथा याः) आस्वाद्यतोयाः नद्यः प्रहन्ति (ता एव) समुद्रम् आसाद्य अपेयाः भवन्ति ॥४५॥

गुणेति—गुणाः = विद्या-विनय-शौर्य-दया-दाक्षिण्यादयः गुणज्ञेषु = गुणवित्सु, गुणाः = गुणपदवाच्याः, भवन्ति = जायन्ते, ते = गुणाः, निर्गुणं = गुणरहितं जनम्, प्राप्य = लब्ध्वा, दोषाः = अगुणाः भवन्ति, यथा आस्वाद्यतोयाः = आस्वाद्यं = स्वादिष्ठं तोयं = जलं यासां ताः = मधुरजलयुक्ताः, नद्यः = गङ्गादयः, प्रवहन्ति, किन्तु ताः समुद्रं = सागरम्, आसाद्य = प्राप्य, अपेयाः = पातुमयोग्याः, भवन्ति ॥४५॥

गुण गुणियोंके यहाँ गुण बन जाते हैं और वे ही गुण मूर्ख में दोष हो जाते हैं। जैसे नदियाँ (गंगादि) मधुर जलवाली बहती हैं, किन्तु समुद्रसे मिलनेपर वे ही अपेय अर्थात् खारी हो जाती हैं ॥ ४५ ॥

तदेतेषामस्मत्पुत्राणां नीतिशास्त्रोपदेशाय भवन्तः प्रमाणम्। इत्युक्त्वा तस्य विष्णुशर्म्मणो बहुमानपुरस्सरं पुत्रान् समर्पितवान्।

तदिति—तत् = तस्मात् कारणात्, एतेषाम् = अग्रे समुपविष्टानाम्, अस्मत्पुत्राणाम् = मत्तनयानाम्, नीतिशास्त्रोपदेशाय = नीतिविद्याऽध्यापनाय, भवन्तः = यूयम्, प्रमाणम् = स्वतन्त्राः (अस्मिन् विषये किमपि अस्माभिर्न वक्तव्यमिति तत्त्वम्) इति = पूर्वोक्तम्, उक्त्वा, तस्य = महापण्डितस्य विष्णुशर्मणः, बहुमानपुरस्सरं = बहुमानः पुरस्सरो यस्मिन् तत् यथा स्यात्तथा सादरम्, पुत्रान् = स्वतनयान्, समर्पितवान् = सम्यक्प्रकारेण दत्तवान्।

महान् व्यक्तिके संसर्गसे ही मनुष्य महत्ताको प्राप्त करता है इसलिए इन

मेरे पुत्रोंको नीतिविद्याकी शिक्षा देनेके लिये आप सब प्रकार समर्थ हैं (आप जैसे उचित समझें वैसे इन्हें पढ़ाये, हम लोगों को इस विषय में कुछ भी कहना नहीं है। आजसे ये आपके अधीन हैं) ऐसा कहकर राजा सुदर्शनने बड़े आदर के साथ विष्णुशर्माके हाथ अपने पुत्रों को सौंप दिया।

॥ इति प्रस्ताविका समाप्ता ॥

—:०:—

अथ मित्रलाभः

अथ प्रासादपृष्ठे सुखोपविष्टानां राजपुत्राणां पुरस्तात् प्रस्तावक्रमेण स पण्डितोऽब्रवीत्।

अथेति—अथ इति मङ्गलार्थकः, मित्रलाभः = मित्रस्य लाभो यत्र-यस्मिन् परिच्छेदे स मित्रलाभनामकः प्रकरणविशेषः। प्रासादपृष्ठे = राजभवनस्योपरिभागे, सुखोपविष्टानां = सुखेन-अक्लेशेन, उपविष्टाः = स्थितास्तेषाम्, राजपुत्राणां = राज्ञः पुत्राः राजपुत्रास्तेषां-राजकुमाराणाम्, पुरस्ताद् = अग्रे, प्रस्तावक्रमेण = कथाप्रसङ्गेन, सः = विष्णुशर्म्मा, पण्डितः—पण्डा बुद्धिः सञ्जाता अस्येति पण्डितः, अब्रवीत् = उक्तवान्।

इसके बाद राजभवनकी छतपर प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए उन राजपुत्रों के आगे कथाप्रसङ्ग (बातचीतके सिलसिले) से वे विष्णुशर्म्मा नामक महाविद्वान् कहने लगे—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥१॥

अन्वयः—धीमताम् कालः काव्यशास्त्रविनोदेन गच्छति, मूर्खाणां च कालः व्यसनेन, निद्रया, कलहेन वा गच्छति ॥ १ ॥

काव्येति—धीमताम् = विदुषाम्, कालः = समयः, काव्यशास्त्रविनोदेन = काव्यश्च शास्त्रञ्च काव्यशास्त्रे ताभ्यां विनोदस्तेन--रसात्मकवाक्यव्याकरणादिमननेन य आनन्दस्तेन, गच्छति = याति, व्यतीतो भवति न तु निरर्थककालात्ययेनेत्यर्थः, च = पुनः, मूर्खाणां = अनधीतशास्त्राणाम्, कालः व्यसनेन = सुरापानद्यूतक्रीडादिना, निद्रया = प्रमाणाधिकस्वापेन, कलहेन = परस्परविवादेन वा, गच्छति = व्यतीतो भवति ॥ १ ॥

बुद्धिमान् पुरुषका जीवनकाल (समय) साहित्य और व्याकरणादि शास्त्रों के

अध्ययनमें ही बीतता है, और मूर्खों का जीवन (समय) जूआ, शराब, वेश्यागमन आदि दुर्व्यसन, अत्यधिक निद्रा या झगडा-फसाद में ही बीतता है ॥१॥

तद्भवतां विनोदाय काककूर्मादीनां विचित्रां कथां कथयामि राजपुत्रैरुक्तम्—आर्य ! कथ्यताम् । विष्णुशर्मोवाच-शृणुत । सम्प्रति मित्रलाभः प्रस्तूयते, यस्याऽयमाद्यःश्लोकः—

तदिति—तत् = तस्मात्, कारणात्, भवतां = युष्माकम्, विनोदाय = आनन्दप्राप्तये, काककूर्मादीनां = काकश्च कूर्मश्च तौ आदौ येषां तेषां—वायसकूर्ममृगमूषिकादीनाम्, विचित्रां = आश्चर्यंकरां, कथाम् = आख्यायिकाम्, कथयामि = ब्रवीमि । राजपुत्रैः = राजकुमारैः, उक्तम् = अभिहितम्, आर्य=पूज्य ! कथ्यतां = भण्यताम् । विष्णुशर्म्मोवाच = विष्णुशर्मानाम विद्वानवादीत्, शृणुत = सावधानेन चेतसा आकर्णयत, सम्प्रति = इदानीम्, मित्रलाभः = तन्नामकः प्रथमः परिच्छेदः, प्रस्तूयते = आरभ्यते । यस्य = मित्रलाभस्य, अयम् = वक्ष्यमाणः, आद्यः = प्रथमः श्लोकः = पद्यम् अस्तीति शेषः ।

इसलिये (यतः विद्वानोंका समय काव्यादिके पर्य्यालोचनसे ही बीतता है । अतः) आप लोगोंकी प्रसन्नताके लिये कौआ, कछुआ, हरिण, मूषक आदिकी मनोहारिणी कथा कहता हूँ । राजपुत्रोंने कहा—आर्य ! कहिये । विष्णुशर्माने कहा—आप लोग सावधान मनसे सुनें । इस समय मैं मित्रलाभकी कथा कहता हूँ । जिसका यह प्रथम श्लोक है :—

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः ।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत् ॥ २ ॥

अन्वयः—असाधनाः वित्तहीनाः बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः काककूर्ममृगाखुवत् कार्य्याणि आशु साधयन्ति ॥ २ ॥

असाधनेति—असाधनाः = न विद्यन्ते साधनानि येषां ते--उपायरहिताः, वित्तहीनाः = वित्तैः—धनैः हीनाः—रहिताः निर्धना इति यावत्, किन्तु बुद्धिमन्तः = मतियुक्ताः, सुहृत्तमाः = सुष्ठु हृदयं येषां ते सुहृदः अतिशयेन सुहृदः इति सुहृत्तमाः, आशु = शीघ्रम्, काक-कूर्ममृगाखुवत् = काकश्च = वायसश्च, कूर्मश्च = कच्छपश्च, मृगश्च = हरिणश्च आखुश्च = मूषिकश्च इति, तैः तुल्यम्, कार्य्याणि = कृत्यानि, साधयन्ति = निष्पादयन्ति, सन्मित्रमापन्नाः असाधना अपि जनाः कार्य्याणि शीघ्रं साधयन्तीति भावः ॥ २॥

कौआ, कछुआ, हरिण और चूहेकी तरह जो साधनहीन, धनहीन, किन्तु

बुद्धिमान और अच्छे मित्र वाले हैं वे शीघ्र ही कार्यों को सिद्ध कर लेते हैं ॥

राजपुत्रा ऊचुः—कथमेतत् ? विष्णुशर्मा कथयति ।

राजपुत्राः = राज्ञः पुत्राः = राजकुमाराः, ऊचुः = कथयामासुः, कथमेतत् = केन प्रकारेणेदम्, अस्तीति शेषः । विष्णुशर्मा = गुरुः, कथयति = वदति ।

राजपुत्रोंने कहा—यह किस प्रकार हुआ ? विष्णुशर्मा कहने लगे—

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति । अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयमायान्तं व्याधमपश्यत् । तमवलोक्याचिन्तयत्—'अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनञ्जातम् । न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति ? इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः ।

अस्तीति—गोदावरीतीरे = गोदावर्य्यास्तीरस्तस्मिन्, गोदावरीनामकनद्यास्तटे, विशालः = महान्, शाल्मली = 'सेमल' इति लोके ख्यातः, तस्याः, तरुः = वृक्षः अस्ति = वर्तते । यत्र = वृक्षे, नानादिग्देशात् = नानादिशश्च देशश्चेति एषां समाहारः—नानादिग्देशम्, तस्मात् = विभिन्नदिग्भ्यो देशेभ्यश्च, आगत्य = समेत्य, रात्रौ = निशायाम्, पक्षिणः = खगाः, निवसन्ति = वासं कुर्वन्ति । अथ = अनन्तरम्, कदाचित् एकस्मिन्समये, अवसन्नायाम् = व्यतीतायां रात्रौ अस्ताचलचूडाव = लम्बिनि अस्ता-चलस्य चूडा शिखरं तदवलम्बते इति तस्मिन्, अस्ताशिखराश्रिते सति, अस्तं गते सतीत्यर्थः । भगवति = एश्वर्यशालिनि, कुमुदिनीनायके = कुमुदिन्याः कैरविण्याः नायकः पतिः तस्मिन्—चन्द्रमसि = रजनीनाथे, प्रभातसमये इति यावत्, लघुपतनकनामा = लघुपतनक इति नाम यस्य सः वायसः = काकः, प्रबुद्धः = सुप्तोत्थितः सन्, कृतान्तमिव = यमराजमिव, द्वितीयं = अन्यम् आयान्तम् = आगच्छन्तम्, पाशहस्तम् = पाशः हस्ते यस्य सः तं—करधृतजालकं, व्याधं = लुब्धकम्, अपश्यत् = अवलोकयत् । तम् = व्याधम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, अचिन्तयत् = विचारितवान्, अद्य = अस्मिन्नहनि, प्रातः काले एव, अनिष्टदर्शनं = अशुभावलोकनम्, जातम् = भूतम्, न जाने = न वेद्मि, किमनभिमतं = किमनिष्टम्, दर्शयिष्यति = उपस्थापयिष्यति, इत्युक्त्वा = इति कथयित्वा, तदनुसरणक्रमेण = तस्य अनुसरणं = पश्चाद्गमनं तस्य क्रमेण = विधिना व्याकुलः = विशेषेण आकुलः—खिन्नः, चलितः = वव्राज ।

गोदावरी के तटपर एक महान् (बहुत शाखाओं से युक्त) सेमलका वृक्ष

था। वहाँ अनेक दिशाओं तथा देशोंसे (चारों ओर से) आकर रात में पक्षी निवास करते थे। एक दिन जब रात कुछ शेष रह गयी और भगवान् कुमुदिनीपति चन्द्रमा अस्ताचल शिखर का आश्रयण करने लगे (डूबने लगे) उसी समय लघुपतनक नाम के कौवेको नींद खुली। उठते ही उसने सामने दूसरे यमराजकी तरह आते हुए एक व्याधको देखा। उसे देख सोचने लगा कि "आज सवेरे ही अमङ्गलका दर्शन हुआ। न मालूम यह कौनसा अप्रिय कार्य उपस्थित करेगा (दिखायेगा)"। ऐसा सोचकर वह लघुपतनक नामक कौवा उसके पीछे-पीछे घबराकर (दुःखी होकर) चल पड़ा।

यतः—शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ३॥

अन्वयः—शोकस्थानसहस्राणि च भयस्थानशतानि दिवसे दिवसे मूढम् (यानि) आविशन्ति, (परन्तु) पण्डितम् न आविशन्ति ॥ ३ ॥

शोकेति—शोकस्थानसहस्राणि = शोकस्य=चिन्तायाः, स्थानानि = कारणानि तेषां सहस्राणि = सहस्रशश्चिन्ताया आस्पदानीत्यर्थः, भयस्थानशतानि=भयस्य—साध्वसस्य, स्थानानि—निमित्तानि तेषां शतानि—शतशः भयोत्पादकानि निमित्तानीत्यर्थः। दिवसे दिवसे = प्रतिदिनमित्यर्थः, मूर्ख—ज्ञानरहितम्, आविशन्ति = व्याकुलीकुर्वन्ति, किन्तु पण्डितं न = विद्वांसं न आकुलीकुर्वन्ति यतः = ते विवेकिनो भवन्ति ॥ ३ ॥

क्योंकि—मनुष्यके सामने हजारों शोकके एवं सैकड़ों भयके स्थान उपस्थित हुआ करते हैं, किन्तु वे शोक व भयके कारण मूर्खोंको ही सताते हैं, विद्वानोंको नहीं; क्योंकि विद्वान् अपने बुद्धिबलसे उन्हें नष्ट करने में समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

अन्यच्च—विषयिणामिदमवश्यं कर्त्तव्यम्

विषयिणामिति—विषयिणां = गृहस्थानाम् , इदं = वक्ष्यमाणम्, अवश्यं = निश्चयमेव, कर्त्तव्यम् = करणीयम्। कर्त्तव्यमाह—

और सांसारिक मनुष्यों को यह प्रतिदिन अवश्य विचार करना चाहिए।

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपस्थितम्।
मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति ॥ ४ ॥

अन्वयः—उत्थाय उत्थाय अद्य मरणव्याधिशोकानां (मध्ये) किं निपतिष्यति ? (इति) उपस्थितं महत् भयम् बोद्धव्यम् ॥ ४ ॥

उत्थायेति—उत्थायोत्थाय=शयनात् प्रबुद्धः, अद्य = अस्मिन्नहनि, मरण

मृत्युः, व्याधिः = कष्टम्, शोकः = अनुतापः, एषां मध्ये किम्—मरणं व्याधिः, शोको वा, निपतिष्यति = आगमिष्यति, इति = इदम्, उपस्थितम् = प्राप्तम्, महत् = अतिदारुणम्, भयम् = भयकारणम्, बोद्धव्यम् = विवेचनीयमित्यर्थः ॥ ४ ॥

प्रतिदिन उठते ही सावधान होकर सोचना चाहिए कि आज मृत्यु, शोक अथवा भय, इन तीनोंमें से कौन-सी विपत्ति आनेवाली है ? न जाने कब कौन सी विपत्ति आ जाय। अतः दारुण भयके कारणों को भली-भाँति सोचना चाहिए ॥ ४ ॥

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान् विकीर्य्य जालं विस्तीर्णम्। स च प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। तस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पंस्तांस्तण्डुलकणानवलोकयामास। ततः कपोतराजस्तण्डुलकणलुब्धान् कपोतान् प्रत्याह-कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां सम्भवः ? तन्निरूप्यतां तावत्। भद्रमिदं न पश्यामि प्रायेणानेन तण्डुलकणलोभेनास्माभिरपि तथा भवितव्यम्।

अथेति—अथ = किञ्चित्कालानन्तरम् तेन = पूर्वोक्तेन, व्याधेन = लुब्धकेन, तण्डुलकणान् = तण्डुलखण्डान्, विकीर्य = भूमौ निक्षिप्य, जालं विस्तीर्णम् = पाशः प्रसारितः, स च = व्याधश्च, प्रच्छन्नो भूत्वा = अन्तरितो भूत्वा स्थितः = तस्थौ। तस्मिन्नेव काले = तस्मिन्नेव समये, चित्रग्रीवनामा = चित्रा कर्बुरा ग्रीवा यस्य सः चित्रग्रीवः, स नाम यस्य स चित्रग्रीवनामकः, कपोतराजः = कपोतानां=परावतानाम्राजा कपोतराजः, सपरिवारः=सपरिकरः, वियति=आकाशे विसर्पन् गच्छन्, तान् = भूमौ निक्षिप्तान् तण्डुलकणान् = तण्डुलखण्डान्, अवलोकयामास = ददर्श। ततः = दर्शनानन्तरम् कपोतराजः, तण्डुलकणलुब्धान् = तण्डुलकणभक्षणोन्मुखान् कपोतान् = पारावतान्, प्रत्याह = प्रत्युक्तवान्, अत्र = अस्मिन् निर्जने = जनरहिते वने = अरण्ये तण्डुलकणानां = तण्डुलखण्डानाम्, कुतः = कस्मात् स्थानात्, सम्भवः = उत्पत्तिः ? तन्निरूप्यताम् तावत् तत् = तस्मात् हेतोः तावत् = आदौ, निरूप्यताम् = सम्यक् विचार्यताम्, इदं = एषां भक्षणम् भद्रं=सुखकरम्. न = नहि, पश्यामि = अवलोकयामि, प्रायेण=बाहुल्येन, अनेन=एतेन, तण्डुलकणलोभेन, तण्डुलखण्डलोभेन अस्माभिरपि = सर्वैरपि कपोतैः "तथा भवितव्यम्" इत्यस्य "पथिकः स मृतो यथा" इत्यनेनान्वयः।

कुछ देर बाद उस व्याधने चावलके टुकड़ोंको जमीनपर छींट कर अपना

जाल फैला दिया और स्वयं छिपकर बैठ गया। उसी समय अपने परिवार के साथ आकाशमें उड़ते हुए चित्रग्रीवनामक कबूतरोंके राजाने उन चावलके टुकड़ोंको देखा। बादमें चावलके टुकड़ों को खानेके लिए ललचाये हुए उन कबूतरोंसे चित्रग्रीवने कहा—इस निर्जन जंगलमें चावलके कण कहाँ से आ सकते हैं? अतः पहिले इसका विचार अच्छी तरह करो। मैं इसे कल्याणकारी नहीं समझता हूँ। सम्भव है इन चावलके कणोंके लोभसे हम लोगोंकी भी वही दशा होगी जैसी कि—एक पथिककी।

कङ्कणस्य तु लोभेन मग्नः पङ्के सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः स मृतो यथा॥५॥

अन्वयः—कङ्कणस्य तु लोभेन सुदुस्तरे पंके मग्नः वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः स पथिकः यथा मृतः (तथा अस्माभिः अपि मृतैः भवितव्यम्)॥ ५॥

कङ्कणेति—कङ्कणस्य=वलयस्य, लोभेन, सुदुस्तरे=निःसर्तुमशक्ये पंके =कर्दमे, मग्नः=निमज्जितः, पथिकः=पान्थः, वृद्धव्याघ्रेण=वृद्धतरक्षुणा 'तरक्षुस्तु मृगादनः' इत्यमरः, सम्प्राप्तः=सम्यक् प्राप्त आक्रान्त इत्यर्थः, यथा=येन प्रकारेण, स मृतः=ममार, तथा अस्माभिरपि भवितव्यमिति पूर्वेणान्वयः॥५॥

कँगनके लोभसे गाढ़े कीचड़में फँसा हुआ पथिक जैसे बूढ़े बाघसे पकड़े जानेपर मर गया, वही दशा हम लोगोंकी भी होगी॥ ५॥

कपोता ऊचुः—कथमेतत्? सोऽब्रवीत्—

कपोताः=पारावताः, ऊचुः=कथयामासुः=कथमेतत्=केन प्रकारेणेदम्? सः=चित्रग्रीवः, अब्रवीत्=ऊवाच।

कबूतर बोले—यह कैसे हुआ? चित्रग्रीव कहने लगा—

॥ कथा १॥

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम्। एको वृद्धो व्याघ्रः स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते 'भोः भोः पान्थाः। इदं सुवर्णकंकणं गृह्यताम्, ततो लोभाकृष्टेन केनचित्पान्थेनालोचितम्-"भाग्येनैतत् सम्भवति। किन्त्वत्रात्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न विधेया।

अहमिति—अहम्=चित्रग्रीवः, एकदा=एकस्मिन् समये, दक्षिणाऽरण्ये=दक्षिणदिग्भवे वने, चरन्=गच्छन्, अपश्यम्=अवालोकयम्, एकः =असहायः, वृद्धव्याघ्रः=जीर्णशार्दूलः, स्नातः=कृतस्नानादिः, कुशहस्तः=दर्भपाणिः,

सरस्तीरे--सरसः=तडागस्य, तीरे=तटे, ब्रूते=कथयति, भोः भोः पान्थाः = हे हे पथिकाः, इदम्=मम हस्तस्थम्, सुवर्णकङ्कणम्=कनकवलयम्, गृह्यताम् = आदीयताम्। ततः=तदनन्तरम्, लोभाकृष्टेन=लोभेन--गर्धया आकृष्टस्तेन, केनचित्पान्थेन=अनिर्दिष्टपथिकेन, आलोचितम्=विचारितम्, भाग्येन =अदृष्टेन, एतत्=कनकवलयप्राप्तिः, सम्भवति=संभाव्यते, किन्तु----अत्र= अस्मिन्, आत्मसन्देहे=आत्मनः सन्देहः तस्मिन्, प्राणसंशयप्रदे, प्रवृत्तिः= प्रयत्नः, न विधेया= =न कर्त्तव्या।

मैंने एक समय दक्षिण देशके जंगलमें जाते हुए देखा कि----एक बूढ़ा बाघ स्नानकर हाथमें कुश लेकर तालाबके किनारे कह रहा है--हे पथिकों! "यह सुवर्ण कंकण ले लो।" इसके बाद एक यात्री लोभ से आकृष्ट हो मनमें विचार करने लगा कि—"ऐसा समय भाग्यसे ही आता है। किन्तु इसमें प्राणको बाजी है। इसलिये इस कार्य्यमें। प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।"

यतः—अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।
यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे॥ ६॥

अन्वयः—अनिष्टात् इष्टलाभेऽपि शुभा गतिः न जायते। यत्र विषसंसर्गः आस्ते तत् अमृतम् अपि मृत्यवे (भवति)॥ ६॥

अनिष्टादिति—अनिष्टात्=अशुभात्, इष्टलाभेऽपि=इष्टस्य=लाभः इष्टलाभः तस्मिन्—अभिलषितलाभेऽपि, शुभा=कल्याणदा, गतिः=दशा, न जायते=न भवति, यत्र=यस्मिन्, विषसंसर्गः=विषसम्पर्कः, आस्ते=वर्तते, तत्=तादृशम्, अमृतमपि=सुधापि, मृत्यवे=मरणाय, भवतीति शेषः॥६॥

क्योंकि---दुर्जनसे इष्ट वस्तु की प्राप्ति होनेपर भी कल्याण नहीं होता। जैसे अमृत यद्यपि अत्यन्त ही प्रिय वस्तु है, किन्तु उसमें विष का सम्बन्ध हो जाने से वह विष हो जाता है अर्थात् मृत्युका कारण बन जाता है॥ ६॥

किन्तु सर्वत्राऽर्थार्जने प्रवृत्तौ सन्देह एव।

किन्त्विति--किन्तु=परन्तु, सर्वत्र=सर्वस्मिन् स्थाने, अर्थार्जने=धनोपार्जने प्रवृत्तौ=प्रयत्ने, सन्देहः=जीवनसन्देह एव।

तथा चोक्तम्—न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति॥७॥

अन्वयः—नरः संशयम् अनारुह्य भद्राणि न पश्यति। पुनः संशयम् आरुह्य यदि जीवति (तदा) भद्राणि पश्यति॥ ७॥

नेति—नरः = मनुष्यः, संशयं = जीवितादिसन्देहम्, अनारुह्य = अप्राप्य, भद्राणि = कल्याणानि, न पश्यति, पुनः = भूयः, संशयम् = संकटम् आरुह्य = प्राप्य, यदि = चेत् जीवति = प्राणधारणं करोति, तदा भद्राणि पश्यति ॥ ७ ॥

जैसा कहा भी है—मनुष्य संकटमें बिना पड़े मंगल नहीं देखता है, किन्तु कष्टमें पडकर जो जीता-जागता बचता है, वही कल्याणको देखता है ॥७॥

तन्निरूपयामि तावत्। प्रकाशं ब्रूते—कुत्र तव कंकणम्? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य्य दर्शयति, पान्थोऽवदत् कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः? व्याघ्र उवाच शृणु रे पान्थ! प्रागेव यौवनदशायामतिदुर्वृत्त आसम्। अनेकगोमानुषाणां वधान्मे पुत्रा मृता दाराश्च, वंशहीनश्चाहम्। ततः, केनचिद्धार्मिकेणाहमादिष्टः--दानधर्मादिकं चरतु भवान्। तदुपदेशादिदानीमहं स्नानशीलो दाता वृद्धो गलितनखदन्तो कथं न विश्वासभूमिः?

तदिति = तस्मात् कारणात्, निरूपयामि = निश्चिनोमि, यदस्य निकटे सुवर्णकङ्कणं वर्तते नवेति। प्रकाशं ब्रूते = स्पष्टमुच्चैः यथा स्यात्तथा वक्ति, कुत्र, = कस्मिन् स्थाने, तव कङ्कणम् = भवतो वलयम्, व्याघ्रः = शार्दूलः, हस्तं = करम्, प्रसार्य = विस्तार्य्य, दर्शयति--पान्थाय इति सम्बन्धः। पान्थः = पथिकः अवदत् = अवोचत्, कथं मारात्मके = मारः आत्मा यस्य सः मारात्मकः तस्मिन् घातुके त्वयि = व्याघ्रे विश्वासः = प्रत्ययः। व्याघ्र उवाच--रे पान्थ = पथिक! शृणु = आकर्णय। प्राग् एव = पूर्वस्मिन् काले एव, यौवन-दशायां = युवावस्थायाम् अहम् अतिदुर्वृत्तः = अत्यन्तं दुराचरणासक्त आसम् अनेकगोमानुषाणां अनेके च ते गोमानुषाश्च तेषां = बहूनां गोमानवानाम् वधात् = मारणात्, मे = मम, पुत्राः = तनयाः, दाराः = स्त्री च, मृताः = यम-सदनातिथयोऽभूवन्, अहं च—वंशहीनः = वंशेन हीनः वंशहीनः सन्तानरहितो ऽभवम्। ततः = तदनन्तरम्, केनचित् = केनापि, धार्मिकेण = धर्मप्रवणेन पुरुषेण धर्मात्मनेति यावत्, अहम् = व्याघ्रः आदिष्टः = आज्ञयानुगृहीतः। भवान् = त्वम्, दानधर्मादिकम् = दानं धर्मश्च आदिर्यस्य तत्, चरतु = अनुतिष्ठतु। तदुपदेशात् = तस्य महापुरुषस्य, उपदेशात् = आदेशात्, इदानीम् = साम्प्रतम् स्नानशीलः = नित्यस्नायी, दाता = दानकर्त्ता, वृद्धः = वयोतीतः, गलितनखदन्तः = गलितं नखदन्तं यस्यासौ = गलितनखदन्तः, कथं न विश्वासभूमिः = विश्वासयोग्यः

इसलिये सर्वप्रथम निश्चय करूँ कि इसके हाथ में कंकण है कि नहीं!

जोरसे बोला—अरे ! तुम्हारा वह 'कंकण' कहाँ है, बाघने हाथ फैलाकर दिखा दिया। पथिकने कहा—तू हिंसक प्राणी है, मैं तुझपर कैसे विश्वास करूँ ? व्याघ्र बोला—अरे पथिक ! सावधान होकर सुन। मैं युवावस्थामें बड़ा दुराचारी था। अनेक गाय और मनुष्योंका वध मैंने किया, जिस पापसे मेरे स्त्री और बच्चे मर गये, तथा मैं वंशहीन हो गया। तब किसी धर्मात्मा पुरुषने उपदेश दिया कि "तुम दानधर्म किया करो।" उस महापुरुषके उपदेशसे मैं इस समय नित्य स्नान करता हूँ, एवं दान करनेके लिये प्रस्तुत हूँ, वृद्ध हूँ, नख और दाँत भी मेरे गिर गये हैं, फिर मैं विश्वासपात्र कैसे नहीं ?

यतः—इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥८॥

अन्वयः—इज्याध्ययनदानानि, तपः, सत्यं, धृतिः, क्षमा, अलोभः, अयं धर्मस्य, अष्टविधः, मार्गः स्मृतः ॥८॥

इज्येति—इज्या = यज्ञः, अध्ययनं = शास्त्राध्ययनम्, दानं = सत्पात्रे त्यागः तानि, तपः = व्रताद्यनुष्ठानम्; सत्यं=तथ्यम्, धृतिः = धैर्यम्, क्षमा = सहनशीलता, अलोभः = लोभराहित्यम्, अयम्, धर्मस्य = पुण्यस्य अष्टविधः अष्टप्रकारकः, मार्गः = पन्थाः, स्मृतः = प्रतिपादितः, अस्तीति शेषः ॥८॥

क्योंकि—यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रोंको पढ़ना, सत्पात्रमें दान देना, उपवासादि करना, सत्य बोलना, कष्ट आनेपर धैर्य्य धारण करना, सहनशील होना तथा किसी वस्तुका लोभ न करना, ये आठ धर्मके मार्ग कहे हैं ॥८॥

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ॥ ९ ॥

अन्वयः—तत्र पूर्वः चतुर्वर्गः दम्भार्थम् अपि सेव्यते। उत्तरः चतुर्वर्गः महात्मनि एव तिष्ठति ॥९॥

तत्रेति—तत्र = अष्टविधेषु पूर्वोक्तेषु पूर्वः = प्रथमः, चतुर्वर्गः = यज्ञाध्ययनदानतपसां वर्गः, दम्भार्थं=दम्भाय-प्रतिपत्तये इदम्, दम्भार्थं सेव्यते=आचर्यते, उत्तरस्तु = चरमस्तु, चतुर्वर्गः = सत्य-धृति-क्षमा-अलोभात्मकः, महात्मनि = श्रेष्ठपुरुषे एव तिष्ठति ॥९॥

पूर्वोक्त आठ प्रकारके मार्गमें पहलेके चार—(यज्ञ करना, वेदादि पढ़ना, दान देना और तपस्या करना) तो प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए पाखण्डी लोग भी किया

करते हैं, किन्तु अन्तके चार (सत्य बोलना, धैर्यधारण करना, कष्टादि सहन करना तथा निःस्पृह होना) ये महात्माओंमें ही पाये जाते हैं ॥९॥

मम चैतावांल्लोभविरहो येन स्वहस्तस्थमपि सुवर्णकङ्कणं यस्मै कस्मैचिद्दातुमिच्छामि। तथापि व्याघ्रो मानुषं खादतीति लोकप्रवादो- दुर्निवारः।

ममेति—मम व्याघ्रस्य, एतावान् = इयान्, लोभविरहः = स्पृहाऽभावः, येन = कारणेन, स्वहस्तस्थं = स्वहस्ते तिष्ठतीति तत् अपि सुवर्णकङ्कणं = कनकवलयम् यस्मै कस्मैचित् = आततायिनेऽपि पुरुषाय, दातुम् = वितरितुम् इच्छामि, तथापि = दानादिसत्कार्य्यप्रवृत्तावपि, व्याघ्रः=शार्दूलः, मानुषं खादति इति लोकप्रवादः = प्रकृष्टः वादः प्रवादः सिद्धान्तः, दुर्निवारः = दुःखेनापि निवारयितुमशक्यः।

मैं यहाँ तक लोभरहित हूँ कि अपने हाथका सुवर्णवलय भी जिस किसी को देना चाहता हूँ, किन्तु 'बाघ मनुष्यको खाता है' यह जो लोकापवाद चला आ रहा है, वह मिटाये नहीं मिट सकता।

यतः—गतानुगतिको लोकः कुट्टिनीमुपदेशिनीम्।
प्रमाणयति नो धर्मे तथा गोघ्नमपि द्विजम् ॥१०॥

अन्वयः—गतानुगतिकः लोकः, यथा, गोघ्नम्, अपि द्विजं धर्मेप्रमाणयति तथा उपदेशिनीम्, अपि, कुट्टिनीम्, धर्मे, नो प्रमाणयति ॥ १० ॥

गतेति—गतानुगतिकः = गतस्य = व्यतीतस्य पूर्वजाचरितस्य पथः, अनुगतम् तेन आचरित इति गतानुगतिकः = पूर्वजाचरितमार्गानुयायीत्यर्थः, लोकः = जनः, धर्मे = व्रतोपवासादिनियमविषये, गोघ्नं = गां हन्ति इति गोघ्न; तमपि द्विजम्, यथा = प्रमाणयति = प्रमाणीकरोति, तथा उपदेशिनीम् = उपदेशदक्षाम्, कुट्टिनीम् = कुलटाम्, धर्मे न प्रमाणयति = न विश्वसिति ॥ १०॥

क्योंकि—प्राचीन लकीरपर चलनेवाला यह संसार धर्मके विषयमें जैसे—चाहे वह गोहत्याकारक ही क्यों न हो—ब्राह्मण की बातको प्रमाण मानता है, वैसे धर्मरता कुटिनीकी बात को नहीं मानता। अभिप्राय यह है कि संसार अन्धपरम्परासे आनेवाली बातके ही पीछे चलता है। पहिले व्यभिचारासक्त होनेपर भी इस समय धर्मोपदेश करनेवाली कुटिनीकी बातको कोई नहीं सुनता। इसी तरह पूर्वकालमें मैंने हिंसादि कार्य किया है, किन्तु इस समय उन दोषोसे दूर रहने पर भी मेरी बात—कोई नहीं सुनता ॥१०॥

मया च धर्मशास्त्राण्यधीतानि । शृणु–

मयेति—मया = व्याघ्रेण धर्मशास्त्राणि = धर्मप्रतिपादकानि शास्त्राणि अधीतानि = पठितानि, शृणु = आकर्णय—

और मैंने धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन किया है। सुनो–

मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्ते भोजनं तथा ।
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ॥ ११ ॥

अन्वयः—यथा मरुस्थल्यां वृष्टिः (सफला भवति) (यथा वा) क्षुधार्तेभोजनं सफलं (भवति) तथा (यत्) दानं दरिद्रे दीयते, (हे) पाण्डुनन्दन ! (तत्) सफलम् (भवति) ॥ ११ ॥

मर्विति—मरुस्थल्यां = मरुभूमौ, यथा वृष्टिः = धारासम्पातः, सफला भवति यथा वा क्षुधार्ते = क्षुधया आर्ते = पीडिते, भोजनं सफलं भवति, तथा हे पाण्डुनन्दन = हे युधिष्ठिर ! दरिद्रे = धनरहिते = अकिञ्चन इति यावत् (यत्) दानं दीयते = वितीर्यते (तत्) सफलं भवतीत्यन्वयः ॥ ११ ॥

(महाभारतकी बात है—कोई ऋषि महात्मा युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं) हे युधिष्ठिर, जैसे मरुभूमि—मारवाड़–में वृष्टि सार्थक होती है और भूखे को भोजन देना सार्थक होता है, वैसे ही दरिद्र मनुष्यको दान देना (अत्यन्त) सार्थक (कहा गया) है ॥ ११ ॥

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥ १२ ॥

अन्वयः—यथा आत्मनः प्राणाः अभीष्टाः तथा भूतानाम् अपि ते अभीष्टाः (अतः) साधवः आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति ॥ १२ ॥

प्राणा इति—यथा = येन प्रकारेण, आत्मनः = स्वस्य, प्राणाः = असवः अभीष्टाः = प्रेयांसः, तथा भूतानामपि = अन्येषामपि प्राणिनाम्, ते प्राणाः इष्टाः, आत्मौपम्येन = उपमायाः भावः औपम्यं, आत्मनः औपम्यं, तेन = आत्मरूपेणेत्यर्थः, साधवः = सज्जनाः, भूतेषु = प्राणिषु, दयां = कृपाम्, कुर्वन्ति = विदधति ।

जैसे अपने प्राण (अपनेको) प्रिय हैं, वैसे ही औरों को भी प्राण प्रिय होते हैं, ऐसा समझकर महात्मा पुरुष जीवमात्रके ऊपर अपनी तरह अर्थात् अपने प्राण के समान दया करते हैं ॥ १२ ॥

अपरञ्च—प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥ १३ ॥

अन्वयः—पुरुषः प्रत्याख्याने दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये च आत्मौपम्येन प्रमाणम् अधिगच्छति ॥ १३ ॥

प्रत्याख्यान इति—पुरुषः = मनुष्यः, प्रत्याख्याने = अपमाने, दाने = धनप्राप्ती, सुखदुःखे = सुखं च दुःखं च अनयोः समाहारः तस्मिन्, प्रियाप्रिये = प्रियं च अप्रियं च यस्मिन् = इष्टानिष्टे, आत्मौपम्येन = आत्मानमेव दृष्टान्तं कृत्वा, प्रमाणं = निश्चयम्, अधिगच्छति = याति ॥ १३ ॥

और भी अपमान होनेमें, दान प्राप्त होनेमें, सुख एवं दुःखमें और इष्टानिष्टमें अपने जैसा अनुभव सभी जीवोंको होता है, ऐसा विचार कर ही सज्जन लोग जीवमात्र पर दया करते हैं ॥ १३ ॥

अन्यच्च—मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यः परदारेषु मातृवत्, परद्रव्येषु लोष्टवत्, सर्वभूतेषु आत्मवत्, पश्यति स पण्डितः (अस्ति) ॥ १४ ॥

मातृवदिति—यः = पुरुषः, परदारेषु = परेषां दाराः परदाराः तेषु, मातृवत् = मातरामवेत्यर्थः । परद्रव्येषु = परधनादिषु, लोष्ठवत् = लोष्ठादिवेत्यर्थः । सर्वभूतेषु = समस्तप्राणिषु, सर्वभूतान् इत्यर्थः, आत्मवत् = स्वात्मा इव, यः पश्यति, स पण्डितः = विद्वान् अस्ति ॥ १४ ॥

वह पण्डित है जो परस्त्रीको माताके समान, दूसरेके धनको मिट्टीके ढेलोंकी तरह और सभी जीवोंको अपनी आत्माकी तरह देखता है ॥ १४ ॥

त्वं चातीव दुर्गतस्तेन तत्तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम् ।

त्वमिति—त्वञ्च = भवांश्च, अतीव = अत्यन्तं यथा स्यात्तथा, दुर्गतः = दुरवस्थापन्नः, तेन = हेतुना, तत् = वलयम्, तुभ्यं = भवते, दातुं = वितरितुम्, सयत्नः = यत्नेन सहितः, अहम् = व्याघ्रः अस्मीति शेषः ।

तुम अत्यन्त दीन हो अतः कंगन तुम्हें देना चाहता हूँ ।

तथा चोक्तम्—दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥ १५ ॥

अन्वयः—(हे) कौन्तेय ! दरिद्रान् भर, ईश्वरे धनं मा प्रयच्छ, औषधं व्याधितस्य पथ्यं (भवति) नीरुजस्य औषधैः किम् (प्रयोजनम् अस्ति) ॥ १५ ॥

दरिद्रानिति—हे कौन्तेय = युधिष्ठिर, दरिद्रान् = धनशून्यान्, भर = पालय,

ईश्वरे = धनवति, धनम् = द्रविणं, मा प्रयच्छ = न देहि, व्याधितस्य = गदार्त्तस्य

औषधं = भेषजम्, पथ्यं = हितं भवति, नीरुजस्य = व्याधिरहितस्य, औषधैः किम्, न कोऽपि लाभो भवतीत्यर्थः ॥ १५ ॥

हे युधिष्ठिर ! दरिद्रोंका पालन करो और धनवानों को धन मत दो, क्योंकि रोगी पुरुषको ही दवा गुण करती है नीरोगोंको औषधि देने से क्या लाभ ? १५॥

अन्यच्च—दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणि ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥१६॥

अन्वयः—दातव्यम् , इति (बुद्ध्या) यत् दान देशे काले च अनुपकारिणि पात्रे च दीयते, तत्, दानं (बुधैः) सात्त्वकं स्मृतम् ॥ १६ ॥

दातव्यमिति—दातव्यम् = दातुं योग्यं देयमिति यावत्, यद्दानं, देशे = काश्यादितीर्थस्थानेषु काले सूर्यचन्द्रग्रहणादौ, अनुपकारिणि = प्रत्युपकाररहिते, पात्रे = सत्पात्रे, ब्राह्मणादौ, दीयते = वितरणं क्रियते तद्वितरणं सात्त्विकं = पुण्यजनकं स्मृतम् = कथितम् , शास्त्रेष्विति शेषः ॥ १६ ॥

और भी—"देना है" इस स्वार्थरहित बुद्धिसे जो दान तीर्थादिस्थानमें और ग्रहण आदि के पर्वके समयमें तथा सत्पात्रका विचारकर ब्राह्मणादिको दिया जाता है, वह सात्त्विकदान कहा गया है ॥ १६ ॥

तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकङ्कणं गृहाण । ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतो लोभात् सरः स्नातुं प्रविशति तावन्महापङ्के निमग्नः पलायितुमक्षमः । पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत्-अहह ! महापङ्के पतितोऽसि अतस्त्वामुत्थापयामि" इत्युक्त्वा शनैः शनैरुपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः स पान्थोऽचिन्तयत्—

तदिति—तत् = तस्मात्, कारणात्, अत्र सरसि = तडागे, स्नात्वा = जलावगाहनं कृत्वा, सुवर्णकङ्कणं = सुवर्णवलयम्, गृहाण = स्वीकुरु । ततः = व्याघ्रवचनानन्तरम् , यावत् असौ = पथिकः, तद्वचःप्रतीतः = तस्य वचः तद्वचः तस्मिन् प्रतीतः = विश्वस्तः सन्, लोभात् = लिप्सातः, स्नातुं = स्नानं कर्तुम्, सरः = तडगम्, प्रविशति = प्रवेशं करोति, तावत् महापङ्के = गाढे कर्दमे, निमग्नः = पतितः, पलायितुमक्षमः = आत्मरक्षणाय पलायनायऽसमर्थोऽभूदिति । पङ्के = कर्दमे, पतितं = निमग्नम् दृष्ट्वा—अवलोक्य, व्याघ्रः = शार्दूलः, अवदत = उवाच, अहह = इति खेदे, महापङ्के पतितोऽसि = निबिडे कर्दमे निमग्नोऽसि, अतः [illegible] इति = पूर्वोक्तम्, उक्त्वा = उच्चार्य, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, उपगम्य = समीप-

मेत्य, तेन व्याघ्रेण, धृतः=गृहीतः सः पान्थः=स पथिकः, अचिन्तयत्= विचारयामास ।

इसलिये (तुम निर्धन हो, ब्राह्मण हो, अतः तुम्हींको दान देना चाहता हूँ) इस सरोवरमें स्नानकर इस सोनेके कंकणको ग्रहण करो (ले लो)। इस प्रकार बाघ की चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर लोभाकृष्ट हो ज्योंही स्नान करनेके लिए वह पथिक तालाबमें उतरा त्योंही गाढ़े कीचड़ में फँस गया और भागने में असमर्थ हो गया। उसे कीचड़में फँसा हुआ देखकर बाघ बोला—अहा ! हा। भारी कीचड़में फँस गये। अच्छा ठहरो, मैं तुम्हें निकालता हूँ। ऐसा कहकर धीरे-धीरे उस फँसे हुए पथिकके नजदीक जाकर उसे पकड़ लिया। तब वह पथिक सोचने लगा।

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः ।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥१७॥

अन्वयः—दुरात्मनः (विचारपरिवर्तने) धर्मशास्त्रं पठति इति कारणं न (भवति) न च वेदाध्ययनम्, अपि कारणं (भवति) किन्तु अत्र स्वभाव एव तथा अतिरिच्यते यथा गवां पयः प्रकृत्या मधुरं (भवति) ॥१७॥

नेति—दुरात्मनः=नीचस्वभावस्य, (नष्टाशयस्य पुंसः विचार=परिवर्तने) धर्मशास्त्रं=धर्मप्रतिपादकं शास्त्रम्, पठति=अधीते, वेदाध्ययनं वा करोति इति अपि कारणं=हेतुः न (भवति), किन्तु अत्र=हृदयपरिवर्तने स्वभाव एव अतिरिच्यते=कारणतामावहति, यथा गवां=धेनूनां कटुकषायादिभक्षणशीलानामपीति शेषः। पयः=क्षीरं, प्रकृत्या=स्वभावेन, मधुरं=स्वादु भवति ॥ १७ ॥

नीच आशयवाले पुरुषका हृदयपरिवर्तन करने में धर्मशास्त्र तथा वेदादि के अध्ययन समर्थ नहीं हो सकते किन्तु हृदयपरिवर्तन करने में स्वभाव ही कारण माना जाता है। जैसे तिक्तादि अनेक रसोंको समान भावसे खानेवाली गाय का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है, न कि रसविशेष युक्त पदार्थ के भक्षण से मीठा और कड़ुवा हुआ करता है। अभिप्राय यह है कि दुष्ट पुरुष भले ही धर्मशास्त्रादिका अध्ययन किया हो, किन्तु अध्ययनसे उसकी दुष्टता तथा अधर्माचरण दूर नहीं होते। दुष्टता तथा अधर्माचरणको दूर करने वाला एक स्वभाव ही होता है। जो प्रकृतिसे ही दुष्ट है वह किसी प्रकार सज्जन नहीं हो सकता, इसलिए यह बाघका अध्ययन दूसरों को फँसानेके लिए ही है न कि धर्माचरणके लिए ॥ १७ ॥

किंच—अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रियां विना॥ १८॥

अन्वयः—अवशेन्द्रियचित्तानां क्रिया हस्तिस्नानम् इव (निष्फला भवति) क्रियां विना ज्ञानं दुर्भगाभरणप्रायः भारः (भवति)॥ १८॥

अवश इति—अवशेन्द्रियचित्तानाम्=अवशानि इन्द्रियाणि—चक्षुरादीनि चित्तानि—अन्तःकरणानि च येषां तेषाम्, क्रिया=यज्ञादिका, हस्तिस्नानमिव= गजस्नानमिव, निष्फलेति शेषः। यथा-हस्ती स्नानानन्तरमेव धूलिप्रक्षेपेण पुनः स्वशरीरं मलिनं करोति तद्वत् एषां क्रिया भवति। यतस्ते नित्यनैमित्तिकक्रिया-नन्तरं पुनरधर्माचरणं कुर्वन्ति, अतः सा निष्फलेति भावः। क्रियां विना=यज्ञा-नुष्ठानाद्याचरणमन्तरा, ज्ञानं=धर्मादिबोधः, दुर्भगाभरणप्रायः—दुर्भगायाः आभरणानि इव, इति दुर्भगाभरणप्रायः=विधवास्त्रीधारितभूषणानीव भारः= भार एव अथवा दुर्भगायाः=वन्ध्यायाः भरणं=पोषणं, तद्वदिव भारः, निरर्थकत्वात् भारभूत एव, (ज्ञानं) निष्फलम्भवतीति शेषः॥ १८॥

जैसे हाथी स्नानके बाद पुनः धूल उड़ाकर अपने शरीरको मैला कर लेता है उसी प्रकार जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ और चित्त अपने वशमें नहीं हैं उसकी नित्य और नैमित्तिक क्रियाएँ हस्तिस्नानकी तरह निष्फल होती हैं। एवं क्रिया के बिना शास्त्रादि का ज्ञान भी विधवा स्त्रीके आभूषण धारण करने के समान भारस्वरूप ही हो जाता है॥ १८॥

तन्मया भद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वासः कृतः। तथाह्युक्तम्—

तदिति—तत्=तस्मात् कारणात् मया=पथिकेन, भद्रं=शोभनं न कृतं=नाचरितम्, यत्, अत्र=अस्मिन्, मारात्मके=घातुके, विश्वासः= प्रतीतिः, कृतः, तथा हि उक्तम्=कथितम्, अभियुक्तैरिति शेषः—

इसलिये मैंने अच्छा नहीं किया जो इस हिंसक बाघ में विश्वास किया। कहा भी गया है—

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृंगिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥ १९॥

अन्वयः—नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां तथा शृंगिणां स्त्रीषु राजकुलेषु च विश्वासः न एव कर्तव्यः॥ १९॥

नदीति—नदीनां=निम्नगानां, शस्त्राणि हस्ते पाणौ येषाम्, तेषाम्, नखिनां=नखाः सन्ति येषां ते नखिनः तेषा नखायुधानाम् व्याघ्रादीनामिति

यावत्, शृङ्गिणां—शृङ्गं विद्यते येषां ते शृंगिणः तेषां, विषाणेन युक्तानाम्—गोमहिषादीनाम्, स्त्रीषु = वनितासु, राजकुलेषु = राजपुरुषेषु, विश्वासः = प्रत्ययः, न कर्त्तव्यः = न कार्यः ॥ १९ ॥

नदियोंका, हाथमें शस्त्र धारण करनेवालोंका, नखोंवाले (बाघ, सिंह आदि) और सींगवाले (गौ, भैंस आदि) प्राणियोंका, स्त्रियोंका तथा राजकुलका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

अपरञ्च—सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः ।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्त्तते ॥ २० ॥

अन्वयः—सर्वस्य हि स्वभावाः परीक्ष्यन्ते इतरे गुणाः न परीक्ष्यन्ते, हि स्वभावः सर्वान् गुणान् अतीत्य मूर्ध्नि वर्तते ॥ २० ॥

सर्वेति—सर्वस्य = सकलस्य पुरुषस्य, स्वभावाः = प्रकृतयः, एव परीक्ष्यन्ते लोकैरिति शेषः । इतरे = अन्ये गुणाः, न परीक्ष्यन्ते, इति सम्बन्धः । हि = यतः सर्वान् गुणान् = विनयादीन्, अतीत्य = अतिक्रम्य, स्वभावः = जातिप्रकृतिः, मूर्ध्नि = शिरोभागे सर्वोपरीत्यर्थः, वर्त्तते = तिष्ठति ॥ २० ॥

और दूसरे—सभी पुरुषोंके स्वभाव (व्यवहार) की ही परीक्षा की जाती है, अन्य गुणोंकी परीक्षा तो नहीं के बराबर ही होती है । क्योंकि सभी गुणों को अतिक्रमणकर स्वभाव ही ऊपरमें रहता है ॥२०॥

अन्यच्च—स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणाऽसौ
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ॥२१॥

अन्वयः—स हि गगनविहारी, कल्मषध्वंसकारी, दशशतकरधारी, ज्योतिषां मध्यचारी असौ विधुः अपि विधियोगात् राहुणा ग्रस्यते, (अतः) ललाटे लिखितं प्रोज्झितुम् अपि कः समर्थः (भवति ?) ॥ २१ ॥

स इति—सः = प्रसिद्धः, गगनविहारी = गगने—आकाशे विहर्त्तुं शीलमस्य इति आकाशविहरणशीलः, कल्मषध्वंसकारी = कल्मषस्य अन्धकारस्य ध्वंसं—नाशं करोतीति—अन्धकारघ्नः दशशतकरधारी = सहस्ररश्मिमान् सूर्यः, अथ ज्योतिषां = नक्षत्राणां, मध्यचारी = मध्यं चरतीति तच्छीलः, असौ विधुः = चन्द्रः, विधियोगात् = अदृष्टवशात्, राहुणा = छायाख्यग्रहविशेषेण, ग्रस्यते = आच्छाद्यते, अतः ललाटे = भाले, लिखितं = ब्रह्मणाऽङ्कितम्, प्रोज्झितुम् = अन्यथाकर्तुं, कः समर्थो भवति, न कोऽपीत्यर्थः ॥ २१ ॥

और भी—आकाश में विहार करनेवाले, अन्धकारको नाश करनेवाले तथा हजारों किरणों को धारण करनेवाले सूर्य एवं नक्षत्रों के बीच भ्रमण करनेवाले उस चन्द्रमाको भी जब दैवयोग से राहु ग्रस लेता है तो कहना पड़ेगा कि ब्रह्मा ने जो कुछ भी ललाट (तकदीर) में लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ २१ ॥

इति चिन्तयन्नेवासौ व्याघ्रेण व्यापादितः खादितश्च । अतोऽहं ब्रवीमि-'कंकणस्य तु लोभेन' इत्यादि । अतः सर्वथा अविचारितं कर्म न कर्तव्यम् । यतः-

इतीति—इति=पूर्वोक्तप्रकारेण, चिन्तयन्नेव=विचारयन्नेव, असौ= पथिकः व्याघ्रेण=वृद्धशार्दूलेन, व्यापादितः=मारितः, खादितः=भक्षितश्च । अतः=अस्माद्धेतोः (अविचार्य कम कर्ता मृत्युमुख याति, इति हेतोः) अहं=कपोतराजः, ब्रवीमि=कथयामि, यत् कङ्कणस्येत्यादि । अतः सर्वथाऽ- विचारितं सर्वतोभावेनासुचिन्तितम्, कर्म न कर्त्तव्यं=न कार्यम् ।

इस प्रकार वह सोच ही रहा था कि बाघने उसे मार डाला और खा गया । इसलिये मैं (कपोतराज चित्रग्रीव) कहता हूँ कि 'कंकणके लोभसे' आदि । अतः बिना विचारे काम नहीं करना चाहिये ।

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः ।
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं सुदीर्घकालेपि न याति विक्रियाम् ॥२२॥

अन्वयः—सुजीर्णम्, अन्नम्, सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री, सुसेवितः नृपतिः यत् सुचिन्त्य उक्तम्, यत् सुविचार्य कृतं, (तत्) सुदीर्घकाले अपि विक्रियां न याति ॥ २२ ॥

सुजीर्णमिति—सुजीर्णं=सुपक्वम्, अन्नम्=भक्ष्यान्नम्, सुविचक्षणः= सुष्ठु चतुरः, सुतः=पुत्रः, सुशासिता=सुशिक्षिता, स्त्री=पत्नी, सुसेवितः= सुष्ठु आराधितः, नृपतिः,=भूपतिः यत्, सुचिन्त्य=पूर्वापरं सम्यक् विचार्य्य उक्तं= कथितम्, यत् सुविचार्य्यं=सुष्ठु विचिन्त्य, कृतं=सम्पादितम्, (तत्) सुदीर्घ- कालेऽपि=अतिचिरकालेऽपि, विक्रियां=विकारम्, न यातिन=न भजते न प्राप्नोतीति यावत् ॥ २२ ॥

क्योंकि अच्छी तरह पका हुआ भोजन, अतिचतुर (विद्वान) पुत्र, वश- वर्तिनी स्त्री, अच्छी रीति से सेवा किया हुआ राजा, सोचकर कहा हुआ

वचन, और अच्छी तरह विचारकर किया कार्य, ये सब बहुत कालतक भी नहीं बिगड़ते ॥ २२ ॥

एतद्वचनं श्रुत्वा कश्चित् कपोतः सदर्पमाह—आः किमेवमुच्यते ?

एतदिति—एतद्वचनम्—एतस्य = कपोतराजस्य, वचनम् = अभिहितम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, कश्चित्, कपोतः = कोऽपि पारावतः, सदर्पम् = सगर्वम्, आह = उवाच, आः = इति अनादरे खेदे वा, एवं = उक्तप्रकारम्, किम् = कथम्, उच्यते = कथ्यते, भवद्भिरिति शेषः ।

उक्त कपोतराजका वचन सुनकर किसी एक कबूतरने अभिमानपूर्वक कहा "अजी तुम क्या कहते हो ?"

वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते ।
सर्वत्रैवं विचारे तु भोजनेऽप्यप्रवर्तनम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हि आपत्काले उपस्थिते वृद्धानां वचनं ग्राह्यम्, सर्वत्र एवं विचारे तु भोजने अपि अप्रवर्तनं (स्यात्) ॥ २३ ॥

वृद्धेति—हि = यतः, आपत्काले = विपत्तिसमये, उपस्थिते = आगते, प्राप्ते सति, वृद्धानां = वयोऽतीतानाम्, वचनम्, = अभिहितम्, उपदेशः, ग्राह्यम् = स्वीकार्यम्, सर्वत्र = सर्वस्मिन्, स्थाने, एवं = इत्थं, विचारे = विमर्शे सति, तु भोजनेऽपि = भक्षणेऽपि, अप्रवर्त्तनं = प्रवृत्तिः न स्यात् ॥ २३ ॥

विपत्ति आनेपर वृद्धोंका उपदेश सुनना चाहिये । यदि सभी जगह इस प्रकार सन्देह किया जाय तो भोजन का मिलना भी कठिन हो जायगा ॥ २३ ॥

यतः—शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानञ्च भूतले ।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्त्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा ॥ २४ ॥

अन्वयः—भूतले अन्नं पानं च सर्वं शङ्काभिः आक्रान्तम् (अस्यां स्थितौ) कुत्र प्रवृत्तिः कर्तव्या ? कथं नु वा जीवितव्यम् ? ॥ २४ ॥

शंकेति—भूतले = पृथ्वीतले, शङ्काभिः = सन्देहैः अन्नं = खाद्यं पानञ्च = पेयञ्च सर्वं वस्तु, आक्रान्तम् = आच्छन्नं वर्तते । अस्यां स्थितौ, कुत्र = कस्मिन् स्थाने, प्रवृत्तिः = प्रवर्तनम्, कर्तव्या = करणीयम्, तु = इति तर्के, कथं वा = केन प्रकारेण वा, जीवितव्यम् = जीवनं कर्तव्यम् ॥ २४ ॥

क्योंकि—इस पृथिवीपर भोजन और जल, (खाना पीना) सभी चीजें सन्देहसे भरी हैं, फिर कहो, किसमें प्रवृत्ति की जाय और किस प्रकार जीवन निर्वाह किया जाय ॥ २४ ॥

ईर्ष्यी घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ॥ २५ ॥

अन्वयः—ईर्ष्यी घृणी तु असन्तुष्टः क्रोधनः नित्यशङ्कितः परभाग्योपजीवी च एते षट् दुःखभागिनः (भवन्ति) ॥ २५ ॥

ईर्ष्यीति—ईर्ष्यी = परोत्कर्षासहिष्णुः, घृणी = घृणाशीलः, असन्तुष्टः = सर्वदा सन्तोषरहितः, क्रोधनः = क्रोधशीलः, नित्यशङ्कितः = नित्यं शंकायुक्तः, परभाग्योपजीवी = अन्याधीनजीविकः, एते षट् दुःखभागिनः = दुःखं भजन्ते ।

ईर्ष्या करनेवाले, घृणा करनेवाले, सदा असन्तुष्ट रहनेवाले, क्रोधी, सदा सन्देह करनेवाले तथा दूसरे के सहारे जीनेवाले ये छः प्रकार के मनुष्य नित्य दुःखी रहते हैं ॥ २५ ॥

एतत् श्रुत्वा सर्वे कपोतास्तत्रोपविष्टाः ।

एतदिति—एतत् = पूर्वमभिहितम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, सर्वे = समस्ताः कपोताः = पारावताः, तत्र = तण्डुलपूर्णे स्थाने, उपविष्टाः = उपवेशनञ्चक्रुः ।

इन वचनों को सुनकर सभी कबूतर वहाँ (जहाँ व्याधने चावलके टुकड़े बिखेरे थे ।) बैठ गये (उतर आये) ।

यतः—सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहुश्रुताः ।
छेत्तारः संशयानाञ्च क्लिश्यन्ते लोभमोहिताः ॥२६॥

अन्वयः—सुमहान्ति शास्त्राणि धारयन्तः बहुश्रुताः अपि संशयानां छेत्तारः च लोभमोहिताः (सन्तः) क्लिश्यन्ते ॥ २६ ॥

सुमहन्तीति—सुमहान्ति = विशालानि, आच्छन्नरहस्यानीति यावत्, शास्त्राणि = ग्रन्थान्, धारयन्तः, = अधीतवन्तः बहुश्रुताः = बहूनि श्रुतानि यैस्ते बुद्धिमन्तः, संशयानाम् = अन्यस्य सन्देहानाम्, छेत्तारः = भेत्तारः, अपि = विद्वांसोऽपि इति यावत्, लोभमोहिताः = लोभेन—लिप्सया मोहिता—नष्टज्ञानाः सन्तः, क्लिश्यन्ते = दुःखमनुभवन्तीति भावः ॥ २६ ॥

क्योंकि—अनेक शास्त्रों को पढ़ने तथा सुननेवाले और दूसरे के सन्देहों को दूर करनेवाले विद्वान् भी लोभवश दुःखी होते हैं ॥ २६ ॥

अन्यच्च—लोभात् क्रोध प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—लोभात् क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते, लोभात् मोहः च नाशः च (जायते), लोभः पापस्य कारणं भवति ॥२७॥

लोभादिति—लोभात्=गर्धातः, क्रोधः=कोपः, प्रभवति=प्रवर्त्तते, लोभात् कामः =विषयेच्छा, जायते = उत्पद्यते, लोभात् मोहः = चित्तविभ्रमः, नाशश्च जायते =सम्पद्यते, लोभः = ईहैव, पापस्य कारणम् = निदानम्, अस्तीति शेषः ॥२७॥

और दूसरे—लोभसे क्रोध, काम (विषयकी इच्छा) और मोह तथा मृत्यु आदि की उत्पत्ति होती है इसलिए लोभ ही सभी पापों का मूल है ॥

अन्यच्च–असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ॥२८॥

अन्वयः—(यद्यपि) हेममृगस्य जन्म असम्भवं तथा अपि रामः मृगाय लुलुभे, समापन्नविपत्तिकाले पुंसां धियः अपि प्रायः मलिनाः भवन्ति ॥२८॥

असम्भवमिति—हेममृगस्य = कनकहरिणस्य, जन्म = उत्पत्तिः, असम्भवम्=सम्भावनाशून्यम्, अस्तीति शेषः । तथापि रामः = त्रिकालज्ञोऽपि दशरथनन्दनः, मृगाय=हेममृगाय, लुलुभे=मोहं प्राप्तः, प्रायः=अतिशयेन समापन्नविपत्तिकाले = समापन्नाः प्राप्ताः या विपत्तयः तासां कालः तस्मिन्, उपस्थितविपत्तिक्षणे. पुंसां = मनुष्याणाम्, धियः = बुद्धयः अपि, मलिनाः= मलेनाच्छादिताः कुण्ठिता इति यावत भवन्ति ॥ २८ ॥

और भी—सुवर्णमृग की उत्पत्ति यद्यपि असम्भव है तथापि श्रीरामजी उस सुवर्ण मृगके पीछे लुभा गये । बहुधा देखा जाता है जब मनुष्यके ऊपर आपत्ति आनेवाली होती है तब बुद्धिमान् पुरुषोंकी बुद्धि भी मलिन हो जाती हैं ॥२८॥

अनन्तरं सर्वे जालेन बद्धाः बभूवुः ततो यस्य वचनात् तत्रावलम्बितास्तं सर्वे तिरस्कुर्वन्ति ।

अनन्तरमिति—अनन्तरम् = उपवेशनानन्तरम्, सर्वे=पारावताः जालेन= पाशेन, बद्धाः =संयताः, बभूवुः = जाताः, ततः यस्य वचनात्, तत्र=जालाच्छन्नभूमौ, अवलम्बिताः=उपविष्टाः, ते सर्वे, तं तिरस्कुर्वन्ति = अधिक्षिपन्ति ।

बैठने के बाद सभी कबूतर, उस बिछे हुए जालसे बँध गये । फिर जिस कबूतरके वचनसे वे लोग वहाँ बैठे थे उसको सब धिक्कारने लगे ।

यतः–न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समं फलम् ।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते ॥ २९ ॥

अन्वयः—(जनः) गणस्य अग्रतः न गच्छेत्, (यतः) कार्ये सिद्धे (सति) फलं समं (भवति) । किन्तु (दैवयोगात्) यदि कार्यविपत्तिः स्यात् (तदा) तत्र मुखरः हन्यते ॥२९॥

नेति—गणस्य = समूहस्य, अग्रतः = अग्रे न गच्छेत्, (यतः) सिद्धे = सफले; कार्ये = कर्तव्ये, समं = तुल्यम्, परिणामो भवतीति शेषः, यदि दैवयोगात् कार्ये, विपत्तिः = अन्तरायः, हानिः वा, स्यात् = भवेत्, (तर्हि) तत्र मुखरः = अग्रगः, हन्यते सर्वैरिति-सम्बन्धः ॥ २९ ॥

क्योंकि—किसी भी समूहके आगे मुखिया होकर नहीं जाना चाहिए, क्योंकि कार्य सिद्ध होनेपर सभीको बराबर फल मिलता है, यदि दैवयोगसे काम बिगड़ जाय—कोई विघ्न उपस्थित हो जाय तो मुखिया ही मारा जाता है या तिरस्कृत होता है ॥ २९ ॥

तस्य तिरस्कारं श्रुत्वा चित्रग्रीव उवाच—नायमस्य दोषः ।

तस्येति—तस्य = प्रवर्त्तकस्य (कपोतस्य), तिरस्कारं = भर्त्सनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच = जगाद, अयम् = एषः, अस्य = कपोतस्य, दोषः = अपराधः, न = नास्ति ।

उसकी निन्दा सुनकर चित्रग्रीव बोला 'यह इसका अपराध नहीं है ।'

यतः—आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम् ।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने ॥ ३० ॥

अन्वयः—हितः अपि आपतन्तीनाम् आपदां हेतुताम् आयाति, हि मातृजङ्घा वत्सस्य बन्धने स्तम्भीभवति ॥ ३० ॥

आपदामिति—हितोऽपि = प्रियकारकोऽपि, आपतन्तीनाम् = आगच्छन्तीनाम्, आपदां = विपत्तीनाम्, हेतुतां = कारणताम्, आयाति = भजते । हि = यतः, वत्सस्य = वृषभपोतस्य, बन्धने = संयमने; मातृजङ्घा = मातुः गोः, जङ्घा = ऊरुः, स्तम्भीभवति = स्तम्भ इव आचरति, अतोऽयं निर्दोषः ॥ ३० ॥

क्योंकि—सदा प्रिय करनेवाला मित्र भी आनेवाली विपत्ति का कारण हो जाता है जैसे—माताकी जङ्घा (दुहने के समय) बछड़े के बाँधनेमें खूँटेका काम करती है ॥ ३० ॥

अन्यच्च—स बन्धुर्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः ।
न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यः विपन्नानाम् आपदुद्धरणक्षमः (सः) बन्धु (अस्ति) । (यः) तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः (स बन्धुः) न (अस्ति) ॥ ३१ ॥

स इति—यः पुमान्, विपन्नानां = विपद्ग्रस्तानाम् आपदुद्धरणक्षमः = आपद्भ्यः उद्धरणं तत्र क्षमः विपद्भ्यः सकाशात् मोचयितुं समर्थः सः =

पुमान्, बन्धुः = मित्रम् (अस्ति) । तु = पुनः, भीतपरित्राणवस्तूपालंभपण्डितः = भीतानां = भयार्तानां विपद्गतानां परित्राणं = रक्षणमेव वस्तु तस्मिन् उपालम्भ-पण्डितः = तिरस्कारकुशलः, न (बन्धुः = सुहृद् अस्ति इति सम्बन्धः) ॥३१॥

और दूसरे—मित्र वह है जो विपत्तिमें फँसे हुए मनुष्यको विपत्तिसे बाहर निकालनेमें समर्थ हो। और जो भयभीत पुरुष की रक्षा करनेके बदले उलाहना देनेमें कुशल है वह बन्धु नहीं है, (प्रत्युत शत्रु है) ॥३१॥

विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम् । तदत्र धैर्यमवलम्ब्य प्रतीकारश्चिन्त्यताम् ।

विपदिति—विपत्काले = दुःखावस्थायाम्, विस्मय एव = धीरतात्यागः आकुलत्वमेवेत्यर्थः, कापुरुषलक्षणम् = कुत्सितपुरुषचिह्नम् । तत् = तस्मात्, अत्र = अस्मिन्नापदि [illegible] = धीरताम्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, प्रतीकारः = उद्धारोपायः, चिन्त्यतां = विचार्यताम् ।

दुःखके समयमें व्याकुल हो जाना कायर पुरुष का चिह्न है, इसलिये इस आपत्तिमें धैर्य धारण कर (कुछ) उपाय सोचना चाहिये ।

यतः—विपदि धैर्यमथाऽभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—विपदि धैर्यम्, अथ अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि च अभिरुचिः, श्रुतौ व्यसनम्, इदं हि महात्मनां प्रकृतिसिद्धं (भवति) ॥ ३२ ॥

विपदीति-विपदि=आपत्तौ, धैर्यं=धीरता, अथ अभ्युदये = उत्कर्षे, क्षमा = सहनशीलता, सदसि = सभायाम्, वाक्पटुता = वाचः = वाण्याः = पटुता = पाटवम्, युधि = संग्रामे, विक्रमः = पराक्रमप्रदर्शनम्, च = पुनः यशसि = कीर्त्तौ, अभिरुचिः = अनुरागः, श्रुतौ = शास्त्रे, व्यसनं = आसक्तिः, इदम् = एतत् सर्वम्, हि = इति निश्चयेन, महात्मनां = महापुरुषाणाम्, प्रकृतिसिद्धम् = स्वभावजम्, भवतीति शेषः ॥३२॥

क्योंकि—आपत्तिमें धीरज, उन्नतिमें सहनशीलता, सभामें वाणीकी चतुरता, युद्धमें पराक्रम, यशमें रुचि और शास्त्रमें अनुराग ये बातें महात्माओंमें स्वभावसे ही होती हैं, अर्थात् महात्माओंमें ये गुण सहज ही देखे जाते हैं ॥३२॥

सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरुत्वम् ।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—यस्य सम्पदि हर्षः न भवति, विपदि विषादः न (भवति), रणे च भीरुत्वं न (भवति) जननी तं भुवनत्रयतिलकं विरलं सुतं जनयति ॥ ३३ ॥

सम्पदीति—यस्य = महापुरुषस्य, सम्पदि = धनागमे, हर्षो न = आनन्दातिशयो न भवति, विपदि = दुःस्थितौ, विषादो न = खेदो न, रणे = आहवे, भीरुत्वं = कातरत्वं न भवति, तं = तथाभूतं, भुवनत्रयतिलकं = भुवनानां त्रयम् इति भुवनत्रयं तस्य तिलकं श्रेष्ठम्, विरलं = कश्चिदेव, सुतं = पुत्रम्, जननी = माता, जनयति = प्रसूते इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

जिसे सम्पत्ति आनेपर सुख और विपत्ति आनेपर खेद न हो, और युद्धमें जिसे भय न हो, ऐसे त्रिभुवनमें श्रेष्ठ पुत्रको विरले ही माता उत्पन्न करती है ॥ ३३ ॥

अन्यच्च—षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूमिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥ ३४ ॥

अन्वयः—इह भूतिम् इच्छता पुरुषेण निद्रा, तन्द्रा, भयं, क्रोधः, आलस्यं, दीर्घसूत्रता, (एते) षट् दोषाः हातव्याः ॥ ३४ ॥

षडिति—इह = अस्मिन् संसारे भूतिमिच्छता = ऐश्वर्यमभिलषता, पुरुषेण = जनेन, निद्रा = स्वापः, तन्द्रा = अर्धनिद्रा, भयं = भीतिः, क्रोधः = कोपः, आलस्यं = परिश्रमविरागः, दीर्घसूत्रता = चिरक्रियता, (इति) षट् दोषाः = षडवगुणाः, हातव्याः = त्याज्याः ॥ ३४ ॥

और भी—इस संसारमें अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको निद्रा (अधिक सोना), तन्द्रा (ऊँघना), भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता (अल्प समयमें होनेवाले कार्यको अधिक समयमें करना) ये छः दोष छोड़ देने चाहिये ॥ ३४ ॥

इदानीमप्येवं क्रियताम् ! सर्वैरेकचित्तीभूय जालमादायोड्डीयताम् ।

इदानीमिति—इदानीमपि = साम्प्रतमपि–आगतायामपि विपत्तौ, एवं वक्ष्यमाणेन प्रकारेण, क्रियतां = विधीयताम् । सर्वैः = कपोतैः, एकचित्तीभूय = ऐक्यमवलम्ब्य, एकमत्यमेति यावत्, जालमादाय = जालेन सह, उड्डीयताम् = विहायसा गम्यताम् ।

अब (विपत्ति आ जाने पर) भी ऐसा करो कि सभी एकमत हो जालको लेकर उड़ चलो।

यतः—अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—अल्पानाम्, अपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका (भवति) (अत्र) गुणत्वम् आपन्नैः तृणैः मत्तदन्तिनः बध्यन्ते (इदम् एव निदर्शनम्,) ॥ ३५ ॥

अल्पेति—अल्पानां = क्षुद्राणाम्, अपि, वस्तूनाम् = पदार्थानाम्, संहतिः = समुदायः, कार्य्यसाधिका = कार्यसम्पादिका भवति। दृष्टान्तेनोपपादयति (यथा) गुणत्वमापन्नैः = रज्जुभावमुपगतैः, तृणैः = घासादिभिः, मत्तदन्तिनः—मदोन्मत्त-गजाः, बध्यन्ते = सन्नियम्यन्ते ॥ ३५ ॥

क्योंकि—छोटी और तुच्छ वस्तुके समुदायसे भी एक बड़े कार्यकी सिद्धि हो जाती है. जैसे—घासोंके समूहसे बटी हुई रस्सियोंसे बड़े गजराज भी बांधे जाते हैं ॥ ३५ ॥

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि।
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—पुंसाम् अल्पकैः अपि स्वकुलैः संहतिः श्रेयसी (भवति), (यतः) तुषेण अपि परित्यक्ताः तण्डुलाः न प्ररोहन्ति ॥ ३६ ॥

संहतिरिति—पुंसां = पुरुषाणाम्, अल्पकैः अपि = ःनिनिर्बलैः, अल्पीयोभिर्वा, अपि, स्वकुलैः = स्वबान्धवैः, संहतिः = मेलनम्, श्रेयसी = मंगलकारिणी अभ्युदयप्रदेति यावत्। यतः-तुषेणापि = बुसेनापि कर्षफलेनापि, 'कडङ्गरो बुसं क्लीबे धान्यत्वक्च तुषः पुमान्' इत्यमरः। परित्यक्ताः = रहिताः, तण्डुलाः, न प्ररोहन्ति = नांकुरिता भवन्ति ॥ ३६ ॥

अपने कुलके छोटे व्यक्तियोंका भी समूह (संग) कल्याण करनेवाला होता है, जैसे—भूसा मात्रसे अलग हो जानेपर चावल फिर अंकुरित नहीं होते अर्थात् चावल बोने से वृक्ष नहीं होता। (सिर्फ भूसेके न रहनेसे जब चावल में अंकुरित होने की शक्ति नष्ट हो जाती है। फिर एक प्राणीके अलग हो जाने पर जीवन में कितनी शक्ति नष्ट होगी ?) ॥ ३६ ॥

इति विचिन्त्य पक्षिणः सर्वे जालमादायोत्पतिताः। अनन्तरं स व्याधः सुदूराज्जालापहारकांस्तानवलोक्य पश्चाद्धावन्नचिन्तयत्।

इतीति—इति = पूर्वोक्तप्रकारेण, विचिन्त्य = विचार्य, सर्वे पक्षिणः =
कपोताः, जालमादाय = आनायं गृहीत्वा, 'आनायः पुंसि जालं स्यादि' त्यमरः ।
उत्पतिताः = आकाशे उड्डीय चलिताः, अनन्तरम् = अथ, सः व्याधः = मृगयुः,
सुदूरात् = विदूरदेशात्, जालापहारकान् = जालमादायोत्पतितान्, तान् = कपोतान्,
अवलोक्य = दृष्ट्वा, पश्चात् धावन् = अनुगच्छन्, अचिन्तयत् = विचारयामास ।

इस प्रकार सोचकर सब कबूतर जाल लेकर उड़ चले, फिर वह व्याध
जालको लेकर उड़नेवाले उन कबूतरोंको देखकर पीछे-पीछे दौड़ता हुआ विचार
करने लगा—

संहतास्तु हरन्त्येते मम जालं विहंगमाः ।
यदा तु निपतिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा ॥ ३७ ॥

अन्वयः—एते विहङ्गमाः तु संहताः मम जालं हरन्ति, यदा तु निपतिष्यन्ति
तदा मे वशम् एष्यन्ति ॥ ३७ ॥

संहता इति—एते = इमे, विहङ्गमाः = विहायसाः = गच्छन्तीति विहङ्गमाः
= पक्षिणः कपोता इत्यर्थः, संहताः = सम्मिलिताः सन्तः, मम = व्याधस्य जालं
= पवित्रकम् 'शणसूत्रं पवित्रकम्' इत्यमरः, हरन्ति = आदाय गच्छन्ति । यदा =
यस्मिन् काले, निपतिष्यन्ति = भूतले समापतिष्यन्ति, तदा = तस्मिन् काले, मे =
मम, वशं = अधीनताम्, एष्यन्ति = आगमिष्यन्ति ॥ ३७ ॥

ये सब पक्षी (कबूतर) आपसमें मिलकर जालको लेकर उड़े चले जा रहे हैं,
परन्तु जब पृथ्वीपर गिरेंगे, तब मेरे वश (हाथ) में आ जायँगे ॥३७॥

**ततस्तेषु चक्षुर्विषयातिक्रान्तेषु स व्याधो निवृत्तः । अथ लुब्धकं
निवृत्तं दृष्ट्वा कपोताः ऊचुः—किमिदानीं कर्त्तुमुचितम् ? चित्रग्रीव
उवाच—**

तत इति—ततः = तदनन्तरम्, तेषु पक्षिषु = पारावतेषु, चक्षुर्विषयातिक्रा-
न्तेषु = चक्षुषी = नयने, तयोः विषयः = देशः तमतिक्रान्तेषु—अतीत्य गतेषु, सः =
प्रसिद्धः, व्याधः = लुब्धकः, निवृत्तः = प्रत्यावृत्तः । अथ = अनन्तरम् लुब्धकं =
मृगयुम्, निवृत्तं = जालाशां विहाय प्रतिगतम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, कपोताः = पारा-
वताः, ऊचुः = जगदुः, इदानीं = साम्प्रतम्, किं कर्त्तुं = किं विधातुम्, उचितम् ?
चित्रग्रीवः = तन्नामकः कपोतराजः उवाच = जगाद ।

फिर जब वे पक्षी आँखोंसे ओझल हो गये तब वह व्याध लौट गया । उस

लोभी व्याधको निराश होकर लौटा हुआ देखकर कबूतर बोले—अब इस समय क्या करना उचित है। चित्रग्रीव बोला—

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः॥ ३८॥

अन्वयः—माता मित्रं पिता च इति त्रितयं स्वभावात् हितम् (भवति) अन्ये च कार्यकारणतः हितबुद्धयः भवन्ति॥ ३८॥

मातेति—माता=जननी, मित्रं=सुहृत्, पिता=पाति रक्षति इति पिता जनकः, इति एतत्, त्रितयम्=त्रयम्, स्वभावात्=प्रकृतितः, हितं=हितकरं भवति। अन्ये=त्रिभ्य इतरे, कार्यकारणतः=कार्यवशात् कारणवशाच्च स्वार्थवशादिति भावः, हितबुद्धयः=हितकराः भवन्ति॥ ३८॥

माता, पिता और मित्र ये ३ स्वभाव से ही हितकारी होते हैं और अन्य लोग प्रयोजनवश या किसी कारण-विशेषसे हितकारी होते हैं॥ ३८॥

तदस्माकं मित्रं हिरण्यको नाम मूषकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति, सोऽस्माकं पाशांश्छेत्स्यति। इत्यालोच्य सर्वे हिरण्यकविवर-समीपं गताः। हिरण्यकश्च सर्वदाऽपायशङ्कया शतद्वार विवरं कृत्वा निवसति। ततो हिरण्यकः कपोतावपातभयाच्चकितस्तूष्णीं स्थितः। चित्रग्रीव उवाच—सखे हिरण्यक! किमस्मान् न सम्भाषसे? ततो हिरण्यकस्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय ससंभ्रमं बहिर्निःसृत्य अब्रवीत्—'आः पुण्यवानस्मि प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः!

तदिति—तत्=तस्माद्धेतोः, अस्माकम्=ममेति भावः, मित्रं=सुहृत्, हिरण्यको नाम=हिरण्यकाख्यः, मूषकराजः=मूषकाणां राजा इति मूषकराजः गण्डकीतीरे=गण्डक्यास्तन्नामकनद्याः तटे, चित्रवने=तन्नामकारण्ये, निवसति=वासं करोति, सः=हिरण्यकः, अस्माकम्=पारावतानाम्, पाशान्=बन्धनानि, छेत्स्यति=भेत्स्यति, इति अनेन=प्रकारेण, आलोच्य=विचार्य्य, सर्वे=कपोताः, हिरण्यकस्य=तन्नामकमूषकस्य, विवरसमीपं=बिलप्रदेशान्तिकमागताः=प्राप्ताः, हिरण्यकश्च सर्वदा=सर्वस्मिन् काले, अपायशङ्कया=नाशभयेन, शतद्वारं=शतं द्वाराणि यत्र तत्, शतमार्गमित्यर्थः। विवरं=बिलम्, निर्माय, निवसति=तिष्ठति। ततः हिरण्यकविवरप्राप्त्यनन्तरम्, हिरण्यकः, कपोतावपातभयाच्चकितः=कपोतानां अवपातात् सह भयं तस्मात् चकितः भयविह्वलः, तूष्णीं=निःशब्दं यथा स्यात्तथा स्थितः=तस्थौ। चित्रग्रीव उवाच—

कपोतराजो जगाद—सखे ! हिरण्यक, किम् = कथं, केन हेतुना वा अस्मान् = नः, कपोतान्, न सम्भाषसे = न ब्रवीषि, ततः = चित्रग्रीववचनानन्तरम्, हिरण्यकः तद्वचनं = तस्य चित्रग्रीवस्य वचनम्, प्रत्यभिज्ञाय = ज्ञात्वा, ससम्भ्रमम् = आनन्दातिरेकेण यथा स्यात्तथा, बहिः = बिवराद् बहिः, निःसृत्य = निर्गत्य, अब्रवीत् = अवोचत्—आः = इति हर्षे, पुण्यवान् = पुण्यभाक्, अस्मि, येन मे = मम, प्रियसुहृत् = प्रियश्चासौ सुहृच्च इति प्रियसुहृत्—इष्टमित्रम्, चित्रग्रीवः = = कपोतराजः, समायातः = समागतः ।

इसलिए मेरा मित्र हिरण्यक नामक चूहोंका राजा गण्डकी नदीके किनारे चित्रवन में वास करता है, वह हमलोगों के बन्धनोंको काटेगा । यह विचार कर सभी हिरण्यकके बिलके पास गये । हिरण्यक सदा आपत्तिके भयसे सौ मार्गों-वाला बिल बनाकर रहता था । बादमें हिरण्यक कबूतरोंके उतरनेका शब्द सुनकर (आहट पा) भयभीत हो चुपचाप बैठ गया । चित्रग्रीव बोला 'मित्र हिरण्यक ! हमसे क्यों नहीं बोलते ?' तब हिरण्यक चित्रग्रीवकी आवाज पहचान-कर आनन्दके साथ बाहर निकलकर बोला अरे ! मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ । क्योंकि मेरा अत्यन्त प्रियमित्र चित्रग्रीव आया है ।

यस्य मित्रेण सम्भाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः ।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यस्य मित्रेण (सह) सम्भाषः (भवति) यस्य मित्रेण (सह) संस्थितिः (भवति) यस्य मित्रेण (सह) संलापः (भवति) ततः (अन्यः) इह पुण्यवान् न अस्ति ॥ ३९ ॥

यस्येति—यस्य = पुरुषस्य, मित्रेण = सुहृदा सह, सम्भाषः = वार्तालापः, यस्य = पुंसः, मित्रेण, संस्थितिः = सहनिवासः, यस्य मित्रेण संलापः = सम्यक् आलापः = गोष्ठी भवति ततः = तस्मात् पुरुषात्, अन्यः, इह = अस्मिन् जगति, पुण्यवान् = भाग्यवान् न अस्तीति सम्बन्धः ॥ ३९ ॥

जिसकी मित्रके साथ बोलचाल है, जिसका मित्रोंके साथ वास है, और जिसका मित्रके साथ वार्तालाप होता है, उससे बढ़कर पुण्यवान्, इस संसार में दूसरा नहीं है ॥ ३९ ॥

पाशबद्धांश्चैतान् दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वा उवाच-सखे ! किमेतत् ? चित्रग्रीवोऽवदत्-सखे ! अस्माकं प्राक्तनजन्मकर्मणः फलमेतत् ।

पाशेति—पाशबद्धान् = पाशेन = जालेन, बद्धान् = संयमितान्, एतान्

कपोतान्, दृष्ट्वा = विलोक्य, सविस्मयः = विस्मयेन आश्चर्येण सहितः, क्षणं = किञ्चित् कालम्, स्थित्वा = प्रतिपाल्य. उवाच अब्रवीत्—सखे ! एतत् पाशबन्धनम्, किं = किन्निमित्तम् । चित्रग्रीवोऽवदत् = चित्रग्रीव उवाच, सखे = मित्र, एतत् = इदम्, अस्माकं = कपोतानाम्, प्राक्तनजन्मकर्मणः = पूर्वस्मिन् जन्मनि कृतस्य पापकृत्यस्य, फलं = भोगः, अस्तीति शेषः ।

इन कबूतरोंको जालमें फँसा देखकर हिरण्यक आश्चर्यसे कुछ देर रुककर बोला—मित्र ! यह क्या ! चित्रग्रीव बोला—मित्र । यह हमारे पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों का फल है ।

यतः—यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म ।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च
तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ॥ ४० ॥

अन्वयः—यस्मात् च येन च यथा च यदा च यत् च यावत् च यत्र च शुभाशुभम् आत्मकर्म (भवति), तस्मात् च तेन च तथा च तदा च तत् च तावत् च तत्र विधातृवशात् उपैति ॥ ४० ॥

यस्मादिति—यस्मात् = यद्धेतोः, येन = यत्कारणेन च, यथा = येन प्रकारेण च, यदा = यस्मिन् समये च, यत् = यादृशं च, शुभाशुभमात्मकर्म । = शुभं वा अशुभं वा आत्मकर्म = पापपुण्यादिकं स्वकर्म, यावत् = यत्परिमितं च, यत्र च = यस्मिन् देशे कृतं च वर्तते, तस्मात् = तत्कारणात् तेन = कारणेन, तथा = तेन प्रकारेण, तदा = तस्मिन् काले, तच्च = तत् कर्मफलम्, तावच्च तत्परिमितम् तत्र = तस्मिन्देशे, विधातृवशात् = भाग्यवशात्, उपैति = प्राप्नोतीति भावः ॥ ४० ॥

क्योंकि—जिस कारणसे, जिसके करनेसे जिस प्रकारसे, जिस कालमें, जैसा जिस देशमें अपना अच्छा या बुरा किया हुआ कर्म है; उसी कारण से, उसीके द्वारा, उसी प्रकारसे, उसी कालमें, वैसा, उतना, उस देशमें उस कर्मफलको मनुष्य दैवयोगसे अवश्य प्राप्त करता है ॥ ४० ॥

रोग-शोक-परीताप-बन्धन-व्यसनानि च ।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च एतानि देहिनाम् आत्मापराधवृक्षाणां फलानि (सन्ति) ॥ ४१ ॥

रोगेति—रोगः = व्याधिः, शोकः = चिन्ता, परीतापः = सन्तापः, बन्धनं = पाशादिना नियन्त्रणं, तानि च व्यसनम् = आ विश्चैतेषां द्वन्द्वः, एतानि, देहिनां = प्राणिनाम्, आत्मापराधवृक्षाणाम् = आत्मनो ये अपराधाः = दुष्कर्माणि त एव वृक्षाः, तेषां फलानि = फलभूतानि, परिणामः प्रसवाश्च सन्तीत्यर्थः ॥४१॥

रोग, शोक, सन्ताप, (पछतावा) बन्धन और विपत्ति; ये प्राणियों के लिए अपने अपराधरूपी वृक्ष के फल हैं। ॥ ४१ ॥

एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य बन्धनं छेत्तुं सत्वरमुपसर्पति। चित्रग्रीव उवाच—'मित्र! मा मैवम्' अस्मदाश्रितानामेषां तावत् पाशाँश्छिन्धि, तदा मम पाशं पश्चात् छेत्स्यसि।' हिरण्यकोऽप्याह—अहमल्पशक्तिः दन्ताश्च मे कोमलाः, तदेतेषां पाशाँश्छेत्तुं कथं समर्थः? तद् यावन्मे दन्ता न त्रुट्यन्ति तावत्तव पाशं छिनद्मि। तदनन्तरमेषामपि बन्धनं यावच्छक्यं छेत्स्यामि। चित्रग्रीव उवाच—'अस्त्वेवम्, तथापि यथाशक्त्येतेषां बन्धनं खण्डय'। हिरण्यकेनोक्तम्—आत्मपरित्यागेन यदाश्रितानां परिरक्षणं तन्न नीतिविदां सम्मतम्।

एतदिति—एतत् = पूर्वोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, हिरण्यकः = तन्नामकः मूषकराजः, चित्रग्रीवस्य = कपोतराजस्य, बन्धनं = जालनियन्त्रणम्, छेत्तुं = भेत्तुम्, सत्वरं = शीघ्रम्, उपसर्पति = समीपं गच्छति। चित्रग्रीव उवाच = अब्रवीत्। मित्र = सखे! मा मैवं = एवं न कुरु, पूर्वमस्मद्बन्धनच्छेदनप्रयासं न कुर्वित्यर्थः, (किन्तु) अस्मदाश्रितानां = मद्भुजच्छायावर्तिनाम्, एषां = कपोतानाम्, तावत् = प्रथमम्, पाशान् = बन्धनानि, छिन्धि = भिन्धि। तदा = तदनन्तरम्, पश्चात् = अनु, मम = चित्रग्रीवस्य, पाशं = बन्धनम्, छेत्स्यति = द्विधा करिष्यसि। हिरण्यकोप्याह = तन्नामकमूषिकः अपि उवाच, अहम् = हिरण्यकः, अल्पशक्तिः = अल्पा लघ्वी शक्तिः बलं यस्य सः। दन्ताश्च दशनाश्च, मे = मम, कोमलाः = मृदुलाः, तत् = तस्मात् कारणात्, एतेषां कपोतानाम्, पाशान् = बन्धनानि, छेत्तुम् = भेत्तुम्, कथं = केन प्रकारेण समर्थः = शक्तः, भवामीति शेषः। तत् = तस्माद्धेतोः, यावत्कालपर्यन्तम्, मे = मम हिरण्यकस्य, दन्ताः = दशनाः, न = नहि, त्रुट्यन्ति = स्थानभ्रष्टाः भवन्ति, तावत् = तावत्कालमभिव्याप्य, तव चित्रग्रीवस्य, पाशं = बन्धनम्, छिनद्मि = खण्डशः करोमि। तदनन्तरम् = पश्चात्, एषां = कपोतानाम् बन्धनपाशम्, यावच्छक्यं = यथाशक्ति, छेत्स्यामि = खण्डयिष्यामि, चित्रग्रीवः

उवाच=अवोचत्, अस्त्वेवम्=भवतु एवम्, तथापि=तव असमर्थत्वेऽपि यथाशक्ति=शक्तिमनतिक्रम्य (प्रथमम्), एतेषां=कपोतानाम् बन्धनं=पाशम्, खण्डय=छिन्धि। हिरण्यकेन=मूषकवरेण, उक्तम्=कथितम्, आत्मपरित्यागेन=स्वस्य रक्षणमकृत्वा, यत् आश्रितानाम्=सेवकानां, परिवाराणामिति यावत्, परिरक्षणम्=परितः यथा स्यात्तथा रक्षणम् तत् नीतिज्ञानाम्, न सम्मतम्=न इष्टमस्तीत्यर्थः।

यह सुनकर हिरण्यक चित्रग्रीवके बन्धनोंको काटनेके लिए शीघ्र उसके समीप आया। किन्तु चित्रग्रीवने कहा—मित्र ऐसा न करो (अर्थात्) पहले मेरे बन्धन न काटो) पहले मेरे इन आश्रितोंके बन्धन काटो, बादमें मेरा बन्धन काटना। चित्रग्रीवकी बातें सुनकर हिरण्यक ने कहा—मित्र मैं निर्बल हूँ और मेरे दांत कोमल हैं, इसलिए इन लोगोंके बन्धन कैसे काट सकता हूँ। अतः जबतक मेरे दांत नहीं टूटते तबतक तुम्हारा बन्धन काटता हूँ। बाद इन लोगोका भी यथाशक्ति काटूँगा। चित्रग्रीवने कहा यह ठीक है फिर भी पहले यथाशक्ति नहीं लोगोंके बन्धनोंको काटो। हिरण्यकने कहा—अपनी रक्षा छोड़कर अपने आश्रितों की रक्षा करना यह नीतिज्ञोंका मत नहीं है।

यतः—आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥ ४॥

अन्वयः—(जनः) आपदर्थे धनं रक्षेत् धनैः अपि दारान् रक्षेत् आत्मानं दारैः अपि धनैः अपि सततं रक्षेत्॥ ४२॥

आपदिति—आपदर्थ=विपत्तिविनाशाय धनं=द्रविणम् रक्षेत्=गोपायेत्, धनैरपि=वित्तैरपि दारान्=स्त्रियम् रक्षेत्=पालयेत्, आत्मानं=स्वम् दारैरपि धनैरपि=सर्वस्वव्ययेनापीत्याशयः सततं=अनारतम्, रक्षेत्=पालयेत्॥ ४२॥

क्योंकि—मनुष्यको आपत्तिके लिए धनकी, धनसे स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिए। किन्तु धन और स्त्री दोनों से अपनी रक्षा सदा करनी चाहिए। अभिप्राय यह है कि मनुष्यको हमेशा धनसञ्चयकी ओर ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि यह शरीर अनित्य है कब कैसी आपत्ति आ जाय। अतः सत् उद्योगसे धन एकत्र करना चाहिए और धनकी अपेक्षा अधिक ध्यान स्त्री-रक्षा की ओर रखना आवश्यक है अर्थात् धनादि खर्च कर भी स्त्रीकी रक्षा

करनी चाहिए। किन्तु अपनी रक्षा धन और स्त्री के त्यागसे भी हो तो वह कर्तव्य है। अर्थात्—हमेशा सर्वप्रथम अपने शरीरकी रक्षा करके ही दूसरोंकी ओर देखना चाहिए ॥ ४२ ॥

अन्यच्च—धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः।
तान्निघ्नता किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—प्राणाः धर्मार्थकाममोक्षाणां संस्थितिहेतवः (भवन्ति)। तान् निघ्नता किं न हतं (भवति) तान् रक्षता (च) किं न रक्षितं (भवति?) ॥ ४३ ॥

धर्मेति—प्राणाः = असवः स्वजीवनमिति यावत्, धर्मार्थकाममोक्षाणां = पुरुषार्थचतुष्टयस्य, संस्थितिहेतवः=संस्थितौ सम्यक् प्रकारेण परिपालने, हेतवः=कारणानि भवन्ति। तान् = प्राणान्, निघ्नता=विनाशं कुर्वता जनेनेति शेषः, किं न हतम् = किं न विनाशितम् = अपि तु सर्वं विनाशितमित्यर्थः, तान् प्राणान् रक्षता पालयता, किं न रक्षितं = किं न गोपायितम्, अपि तु सर्वं पालितमित्यर्थः ॥४३॥

और भी—धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इस पुरुषार्थ-चतुष्टयकी रक्षा में प्राण ही कारण हैं, इसलिए जिसने इन प्राणोंका विनाश किया उसने सबका विनाश कर डाला (ऐसा समझो) और जिसने इनकी रक्षा की उसने किसकी रक्षा नहीं की; अर्थात् सबका रक्षण किया ॥ ४३ ॥

चित्रग्रीव उवाच—'सखे! नीतिस्तावदीदृश्येव। किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथाऽसमर्थः। तेनेदं ब्रवीमि।

चित्रेति—चित्रग्रीवः = कपोतराजः, उवाच=अब्रवीत्, सखे = मित्र! नीतिः=नयः, ईदृश्येव = इत्थंभूतैव, किन्तु, अहम् = कपोतराजः, अस्मदाश्रितानाम्=निजसेवकानाम्, दुःखं = क्लेशं, सोढुं = सहनं कर्तुम्, सर्वथा= सर्वप्रकारेण, असमर्थः = अशक्तः; तेन=कारणेन, इदम् = एतद्, ब्रवीमि = कथयामि।

चित्रग्रीव बोला—मित्र नीति तो ऐसी ही है। किन्तु मैं अपने आश्रित जनोंका कष्ट सहन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ, इसलिए ऐसा कहता हूँ।

यतः—धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥ ४४ ॥

अन्वयः—प्राज्ञः परार्थे एव धनानि जीवितं च उत्सृजेत्। विनाशे नियते सति सन्निमित्ते त्यागः वरम् (अस्ति) ॥ ४४ ॥

धनानीति—प्राज्ञः = विद्वान्, परार्थे = अन्यार्थे परोपकारायेत्यर्थः, एव धनानि = द्रविणानि, जीवितञ्च = स्वप्राणांश्च, उत्सृजेत् = त्यजेत्, यतः विनाशे धनादेः नाशे, नियते = निश्चिते सति, सन्निमित्ते = सत्, निमित्तं कारणं यस्मिन् तस्मिन्-परोपकारे, त्यागः = उत्सर्गः, वरम् = श्रेष्ठः अस्तीति शेषः ॥४४॥

क्योंकि—विद्वान्को दूसरोंके उपकारके लिए धन और प्राणोंको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि जब एक दिन सब वस्तुका विनाश निश्चित ही है तो किसी अच्छे कामके लिये धनादि का त्यागना श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥

अयमपरश्चासाधारणो हेतुः—

अयमिति—अयम् = एषः अपरश्च = अन्यश्च, असाधारणः = मुख्यः, हेतुः = कारणम्—वर्तत इति शेषः।

और दूसरा यह भी एक असाधारण (विशेष) कारण है—

जातिद्रव्यबलानाञ्च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि कदा किं तद्भविष्यति ॥ ४५ ॥

अन्वयः—मया सह एषां जातिद्रव्यबलानां च साम्यम् (अस्ति) तत् मत्प्रभुत्वफलम् कदा किं भविष्यति ? (इति) ब्रूहि ॥ ४५ ॥

जातीति—मया = चित्रग्रीवेण, सह, एषां कपोतानाम्, जातिद्रव्यबलानाञ्च = जातिः = कपोतत्वं, द्रव्यं च = चञ्च्वादिः, बलं = शक्तिश्च तेषाम्, साम्यं = तुल्यम्, अस्तीति शेषः। तत् = तर्हि, मत्प्रभुत्वफलं = मत्स्वामित्वस्य परिणाम-लाभ इत्यर्थः। कदा = कस्मिन् काले, किं भविष्यति, इति ब्रूहि = कथय, त्वमिति शेषः।

इन कबूतरों की और मेरी जाति, द्रव्य—चंचु, पक्ष आदि एवं बल समान है, फिर भी मुझे ये अपना प्रभु (मालिक) मानते हैं, इसलिये कहो इस मेरे प्रभुत्व का फल कब और क्या होगा ? ॥ ४५ ॥

अन्यच्च—विना वर्तनमेवैते न त्यजन्ति ममान्तिकम्।
तन्मे प्राणव्ययेनाऽपि जीवयैतान् ममाश्रितान् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—एते वर्तनं विना एव मम अन्तिकं न त्यजन्ति, तत् मे प्राणव्ययेन अपि मम आश्रितान् एतान् जीवय ॥ ४६ ॥

विनेति—एते = कपोताः, वर्तनं = जीविकाम्, विना = ऋते, मम = चित्र-ग्रीवस्य, अन्तिकं = समीपम्, न त्यजन्ति = न मुञ्चन्ति, तत् = तस्माद्धेतोः, मे =

मम, प्राणव्ययेनाऽपि = प्राणानां व्ययः = उपयोगः, विनिमय इति यावत्, तेनापि एतान् = इमान्, ममाश्रितान् = मद्भृत्यान्, जीवय = परिपालय ॥४६॥

और भी—जीविका के बिना भी ये मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं। इसलिए मेरे प्राणों के व्यय (खर्च) से भी इन मेरे आश्रितों की रक्षा करो ॥४६॥

किञ्च—मांसमूत्रपुरीषास्थिनिर्मितेऽस्मिन् कलेवरे।
विनश्वरे विहायास्थां यशः पालय मित्र! मे ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मित्र! मांसमूत्रपुरीषास्थिनिर्मिते विनश्वरे अस्मिन् कलेवरे आस्थां विहाय मे यशः पालय ॥ ४७ ॥

मांसेति—हे मित्र! मांस-मूत्र-पुरीषास्थिनिर्मिते = मांसं च पुरीषञ्च अस्थि च तैः निर्मिते = विरचिते, अस्मिन् = एतस्मिन्, विनश्वरे = विनाशशीले, कलेवरे = शरीरे, आस्थां = यत्नम्, 'आस्थानाऽऽयत्नयोरास्थे'त्यमरः, विहाय = परित्यज्य, मे = मम, यशः = कीर्तिम्, पालय = रक्ष ॥४७॥

और भी—हे मित्र! मांस, मूत्र, विष्ठा और हड्डोसे बने हुए इस विनाशशील शरीरका प्रेम छोड़कर मेरी कीर्ति की रक्षा करो ॥४७॥

अपरं च पश्य—यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना।
यशः कायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन्नु किम् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—यदि अनित्येन मलवाहिना कायेन नित्यं निर्मलं यशः लभ्येत तत् किम् नु लब्धं न भवेत् ॥ ४८ ॥

यदीति—यदि = चेत्, अनित्येन = अस्थायिना नश्वरेणेति यावत्, मलवाहिना = मलं वहतीति मलग्राही तेन मलादिपरिपूर्णेन, कायेन = शरीरेण नित्यं = विनाशरहितं निर्मलं = शुद्धम्, यशः = कीर्तिः, लभ्येत = प्राप्येत, तत् = तर्हि, नु = इति वितर्के, किं = वस्तु, न लब्धं = न प्राप्तम्, मयेति शेषः, अर्थात् सर्वं वस्तु लब्धम् ॥४८॥

और भी देखो—विनाशशील और मलमूत्रादिको धारण करनेवाले इस शरीरसे यदि स्थायी और शुद्ध यश प्राप्त हो, तो क्या नहीं प्राप्त हुआ। अर्थात् सांसारिक सभी पदार्थ मिल गये—ऐसा समझना चाहिए ॥४८॥

यतः—शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥४९॥

अन्वयः—शरीरस्य गुणानां च अन्तरम् अत्यन्तं दूरम् (अस्ति) (यतः) शरीरं क्षणविध्वंसि (भवति) गुणाः (च) कल्पान्तस्थायिनः (भवन्ति) ॥४९॥

शरीरेति—शरीरस्य = कायस्य, गुणानाञ्च = दयादाक्षिण्यादीनाञ्च, अन्तरम् = प्रभेदः, अवकाश इति यावत्, अत्यन्तं = अधिकम्, दूरं = विप्रकृष्टम्, वर्तते, (यतः) शरीरं = कायः, क्षणविध्वंसि = क्षणभङ्गुरम्, (तथा) गुणाः = दाक्षिण्यादयस्तु, कल्पान्तस्थायिनः = सृष्ट्यन्तस्थितयो वर्त्तन्त इति भावः ।

क्योंकि—शरीर और दयादाक्षिण्यादि गुणोंमें बहुत दूरका अन्तर है, क्योंकि शरीर तो अकस्मात् क्षणमात्रमें नष्ट होने योग्य है और दयादाक्षिण्यादि गुण तो महाप्रलयतक स्थिर रहनेवाले हैं । (अतः यश की रक्षा सर्वथा योग्य और उचित है) ॥४९॥

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन्नब्रवीत्—साधु मित्र ! साधु । अनेनाश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते । एवमुक्त्वा तेन सर्वेषां बन्धनानि छिन्नानि । ततो हिरण्यकः सर्वान् सादरं सम्पूज्याह—सखे चित्रग्रीव ! सर्वथात्र जालबन्धनविधौ दोषमाशङ्क्यात्मन्यवज्ञा न कर्तव्या ।

इतीति—इति = पूर्वोक्तचित्रग्रीववचनम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, हिरण्यकः = तन्नामकमूषकः, प्रहृष्टमनाः = प्रसन्नचेताः, पुलकितः = रोमांचितः, सन् अब्रवीत् = उवाच, साधु मित्र ! साधु । अनेन, आश्रितवात्सल्येन = भृत्यस्नेहेन त्रैलोक्यस्य स्वर्गमर्त्यपाताललोकस्यापि, प्रभुत्वं = स्वामित्वम्, त्वयि = भवति चित्रग्रीवे, इत्यर्थः, युज्यते युक्तं भवति । एवम् = इत्थम्, उक्त्वा = कथयित्वा, तेन = हिरण्यकेन, सर्वेषां = कपोतानाम् बन्धनानि = जालनियन्त्रणानि, छिन्नानि = खण्डितानि । ततः हिरण्यकः, सर्वान् = कपोतान्, सादरम् = आदरेण सहितम्, सम्पूज्य = सम्यक् पूजयित्वा अतिथिसत्कारं कृत्वेति यावत्, आह = उवाच । सखे चित्रग्रीव ! सर्वथा = सर्वप्रकारेण, अत्र = अस्मिन्, जालबन्धनविधौ = पाशनियंत्रणकार्ये, दोषः = स्वस्यापराधमस्मानं वा, आशंक्य = सम्भाव्य, आत्मनि = स्वस्मिन्, अवज्ञा = तिरस्कृतिः, न कर्तव्या = न विधेया ।

यह सुनकर हिरण्यक प्रसन्नचित्त तथा पुलकित होकर बोला—धन्य हो मित्र, धन्य हो ! इस अनुचर-प्रेमसे तुम तीनों लोकके भी स्वामी बनने योग्य हो । इस प्रकार कहकर हिरण्यकने सब कपोतोंका बन्धन काट दिया । बाद हिरण्यक सबकी सादरपूजा कर बोला—मित्र चित्रग्रीव ! इस जालबन्धनके विषयमें दोषकी शंकाकर अपना तिरस्कार नहीं करना चाहिये ।

अतः—योऽधिकाद्योजनशतात्पश्यतीहामिषं खगः ।
स एव प्राप्तकालस्तु पाशबन्धं न पश्यति ॥ ५० ॥

अन्वयः—यः खगः योजनशतात् अधिकात् इह आमिषं पश्यति स एव प्राप्तकालः तु पाशबन्धं न पश्यति ॥ ५० ॥

य इति—इह = अस्मिन् संसारे, यः = खगः पक्षिविशेषो गृध्रः, अधिकात्= अधिकदूरं, योजनशतात् = योजनानां-शतं तस्मात्, आमिषं = मांसं, पश्यति = अवलोकयति, स एव प्राप्तकालः = प्राप्तः कालो यस्य सः, पाशबन्धं = जालम्, अन्येन विस्तीर्ण स्वमरणकारणभूतमित्यर्थः, न = नहि, पश्यति = अवलोकयति ॥५०॥

क्योंकि—जो पक्षी (गिद्ध) सौ योजन (१ योजन ८ मील का होता है) से भी अधिक दूरसे मांसको देखता है, वही काल आनेपर जालके बन्धनको नहीं देखता है ॥ ५० ॥

अपरञ्च—शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—शशि-दिवाकरयोः ग्रहपीडनम्, गजभुजङ्गमयोः अपि बन्धनम्, मतिमतां दरिद्रतां च विलोक्य, अहो विधिः बलवान् इति मे मतिः (अस्ति)॥५१॥

शशीति—शशि-दिवाकरयोः—शशिः = चन्द्रः, दिवाकरः = सूर्यः, तयोः ग्रहपीडनम् ग्रहेण = राहुणा पीडनम्, गजभुजङ्गमयोः = गजः = हस्ती = भुजङ्गमः = सर्पः तयोः अपि, बन्धनम् = नियन्त्रणम्, मतिमतां = बुद्धिमताम्, दरिद्रतां = निर्धनत्वं, दैन्यम्, च, विलोक्य = दृष्ट्वा, मे = मम, मतिः = बुद्धिः (भवति) यत् अहो = इति खेदे, विधिः = दैवं, बलवान् = निग्रहानुग्रहसमर्थः, अस्ति इति शेषः ॥ ५१ ॥

और भी—चन्द्रमा और सूर्यको राहु नामक ग्रहविशेष से पीड़ा, सर्प तथा हाथीका बन्धन और पण्डितोंकी दरिद्रता देखकर मैं समझता हूँ कि—नियति —पुरुष का भाग्य, बलवान् होता है ॥ ५१ ॥

अन्यच्च—व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि ।
दुर्नीतं किमिहास्ति किं सुचरितं कः स्थानलाभे गुणः

कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ॥ ५२ ॥

अन्वयः—व्योमैकान्तविहारिणः, अपि, विहगाः आपदं सम्प्राप्नुवन्ति । अगाधसलिलात् समुद्रात् अपि मत्स्याः बध्यन्ते । इह दुर्नीतं किम् अस्ति, सुचरितं किम् अस्ति स्थानलाभे कः गुणः अस्ति हि व्यसनप्रसारितकरः कालः दूरात् अपि गृह्णाति ॥ ५२ ॥

व्योमेति—व्योमैकान्तविहारिणः = व्योम्नः = आकाशस्य, एकान्ते निभृतप्रदेशे, विहारिणः = भ्रमणशीलाः, अपि, विहगाः = पक्षिणः, आपदं = विपत्ति, सम्प्राप्नुवन्ति = अनुभवन्ति । निपुणैः = कुशलैः पुरुषैः धीवरैरित्यर्थः, अगाधसलिलात् = अतलस्पर्शात्, समुद्रात् = सागरादपि, मत्स्याः = मीनाः, बध्यन्ते = ध्रियन्ते । इह = अस्मिन् संसारे, दुर्नीतं = दुश्चरितम् किम् अस्ति = भवति, सुचरितं = शोभनमाचरणं किमस्ति, स्थानलाभे = स्थानस्य दुर्गादेः लाभः तस्मिन्, कः गुणः — किं फलम्, अस्ति हि = यतः, व्यसनप्रसारितकरः = व्यसने-विपदि प्रसारितः करः येन एवम्भूतः कालः = मृत्युः समयो वा दूरादपि = विप्रकृष्टादपि गृह्णाति = आदत्ते ॥ ५२ ॥

और भी—आकाशके शून्य स्थानमें भ्रमण करनेवाले पक्षी भी आपत्तिमें फँस जाते हैं । मल्लाह अथाह सागरसे भी मछलियोंको पकड़ लेते हैं । इस संसारमें दुर्नीति और सुनीति क्या है ? किला आदि उत्तम स्थान मिलनेपर भी क्या फल है ? क्योंकि काल विपत्ति आनेपर दूरसे ही हाथ फैलाकर पकड़ लेता है ॥ ५२ ॥

इति—प्रबोध्यातिथ्यं कृत्वाऽऽलिङ्ग्य च चित्रग्रीवस्तेन सम्प्रेषितो यथेष्टदेशान्सपरिवारो ययौ । हिरण्यकोऽपि स्वविवरं प्रविष्टः ।

इतीति—इति = उक्तवाक्येन, प्रबोध्य = आश्वास्य, आतिथ्यं = अतिथिसत्कारम् कृत्वा = विधाय, आलिङ्ग्य = आश्लिष्य, तेन = हिरण्यकेन, सम्प्रेषितः = विसर्जितः, चित्रग्रीवः = कपोतराजः, सपरिवारः = सबान्धवः यथेष्टदेशान् = स्वाभीष्टदेशान्, ययौ = प्रस्थितः । हिरण्यकोऽपि स्वविवरं = स्वबिलम्, प्रविष्टः = विवेश ।

इस प्रकार सान्त्वना देकर अतिथिसत्कार तथा आलिंगनकर हिरण्यकने चित्रग्रीवको बिदा किया और वह अपने परिवार सहित यथेष्ट देशको चला गया । एवं हिरण्यक भी अपने बिल में घुस गया ।

उक्तञ्च—यानि कानि च मित्राणि कर्त्तव्यानि शतानि च ।

पश्य मूषिकमित्रेण कपोता मुक्तबन्धनाः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—यानि कानि च शतानि च मित्राणि कर्तव्यानि, मूषकमित्रेण कपोताः मुक्तबन्धनाः (जाताः इति) पश्य ॥ ५३ ॥

यानीति—यानि कानि = यादृशानि दुर्बलानि सबलानि नीचानि महान्ति वेति भावः, शतानि = बहुसंख्यकानि, मित्राणि = सुहृदः, कर्तव्यानि = करणीयानि । मूषकमित्रेण = मूषकसुहृदा, कपोताः = पारावताः, मुक्तबन्धनाः = बन्धनरहिताः, जाताः (इति), पश्य = अवलोकय ॥ ५३ ॥

कहा भी है—जो कोई भी हो (अच्छे या बुरे) सैकड़ों मित्र बनाने चाहिए; देखो चूहे मित्र ने कबूतरों के बन्धन काट डाले ॥ ५३ ॥

अथ लघुपतनकनामा काकः सर्ववृत्तान्तदर्शी साश्चर्यमिदमाह अहो, हिरण्यक ! श्लाध्योऽसि । अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीमिच्छामि, अतो मां मैत्र्येणानुग्रहीतुमर्हसि । एतत्श्रुत्वा हिरण्यकोऽपि विवराभ्यन्तरादाह—कस्त्वम् ? स ब्रूते-लघुपतनकनामा वायसोऽहम् । हिरण्यको विहस्याह—का त्वया सह मैत्री ?

अथेति—अथ = अनन्तरम्, लघुपतनकनामा = लघुपतनक इति नाम यस्य स—लघुपतनकाभिधानः, काकः = वायसः, सर्ववृत्तान्तदर्शी = सर्वं वृत्तान्तं पश्यति इति,—चित्रग्रीवहिरण्यकयोः साकल्येन, यथावत् दृष्टव्यापारः सन्, साश्चर्यं = सचकितं यथा स्यात्तथा, इदं = वक्ष्यमाणम्, आह = उवाच । अहो = भोः, हिरण्यक ! श्लाघ्योऽसि = प्रशंसनीयोऽसि, अतः = अस्मात् कारणात्, अहमपि = लघुपतनकोऽपि, त्वया = हिरण्यकेन, मैत्रीं = सख्यम्, इच्छामि = अभिलषामि । अतः = अस्माद्धेतोः, मां = लघुपतनकम्, मैत्र्येण = सख्येन, अनुग्रहीतुं = अनुग्रहं कर्तुम्, अर्हसि = योग्यो भवसि । एतत् = लघुपतनकोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, हिरण्यकोऽपि, विवराभ्यन्तरात् = बिवरस्य बिलस्य अभ्यन्तरं मध्यं तस्मात्, आह = उवाच, त्वं कः, स = लघुपतनकः, ब्रूते = ब्रवीति, लघुपतनकनामा वायसः = काकः, अहमस्मीति शेषः । हिरण्यकः, विहस्य = हासं कृत्वा, आह, त्वया = काकेन, सह = साकं, का = कीदृशी मैत्री = सख्यम् ? वर्तते इति शेषः ।

इसके बाद—चित्रग्रीव और हिरण्यककी मित्रताके सब वृत्तान्तों को देखने वाला लघुपतनक नामक कौवा बोला—हे हिरण्यक ! तुम प्रशंसा के योग्य हो । इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ मित्रता करने की इच्छा करता हूँ । अतः मुझसे भी कृपाकर मित्रता कर लो । यह सुनकर हिरण्यक भी बिलके भीतरसे

बोला—तुम कौन हो ? वह बोला मैं लघुपतनक नामक कौवा हूँ । तब हिरण्यक ने हँसकर कहा—तुम्हारे साथ मेरी कैसी मैत्री ?

यतः—यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत् ।
अहमन्नं भवान् भोक्ता कथं प्रीतिर्भविष्यति ॥ ५४ ॥

अन्वयः—लोके यत् येन युज्यते बुधः तेन तत् योजयेत् अहम् (भवतः) अन्नम् (अस्मि) भवान् (मम) भोक्ता (अस्ति) (अस्यां स्थितौ आवयोः) प्रीतिः कथं भविष्यति ? ॥ ५४ ॥

यदिति—लोके = संसारे, येन = पुरुषेण, यत् युज्यते = योजयितुं योग्यो भवति, बुधः = विद्वान्, तत्, तेन व्यक्तिविशेषण, योजयेत् = मेलयेत् । अहम् मूषकः, अन्नं = भक्ष्यम्, तवेति शेषः, भवान् = काकः भोक्ता (अस्ति ममेतिशेषः) (तर्हि आवयोः) प्रीतिः = मैत्री, कथं = केन प्रकारेण, भविष्यति ॥ ५४ ॥

क्योंकि—विद्वान् पुरुषको चाहिए कि संसार में जो वस्तु जिसके साथ मिलने योग्य हो उसको उसी के साथ मिलावे । मैं ठहरा आपका खाद्य और आप ठहरे मुझे खानेवाले; फिर कहिये खाद्य और खादक की (मेरी और आपकी) मैत्री कैसी ? ॥ ५४ ॥

अपरञ्च—भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तेरेव कारणम् ।
शृगालात् पाशबद्धोऽसौ मृगः काकेन रक्षितः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः विपत्तेः एव कारणं (भवति) । शृगालात् पाशबद्धः असौ मृगः काकेन रक्षितः ॥ ५५ ॥

भक्ष्येति—भक्ष्यभक्षकयोः = भक्ष्यश्च भक्षकश्च इति तौ तयोः खाद्यखादकयोः, प्रीतिः = मैत्री, विपत्तेः = कष्टस्य, एव, कारणम् = निदानम्, अस्ति । शृगालात् = जम्बुकात्, पाशबद्धः = पाशेन बद्धः = संयमितः असौ मृगः, काकेन = वायसेन, रक्षितः = पालितः ॥ ५५ ॥

भक्ष्य (खाने योग्य,) और भक्षक (खानेवाले) की मैत्री आपत्ति की जड़ है, जैसे—सियार (भक्षक) से जाल में फँसाया गया हरिण (भक्ष्य) कौवे से रक्षा किया गया ॥ ५५ ॥

वायसोऽब्रवीत्—'कथमेतत् ?' हिरण्यकः कथयति—

वायसः = काकः, अब्रवीत् = उवाच, एतत् = अदः, कथम् = केन प्रकारेण, जातमिति शेषः, हिरण्यकः = मूषकराजः, कथयति = ब्रवीति ।

कौवा बोला—यह कैसे ? हिरण्यक कहने लगा—

॥ कथा २ ॥

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामारण्यानी। तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन्हृष्टपुष्टाङ्गः केनचिच्छृगालेनावलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत्; आः कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि ? भवतु विश्वासं तावदुत्पादयामि। इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत्—मित्र ! कुशलं ते ? मृगेणोक्तम्—कस्त्वम् ? स ब्रूते—क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम्। अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि। इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुनः सबन्धुर्जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि। साधुना तवानुचरेण मया सर्वथा भवितव्यम्। मृगेणोक्तम्-एवमस्तु।

अस्तीति—मगधदेशे = मगधनाम्नि देशे, चम्पकवतीनाम = चम्पकवतीति प्रसिद्धा, अरण्यानी = महावनम्, अस्ति। तस्यां = अरण्यान्याम्, चिरात् = बहोः कालात्, महता = विशिष्टेन, स्नेहेन = प्रेम्णा, मृगकाकौ = हरिणकाकौ, निवसतः = वासं कुरुतः। स च प्रसिद्धः मृगः = हरिणः, स्वेच्छया = स्वया इच्छया, यथेष्टमिति भावः, भ्राम्यन् = भ्रमणं कुर्वन्, हृष्टपुष्टाङ्गः = हृष्टानि पुष्टानि च अङ्गानि यस्य सः, केनचित् = अपरिचितेन, शृगालेन = जम्बुकेन, अवलोकितः = दृष्टः, तं = मृगम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, शृगालः = गोमायुः, अचिन्तयत् = विचारयामास। आः = इति प्रसन्नतायाम्, आश्चर्ये च, सुललितम् = अतिमनोहरम्, एतन्मांसम् = एतस्य = मृगस्य, मांसम् = आमिषम्, कथं = केन प्रकारेण, भक्षयामि = अत्स्यामि, भवतु = अस्तु। विश्वासम् = प्रतीतिम्, तावत् = प्रथमम्, उत्पादयामि = जनयामि, इति = एतत्, आलोच्य = मनसि विचार्य्य, उपसृत्य = समीपं गत्वा मृगस्येति शेषः। अब्रवीत् = उवाच। मित्र ! ते = तव, कुशलं = क्षेमम् वर्तते, मृगेणोक्तं = हरिणेनाभिहितम्, त्वम् = कः (असि)। सः = शृगालः, ब्रूते = कथयति, क्षुद्रबुद्धिनामा = क्षुद्रा लघ्वी बुद्धिः = धिषणा यस्य, स एव नाम यस्य सः, जम्बुकः = अहम्, अस्मि, अस्मिन्, अरण्ये = वने, बन्धुना हीनः = रहितः, मृतवत् = मृतेन तुल्यः, निवसामि = तिष्ठामि, इदानीं = साम्प्रतम्, त्वां = भवन्तम्, मित्रमासाद्य = सुहृदं प्राप्य, पुनः सबन्धुः = बन्धुना त्वया सह, जीवलोकं = संसारं, प्रविष्टः = प्रविष्टवान् अस्मि। अधुना = साम्प्रतम्, तव = भवतः अनुचरेण

भृत्येन, मया = जम्बुकेन, सर्वथा=सर्वप्रकारैः, भवितव्यम् = वर्त्तितव्यम् । मृगेण = हरिणेन, उक्तम् = कथितम्, एवम् = इत्थम्, अस्तु = भवतु, अनुयायी भूत्वा मया सह मैत्रीसुखमनुभवेत्यर्थः ।

मगध देशमें चम्पकवती नामक एक महावन था । उसमें बहुत दिनोंसे एक हरिण और कौवा बड़े स्नेहसे रहते थे । अपनी इच्छासे घूमते-फिरते तथा हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले उस हरिणको किसी सियारने देखा । उसको देखकर वह सियार सोचने लगा--आ हा ! किस प्रकार इसका मनोहर मांस खानेको मिलेगा । अच्छा ! पहले इसे विश्वास उत्पन्न कराता हूँ । ऐसा विचारकर उसके समीप जाकर बोला—मित्र ! कुशलसे हो ? मृगने कहा–तुम कौन हो ! उसने कहा–मैं क्षुद्रबुद्धि नामक सियार हूँ और इस जङ्गल में मित्ररहित, मरे हुए की तरह रहता हूँ, किन्तु इस समय तुम सरीखे मित्रको पाकर फिर मित्रसहित संसारमें स्थित हूँ, अर्थात् मित्रलाभ प्रयुक्त सुखको प्राप्तकर जी उठा हूँ । अब मैं सब प्रकार से तुम्हारा अनुगामी (सेवक) होकर रहूँगा । मृगने कहा—अच्छा ! ऐसा ही (ठीक है) हो ।

ततः पश्चादस्तं गते सवितरि भगवति मरीचिमालिनि तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ । तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति । तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत्--सखे चित्राङ्ग ! कोऽयं द्वितीयः ! मृगो ब्रूते--जम्बुकोऽयम् । अस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः । काको ब्रूते--मित्र ! अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता ।

तत इति—ततः = तदनन्तरम्, पश्चात् = अनु, भगवति = ऐश्वर्यसम्पन्ने, मरीचिमालिनि = मरीचीनां रश्मीनां माला अस्ति अस्य, तस्मिन्, किरणसमुदाययुक्ते, सवितरि सूर्ये, अस्तं गते = अस्ताचलारूढे सति, तौ = मृगजम्बुकौ, मृगस्य = हरिणस्य, वासभूमिं=निवासस्थानम् । गतौ=अगच्छताम् । तत्र=निवासस्थाने, चम्पकवृक्षशाखायां = चम्पकाख्यवृक्षस्य विटपे, सबुद्धिनामा = सुबुद्धि इति नाम्ना ख्यातः, काकः = वायसः, मृगस्य = हरिणस्य, चिरमित्रं = चिरकालीनं मित्रम्, निवसति=वासं करोति । तौ = मृगजम्बुकौ, दृष्ट्वा = अवलोक्य, अवदत् = उवाच, सखे चित्रांग=मित्र चित्रांगमृग ! कोऽयं द्वितीयः = कोऽपरः अन्यः ? मृग = हरिणः, ब्रूते = ब्रवीति, जम्बुकोऽयम् = शृगालोऽसौ, अस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः = अस्माकं मैत्रीमभिलषन्नायातः, काको ब्रूते = सुबुद्धिराह, मित्र =

सखे ! अकस्मात्=सहसैव, आगन्तुना=अतिथिना, सह, मैत्री=मित्रता, न युक्ता=न समीचीना वर्तते इति शेषः ।

इसके बाद रश्मियोंकी मालावाले भगवान् सूर्य के अस्त होने पर वे दोनों मृग के निवासस्थान पर गये ! वहाँ चम्पाकी डालपर मृगका अति प्राचीन मित्र सुबुद्धि नामक कौआ रहता था। कौवेने उन दोनों को देखकर कहा—मित्र चित्रांग ! यह दूसरा कौन है ? मृगने कहा—यह गीदड़ है। हमारे साथ मित्रता करने की इच्छासे आया है। कौवा बोला—मित्र ! अपरिचित के साथ सहसा मित्रता नहीं करनी चाहिए।

तथा चोक्तम्—अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः ॥५६॥

अन्वयः—अज्ञातकुलशीलस्य कस्यचित् वासः न देयः। हि मार्जारस्य दोषेण जरद्गवः गृध्रः हतः ॥ ५६ ॥

अज्ञातेति—अज्ञातकुलशीलस्य=अज्ञाते कुलशीले यस्य तस्य, कस्यचित्=अपरिचितस्य, वासः=आश्रयः, न देयः=न दातव्यः। हि=यतः, मार्जारस्य=बिडालस्य, दोषेण=अपराधेन, जरद्गवः=तन्नामकः, गृध्रः=पक्षिविशेषः; हतः=मारितः ॥५६॥

कहा भी है—जिसका वंश और व्यवहार (चरित्र) नहीं मालूम है उसको घरमें कभी आश्रय नहीं देना चाहिये, क्योंकि बिडाल के दोष से जरद्गव नामक बूढ़ा गीध मारा गया।

तावाहतुः—कथमेतत् ? काकः कथयति—

तौ—मृगशृगालौ, आहतुः=ब्रूतः, एतत्=इदम्, कथम्=केन प्रकारेण जातमिति शेषः। काकः=सुबुद्धिनामा वायसः, कथयति=ब्रवीति।

यह सुन दोनों ने कहा—यह कैसे ! कौवा कहने लगा—

॥ कथा ३ ॥

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटीवृक्षः। तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकात् गलितनखनयनो जरद्गवनामा गृध्रः निवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किञ्चित् किञ्चिदुद्धृत्य ददति, तेनासौ जीवति। अथ कदाचित् दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षितुं तत्रागतः। ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षि-

शावकैर्भयार्तैः कोलाहलः कृतः। तत्श्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम्—कोऽयमायाति? दीर्घकर्णो गृध्रमलोक्य सभयमाह—हा हतोऽस्मि।

अस्तीति—भागीरथीतीरे = भागीरथी = गङ्गा = तस्यास्तीरे=तटे, गृध्रकूटनाम्नि = गृध्रकूटनामके, पर्वते = गिरौ, महान् = विशालः = पर्कटीवृक्षः=प्लक्षतरुः अस्ति = विद्यते। तस्य = पर्कटीतरोः, कोटरे=निष्कुहे, दैवदुर्विपाकात्=दैवस्य=अदृष्टस्य दुर्विपाकः = प्रातिकूल्यम्, तस्मात् = भाग्यदोषात्, गलितनखनयनः = गलितं नखनयनं यस्य सः=पतितनखनेत्रः, जरद्गवनामा = जरद्गव इति नाम यस्य सः जरद्गवाख्यः, गृध्रः = दाक्षाय्यः पक्षिविशेषः, 'दाक्षाय्यगृध्रावित्यमरः। प्रतिवसति = आवासं करोति। अथ, तद्वृक्षवासिनः = तस्मिन्वृक्षे वसन्ति इति ते तच्छीलाः—पक्षिणः=तद्वृक्षस्थाः खगाः, कृपया=दयया, तज्जीवनाय=तस्य गृध्रस्य जीवनाय = जीवनार्थाय, स्वाहारात् = स्वस्य आहारः—भोजनम्—तस्मात्, किंचित्, =स्वल्पं स्वल्पम्, उद्धृत्य=निष्कास्य, ददति = अर्पयन्ति। तेन =आहारेण, असौ = गृध्रः, जीवति प्राणिति। अनन्तरम्, कदाचित् = जातु, दीर्घकर्णनामा = दीर्घौ कर्णौ यस्य सः, स एव नाम यस्य स दीर्घकर्णनामा, मार्जारः = बिडालः, पक्षिशावकान्=पक्षिणां शावकास्तान् पक्षिशिशून्, भक्षितुम्=अत्तुम्, तत्र वृक्षतले, आगतः=आगतवान्। ततः=तदनन्तरम्, तम्, = मार्जारम्, आयान्तम् = आगच्छन्तम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, भयार्तैः = भयेन आर्त्ताः तैः भयाकुलैः, पक्षिशावकैः = पक्षिपोतैः, कोलाहलः = कलकलः, कृतः=आरब्धः तत्। =कोलाहलं, श्रुत्वा=आकर्ण्य, जरद्गवेन=तदाख्यगृध्रेण, उक्तम्=कथितम्, अयम्, = एषः, क आयाति = किन्नाम व्यक्तिविशेष आगच्छति। दीर्घकर्णः= तदाख्यो बिडालः, गृध्रं = जरद्गवम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, सभयं = भयेन सहितम् सभयं यथा स्यात्तथा आह = उवाच, हा! = इति खेदे (अहं) हतः = मारितः अस्मि।

गंगाजीके किनारे गृध्रकूट नामक पर्वतपर एक विशाल (बड़ा) पाकड़ का वृक्ष था। उसके कोटर में दुर्भाग्य से अन्धा तथा नखहीन जरद्गव नामक गृध्र (गीध) रहता था। उस वृक्ष पर रहनेवाले पक्षी कृपाकर अपने-अपने आहार से कुछ-कुछ (थोड़ा-थोड़ा) निकालकर उसके जीवनधारण के लिए देते थे। उसी से वह जीता था। एक दिन दीर्घकर्ण नामका बिडाल पक्षियोंके बच्चों को खानेके लिये वहाँ आया। उसे आते हुए देखकर पक्षियों के बच्चे भयाकुल हो कोलाहल (चूँ चूँ शब्द) करने लगे। उस (चूँ चूँ शब्द) को सुनकर

जरद्गवने कहा—कौन यह आ रहा है ? दीर्घकर्ण गोधको देखकर डरकर बोला —हाय ! अब मैं मारा गया ।

यतः—तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतन्तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्य्यात् यथोचितम् ॥५७॥

अन्वयः—यावत् भयम् अनागतम् तावत् भयस्य भेतव्यम्, आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः यथोचितं कुर्यात् ॥ ५७ ॥

तावदिति—यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, भयं = भीतिः, अनागतम् = न उपस्थितम्, तावत् = तत्कालंयावत् भयस्य = भयेने त्वर्थं भेतव्यं = भयं कर्तव्यम् । तु = किन्तु, आगतं = प्राप्तम्, भयं = भीतिं, वीक्ष्य = अवलोक्य, नरः = जनः, यथोचितम् = यथायोग्यम्, कुर्यात् = विदधीत ॥ ५७ ॥

भय से तभी तक डरना चाहिए जबतक भय समीप न आये, किन्तु भय को पास आया देखकर मनुष्य जैसा प्रतीकार उचित समझे वैसा करे ॥ ५७ ॥

अधुनाऽस्य सन्निधाने पलायितुमक्षमः । तद्यथा भवितव्यं तद्भवतु । तावद्विश्वासमुत्पाद्यास्य समीपं गच्छामि, इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत् आर्य ! त्वामभिवन्दे । गृध्रोऽवदत् , कस्त्वम् ? सोऽवदत् , मार्जारोऽहम् । गृध्रो ब्रूते—दूरमपसर ! नो चेद्धन्तव्योऽसि मया । मार्जारोऽवदत्— श्रूयतां तावदस्मद्वचनम् । ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्यः ।

अधुनेति—अधुना = साम्प्रतम्, अस्य = जरद्गवस्य, सन्निधाने = समीपं पलायितुं = पलायनं कर्तुं = प्रपलाय्य आत्मानं रक्षितुमिति यावत्, अक्षमः = असमर्थः अस्मीति शेषः । तत् = तस्मात् कारणात्, यथा = येन प्रकारेण, भवितव्यम् = भावि, तत् = तथा, भवतु—अस्तु, तावत् = प्रथमं, विश्वासं = प्रतीतिं, समुत्पाद्य—सम्यक् उत्पाद्य, अस्य = जरद्गवस्य, समीपम् = अन्तिकम्, गच्छामि= यामि । इति—एतत्, आलोच्य = विचार्य्य, उपसृत्य = गृध्रसमीपमेत्य, अब्रवीत्= उवाच । आर्य = श्रेष्ठ ! त्वां—भवन्तम्, अभिवन्दे—प्रणमामि । गृध्रः अवदत्, कः त्वम्—स अवदत्, मार्जारः—अहम्, गृध्रः ब्रूते—ब्रवीति, दूरं—विप्रकृष्टम्, अपसर—गच्छ । नो चेत्—अन्यथा, मया—गृध्रेण, हन्तव्यः—मारणीयः, असि= त्वमिति शेषः । मार्जारोऽवदत्—बिडाल उवाच, तावत्—प्रथमम्, अस्मद् वचनम्—अस्माकम् उक्तिः, श्रूयतां—आकर्ण्यताम्, ततः—तदनन्तरम्, यदि— चेत्, अहं—मार्जारः, वध्यः—हन्तुं योग्यः, तदा हन्तव्यः—मारणीयः ।

अब इसके पाससे भाग नहीं सकता हूँ । इसलिये जो होना हो वह हो । प्रथम अपना विश्वास पैदाकर इसके समीप जाता हूँ । ऐसा सोच उसके समीप जाकर बोला—आर्य ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ । गीध बोला—तुम कौन हो ? वह बोला—मैं बिलाव हूँ । गीध बोला—दूर भाग, नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा । बिलाव बोला—पहले मेरे वचन को सुनो, बाद यदि मैं मारने योग्य होऊँ तो मार देना ।

यतः—जातिमात्रेण किं कश्चित् हन्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत् ॥५८॥

अन्वयः—कश्चित् क्वचित् जातिमात्रेण, किं हन्यते किं (वा) वध्यते । व्यवहारं परिज्ञाय कश्चित् वध्यः अथवा पूज्यः भवेत् ॥ ५८ ॥

जातीति—कश्चित् = कोऽपि, क्वचित् = कुत्राऽपि जातिमात्रेण = अयं ब्राह्मण-जातीयः अयं चाण्डालजातीयः इत्येतन्मात्रेण, किं हन्यते = किं वध्यते, पूज्यते = सत्क्रियते वा, (किन्तु) व्यवहारम् = आचारम्, परिज्ञाय = विज्ञाय, वध्यः = हन्तुं योग्यः, अथवा = वा, पूज्यः = सत्कारयोग्यः, भवेत् ॥ ५८ ॥

क्योंकि—केवल जातिमात्रसे क्या कोई मारने या पूजने योग्य होता है ? अर्थात् नहीं । किन्तु व्यवहार जानकर ही मारने या पूजने योग्य होता है ॥५८॥

गृध्रो ब्रूते—ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि ? सोऽवदत्-अहमत्र गङ्गातीरे नित्यस्नायी, निरामिषाशी, ब्रह्मचारी, चान्द्रायणव्रतमाचरंस्तिष्ठामि । यूयं धर्मज्ञानरता विश्वासभूमय इति पक्षिणः सर्वे सर्वदा ममाग्रे प्रस्तुवन्ति । अतो भवद्भ्यो विद्यावयोवृद्धेभ्यो धर्मं श्रोतुमिहागतः । भवन्तश्चैतादृशा धर्मज्ञा यन्मामतिथिं हन्तुमुद्यताः ।

गृध्र इति—गृध्रः = जरद्गवः, ब्रूते = कथयति, ब्रूहि = कथय, किमर्थम् = कस्मै प्रयोजनाय, आगतोऽसि = प्राप्तः असि, सः = मार्जारः, अवदत् = अकथयत्, अहम् = मार्जारः, अत्र = अस्मिन्, गङ्गातीरे = भागीरथीतटे, नित्यस्नायी = नित्यस्नानशीलः, निरामिषाशी = आमिषं—मांसं तस्मात् निष्क्रान्तम्--रहितम् इति निरामिषम्, तत् अश्नातीति तच्छीलो निरामिशाशी—अमांसभोजी शाकाहारीत्यर्थः, ब्रह्मचारी = अष्टविधमैथुनरहितः, चान्द्रायणव्रतं = तन्नामकव्रतम्, आचरन् = अनुतिष्ठन्, तिष्ठामि = निवसामि, यूयं = भवन्तः, धर्मज्ञानरताः = धर्मश्च ज्ञानञ्च इति धर्मज्ञाने तयोः रताः आसक्ताः, विश्वासभूमयः = विश्वास-स्थानानि, इति = एवम्, पक्षिणः = विहगाः, सर्वे = समस्ताः, सर्वदा = नित्यम्,

मम, अग्रे=पुरतः, प्रस्तुवन्ति=कथयन्ति, अतः अस्माद्धेतोः, विद्यावयोवृद्धेभ्यः =विद्या च वयश्च इति विद्यावयसी ताभ्यां तयोर्वा वृद्धास्तेभ्यः भवद्भ्यः= युष्मत्, धर्मम्, श्रोतुम्=आकर्णयितुम्, इह=अत्र, आगतः=समागतोऽस्मि। भवन्तश्च=यूयं च, एतादृशाः=ईदृशाः, धर्मज्ञाः=धर्मं जानन्तीति धर्मज्ञाः, यत्, अतिथिं=अभ्यागतम्, माम्=मार्जारं, हन्तुं=मारितुम्, उद्यताः=उद्युक्ताः सन्तीति शेषः।

गिद्ध बोला—कहो क्यों आये हो ? वह बोला—मैं यहाँ गङ्गाके किनारे नित्य स्नान करता हूँ, निरामिष (मांसरहित) भोजन करता हूँ तथा ब्रह्मचारी हूँ और चान्द्रायण व्रत करता हुआ यहाँ वास करता हूँ। आप 'धर्मज्ञानी तथा विश्वासके पात्र हैं' इस बातको सब पक्षी सदा मेरे सामने कहा करते हैं; इसलिये विद्या तथा अवस्थामें आप वृद्ध हैं, अतः आपसे धर्मकी बातें सुनने आया हूँ ! किन्तु आप ऐसे धर्मज्ञानी हैं कि मुझ अतिथिको मारने के लिए उद्यत हैं।

गृहस्थधर्मश्चैषः—

गृहेति—गृहे तिष्ठतीति गृहस्थस्तस्य धर्मो गृहस्थधर्मः=गृहस्थाश्रमाचारः, एषः=अयम्।

और गृहस्थोंका धर्म तो यह है कि—

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥५९॥

अन्वयः—गृहम् आगते अरौ अपि उचितम् आतिथ्यं कार्यम्। (यतः) द्रुमः छेत्तुः पार्श्वगतां छायां न उपसंहरते ॥ ५९ ॥

अरावपीति=गृहमागते=गृहं प्राप्ते, अरौ=शत्रौ, अपि, उचितं=योग्यम् आतिथ्यं=सत्कारम्, कार्यं=करणीयम्, (यतः), द्रुमः=वृक्षः, छेत्तुः=भेत्तुः, पार्श्वगतां=समीपागताम्, छायां=अनातपम्, नोपसंहरते=न संकोचयति ॥

अपने घर पर शत्रु भी आये तो उसका उचित सत्कार करना चाहिये। जैसे वृक्ष अपने काटनेवालेके समीप गयी छायाको समेट नहीं लेता है। अर्थात् धूपसे सन्तप्त अपने शत्रुका भी सन्ताप हरण करता है ॥ ५९ ॥

यदि वा धनं नास्ति तदा प्रीतिवचसाऽपि अतिथिः पूज्य एव।

यदि वेति—यदि वा=अथवा, धनं=द्रविणम्, नास्ति=न विद्यते, तदा प्रीतिवचसा=मधुरेण वाक्येन, अतिथिः=अभ्यागतः, पूज्य एव=सत्करणीय एव।

यदि घर में धनादि न हो तो मीठे-मीठे वचनों से भी अतिथिका सत्कार करना चाहिए।

यतः—तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। ६०॥

अन्वयः—तृणानि भूमिः उदकं चतुर्थी च सूनृता वाक्, एतानि अपि सतां गेहे कदाचन न उच्छिद्यन्ते ॥६०॥

तृणानीति—तृणानि,=तृणसमूहनिर्मितानि आसनानि, भूमिः=स्थानम् उदकं=जलम्, चतुर्थी सूनृता, वाक्=प्रियवाणी, एतानि=पूर्वोक्तानि, सतां=सज्जनानाम्, गेहे=गृहे, कदाचन=कदापि, न उच्छिद्यन्ते=न नश्यन्ति ॥६०॥

क्योंकि—तृणमय आसन, बैठनेका स्थान, जल और चौथी मधुर और सत्य वाणी इनका सज्जनोंके घर में कभी नाश नहीं होता, अतः इनके द्वारा भी अतिथि-सत्कार सज्जनको करना चाहिये ॥६१॥

अपरञ्च—निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ॥६१॥

अन्वयः—साधवः निर्गुणेषु अपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति। हि चन्द्रः चाण्डालवेश्मनः ज्योत्स्नां न संहरते ॥६१॥

निर्गुणेष्विति—साधवः=सज्जनाः, निर्गुणेष्वपि=गुणहीनेष्वपि, सत्त्वेषु=प्राणिषु, दयां=कृपां कुर्वन्ति। हि=यतः, चन्द्रः=इन्दुः, चाण्डालवेश्मनः=चाण्डालस्य गृहात् ज्योत्स्नां=कौमुदीं, न संहरते=न संकोचयति ॥६१॥

और भी—सज्जन पुरुष गुणहीन प्राणियोंपर भी दया करते हैं, जैसे चन्द्रमा चाण्डालके घरपर पड़ी अपनी किरण (चाँदनी) नहीं हटा लेता है अभिप्राय यह है कि महान् पुरुषोंकी दया गुणकी अपेक्षा नहीं करती किन्तु उसे प्राणिमात्रकी अपेक्षा रहती है। आप महान हैं; मैं एक क्षुद्र प्राणी हूँ। इसलिये मुझपर आपको दया ही करनी चाहिये ॥ ६१ ॥

अन्यच्च—अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥६२॥

अन्वयः—यस्य गृहात् अतिथिः भग्नाशः प्रतिनिवर्तते, स तस्मै (आत्मनः) दुष्कृतं दत्त्वा (स्वयं स तस्य) पुण्यम् आदाय गच्छति ॥६२॥

अतिथिरिति—यस्य=पुरुषस्य, गृहात्=वेश्मनः अतिथिः=अभ्यागतः,

भग्नाशः=भग्ना-नष्टा आशा यस्य सः, निराशः प्रतिनिवर्तते=प्रतिगच्छति,

सः=अतिथिः, तस्मै=गृहस्वामिने, दुष्कृतं=स्वपापम्, दत्त्वा=प्रदाय, पुण्यं =तस्य गृहस्थस्य धर्मम्, आदाय=प्रगृह्य, गच्छति=याति ॥६२॥

और भी—जिस गृहस्थके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है वह अतिथि उस गृहस्थको अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

अन्यच्च—उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥६३॥

अन्वयः—उत्तमस्य अपि वर्णस्य गृहम् आगतः नीचः अपि यथायोग्यं पूजनीयः (यतः) अतिथिः सर्वदेवमयः (भवति) ॥ ६३ ॥

उत्तमेति—उत्तमस्यापि=श्रेष्ठस्यापि, वर्णस्य=जातेः, गृहम्=भवनं आगतः=प्राप्तः, नीचोऽपि=वर्णतः हीनोऽपि, यथायोग्यं=योग्यतानुरूपम्, पूजनीयः=अर्चनीयः, (यतः) अतिथिः=अभ्यागतः, सर्वदेवमयः=सर्वदेव-स्वरूपो भवतीति भावः ॥६३॥

और भी—उत्तम वर्णके घर यदि नीच जातिका भी अतिथि आवे तो उसका उचित सत्कार करना चाहिए, क्योंकि अतिथि सब देवोंका स्वरूप होता है। अभिप्राय यह है कि देवताओं की सेवा से जो फल प्राप्त होता है वह अतिथिकी सेवासे प्राप्त होता है, अतः अतिथि-सत्कारमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ॥६३॥

गृध्रोऽवदत्—मार्जारो हि मांसरुचिः। पक्षिशावकाश्चात्र निवसन्ति, तेनाऽहमेवं ब्रवीमि। तच्छ्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति, ब्रूते च मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम्। परस्परं विवदमानानामपि धर्मशास्त्राणाम् 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यत्रैकमत्यम्।

गृध्र इति—गृध्रः=दाक्षाय्यः, अवदत्=अवोचत्, मार्जारः=बिडालः, हि =इति वाक्यालङ्कारे निश्चये वा, मांसरुचिः=मांसे आमिषे रुचिः अभिलाषा यस्य सः, भवति इति शेषः। पक्षिशावकाश्च=पक्षिणां=खगानां शावकाः=शिशवः, अत्र=अस्मिंस्तरौ, निवसन्ति=वासं कुर्वन्ति, तेन=कारणेन, अहम्=गृध्रः, एवं =पूर्वोक्तप्रकारेण, ब्रवीमि=कथयामि। त्वामत्रागमनान्निवारयामीत्याशयः। तच्छ्रुत्वा=तदाकर्ण्य, मार्जारः=बिडालः, भूमिं=पृथ्वीं, स्पृष्ट्वा=संस्पृश्य, कर्णौ=श्रुती, स्पृशति, शपथं करोति इत्याशयः। ब्रूते च=कथयति च, मया=

मार्जारेण, धर्मशास्त्रं = धर्मप्रतिपादकं शास्त्रं, श्रुत्वा वीतरागेण = उत्पन्नवैराग्येण, इदम् = एतत्, दुष्करं = दीर्घायाससाध्यम्, व्रतम्, चान्द्रायणम् = तन्नामकव्रतम्, अध्यवसितम् = अनुष्ठितम् । परस्परं = मिथः, विवदमानानां = कलहायमानानाम्, विभिन्नसिद्धान्तानाम् अपि, धर्मशास्त्राणाम् = धर्मग्रन्थानाम् 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यत्र ऐकमत्यम् = एका सम्मतिरिति यावत् ।

गिद्ध बोला—बिलावकी मांसमें विशेष रुचि होती है और यहाँ पक्षियोंके बच्चे वास करते हैं । इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ । यह सुनकर बिलावने जमीन छूकर कान पकड़ा और बोला—मैंने धर्मशास्त्रको सुनकर निःस्पृह हो यह दुःसाध्य चान्द्रायण व्रत किया है (**चान्द्रायणव्रत यह** एक ऐसा व्रत है जिसमें कृष्णपक्षमें प्रतिदिन भोजनका एक-एक **ग्रास घटाकर** एवं शुक्ल पक्षमें एक-एक ग्रास प्रतिदिन बढ़ाकर भोजन किया जाता है) । आपसमें धर्मशास्त्रका मतभेद होने पर भी "हिंसा न करना परम धर्म है" इसमें सभीका एकमत है ।

यतः—सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये ।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥६८॥

अन्वयः—ये सर्वहिंसानिवृत्ताः ये च सर्वसहाः, सर्वस्य आश्रयभूताः च (भवन्ति) ते नराः स्वर्गगामिनः (भवन्ति) ॥६४॥

सर्वेति—ये नराः = मनुष्याः, सर्वहिंसानिवृत्ताः = सर्वेषां हिंसा सर्वहिंसा, तस्या निवृत्ताः = रहिताः, ये च नराः सर्वसहाः = सर्वं सुखदुःखादिकं सहन्ते इति सर्वसहाः सर्वसहिष्णवः (तथा), ये सर्वस्य = प्राणिमात्रस्य आश्रयभूताः = शरणागतपालकाश्च भवन्ति, ते नराः स्वर्गगामिनः = स्वर्गं गन्तुं शीलं येषां ते, भवन्तीति शेषः ॥६४॥

क्योंकि—जो मनुष्य सभी प्रकारकी हिंसासे विरत हैं, जो सब प्रकारके सुखदुःख तथा मान-अपमानको धैर्यपूर्वक सहन करते हैं और जो सभी प्राणियों को आश्रय देते हैं वे मनुष्य स्वर्गको जाते हैं ॥६४॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥ ६५ ॥

अन्वयः—एकः धर्मः एव सुहृत् यः निधने अपि अनुयाति अन्यत् सर्वं तु शरीरेण समं नाशं गच्छति ॥६५॥

एक इति—एकः = एककः, धर्म एव = पुण्यकर्मैव, सुहृत् = मित्रम्, यः = धर्मः, निधनेऽपि मृत्यौ अपि, अनुयाति=अनुगच्छति । अन्यत्=इतरत् सर्वं

तु = सकलं तु, शरीरेण = कायेन, समं = सह, नाशं = विनाशम्, गच्छति = याति ।

एक धर्म ही मित्र है जो मृत्युके बाद भी मनुष्यका साथ देता है और सब तो शरीरके साथ ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

मर्तव्यमिति यद् दुःखं पुरुषस्योपजायते ।
शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम् ॥६६॥

अन्वयः—(मया) मर्तव्यम् इति (चिन्तया) पुरुषस्य यत् दुःखम् उपजायते तत् परेण अनुमानेन परिवर्णितु न शक्यते ॥ ६७ ॥

मर्तव्यमिति—मर्तव्यम्–मरणीयम्, मयेति शेषः इति = इति विचार्यं श्रुत्वा वा यद्दुःखं = कष्टम्, पुरुषस्य, = जनस्य, प्राणिमात्रस्येत्यर्थः, उपजायते = भवति, तत् परेण = पुंसा, अनुमानेन = अनुमित्या, परिवर्णितुम् = वचनेनांकितुम् न शक्यते ॥ ६६ ॥

"मुझे अवश्य मरना होगा" यह विचारकर या सुनकर जो कष्ट पुरुषको होता है, उस कष्ट का दूसरा अनुमानके द्वारा वर्णन नहीं कर सकता है ॥६६॥

योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥ ६७ ॥

अन्वयः—यः यस्य यदा मांसम् अत्ति उभयोः अन्तरम् पश्यत, एकस्य (तु) क्षणिका प्रीतिः (भवति) अन्यः (च) प्राणैः विमुच्यते ॥६७॥

य इति—यः = पुरुषः, यस्य = जीवस्य, यदा = यस्मिन् काले, मांसं = पललम्, अत्ति = भक्षयति, उभयोः = भक्ष्यभक्षकयोः, अन्तरं = भेदं, पश्यत = अवलोकयत यूयमिति शेषः । एकस्य = खादकस्य, क्षणिका = क्षणमात्रं, प्रीतिः = सन्तोषः, अन्यः = भक्ष्यः, प्राणैः = जीवनैः, विमुच्यते = वियुक्तो भवति ॥ ६७ ॥

जो प्राणी जिस समय जिस प्राणीका मांस खाता है उन दोनोंका अन्तर तो देखो । खानेवाले को तो एक क्षणके लिये प्रसन्नता होती है और दूसरा (जिसका मांस खाया जाता है) जीवनसे अलग हो जाता है ॥ ६७ ॥

शृणु पुनः—स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनाऽपि प्रपूर्यते ।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्यात् पातकं महत् ? ॥६८॥

अन्वयः—स्वच्छन्दवनजातेन शाकेन अपि (उदरम्) प्रपूर्यते, (अस्यां स्थितौ) अस्य दग्धोदरस्य अर्थे कः (बुद्धिमान्) महत् पातकं कुर्यात् ॥ ६८ ॥

स्वच्छन्देति—स्वच्छन्दवनजातेन = स्वच्छन्देन-स्वेच्छयैव वने जातः तेन, विना अन्यायासेन कर्षणादि विना जातेनेत्यर्थः, शाकेन अपि प्रपूर्य्यते जनैः यदुदरमिति शेषः, अस्य, दग्धोदरस्यार्थे = दग्धं च तदुदरं च इति दग्धोदरं, तस्य अर्थे, महत् = दारुणम्, पातकं = दुष्कर्म, कः, कुर्यात् = न कोऽपीति भावः ।

फिर सुनो—जो स्वयं उत्पन्न होनेवाले साग-भाजी आदि से भरी जा सकती है, उस पेटरूप जलती हुई भट्टीके लिये भयंकर पाप कौन करे ।। ६८ ।।

एवं विश्वास्य स मार्जारस्तरुकोटरे स्थितः ।

एवमिति–एवं = अनेन प्रकारेण, विश्वास्य = जरद्गवं सन्तोष्य, सः=प्रसिद्धः, मार्जारः = बिडालः दीर्घकर्णः, तरुकोटरे = वृक्षनिष्कुहे, स्थितः = निवसतिस्म ।

इस प्रकार विश्वास जनाकर वह बिलाव वृक्षके खोडरमें वास करने लगा ।

ततो दिनेषु गच्छत्सु असौ पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति । येषामपत्यानि खादितानि तैः शोकार्त्तैः विलपद्भिरितस्ततो जिज्ञासा समारब्धा । तत्परिज्ञाय मार्जारः कोटरान्निःसृत्य बहिः पलायितः । पश्चात्पक्षिभिरितस्ततो निरुपयद्भिस्तत्र तरुकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि । अनन्तरं त ऊचुः--"अनेनैव जरद्गवेनास्माकं शावकाः खादिताः" इति सर्वैः पक्षिभिर्निश्चित्य गृध्रो व्यापादितः । अतोऽहं ब्रवीमि---"अज्ञातकुलशीलस्य" इत्यादि । इत्याकर्ण्य स जम्बुकः सकोपमाह—मृगस्य प्रथमदर्शनदिने भवानपि अज्ञातकुलशील एव, तत्कथं भवता सहैतस्य स्नेहानुवृत्तिरुत्तरोत्तरं वर्धते ?

ततः = तदनन्तरम्, दिनेषु = दिवसेषु, गच्छत्सु = व्यतीतेषु, असौ = दीर्घकर्णः, पक्षिशावकान् = पक्षिपोतान्, आक्रम्य = तेष्वाक्रमणं कृत्वा, कोटरं = निष्कुहम्, आनीय = प्रापय्य, प्रत्यहं = प्रतिदिनं, खादति = भक्षयति । येषां = पक्षिणाम्, अपत्यानि = सन्तानानि, खादितानि = भक्षितानि, तैः शोकार्त्ताः = शोकेन पीडया आर्ताः—दुःखिताः तैः, विलपद्भिः = विलापं कुर्वद्भिः, तैः = पक्षिभिः—इतस्ततः = यत्र तत्र, जिज्ञासा = ज्ञातुमिच्छा–अन्वेषणमिति यावत् । समारब्धा = सम्यक् प्रकारेणारभ्यत । तत् = शावकान्वेषणम्, परिज्ञाय = ज्ञात्वा, मार्जारः = दीर्घकर्णनामा, कोटरात् = निष्कुहात्, निःसृत्य = निर्गत्य, बहिः पलायितः = बहिर्ययौ । पश्चात् = तत्पलायनोत्तरम्, पक्षिभिः = विहगैः, इतस्ततः = यत्र तत्र (स्थाने) निरूपयद्भिः = शिशूनन्वेषयद्भिः, तत्र = तस्मिन्, तरुकोटरे = वृक्षगह्वरे

शावकास्थीनि = अर्भककीकसानि, प्राप्तानि—समासादितानि । अनन्तरं = पश्चात् खे = पक्षिणः, ऊचुः = जगदुः, अनेनैव = अमुना एव जरद्गवेन = गृध्रेण, अस्माकम् = पक्षिणाम्, शावकाः = पोताः, खादिताः = भक्षिताः, इति = इत्थम्, सर्वैः = समस्तैः, पक्षिभिः = खगैः, निश्चित्य = स्थिरीकृत्य, गृध्रो व्यापादितः = मारितः । अतः = अस्मात् कारणात्, अहम् = सुबुद्धिनामा काकः, ब्रवीमि = कथयामि, अज्ञातकुलशीलस्य इत्यादि । इति = एतत्, आकर्ण्य = श्रुत्वा स जम्बुकः = क्षुद्रबुद्धिनामा शृगालः, सकोपम् = कोपेन सह सकोपम् = सक्रोधम्, आह = जगाद, मृगस्य = चित्राङ्गस्य, प्रथमदर्शनदिने = प्रथमं च तद् दर्शनञ्च इति तस्य दिनं, तस्मिन् = आद्यावलोकनदिवसे, भवानपि = काकोऽपि, अज्ञातकुलशील एव = अविदितकुलाचार एव, तत् = तस्मात्, कथं = केन प्रकारेण, भवता सह = त्वया साकम्, एतस्य = चित्राङ्गस्य, स्नेहानुवृत्तिः = प्रेमप्रवाहः, उत्तरोत्तरं = दिनानुदिनम्, वर्द्धते = एधते ।

कुछ दिन बीतने पर वह (दीर्घकर्ण नामक बिलाव) पक्षियोंके बच्चोंको मारकर खोडरमें लाकर प्रतिदिन खाने लगा । जिन पक्षियोंके बच्चे खाये गये थे वे शोकसे दुःखी हो विलाप करते हुए इधर-उधर खोज करने लगे । यह जानकर वह बिलाव खोडरसे निकलकर बाहर भाग गया । बाद इधर-उधर ढूँढते हुए पक्षियोंने उस पेड़के खोडर में बच्चोंकी हड्डियाँ प्राप्त कीं । फिर वे बोले इसी (जरद्गव गिद्ध) ने हमारे बच्चों को खाया है । इस प्रकार सब पक्षियों ने निश्चयकर उस गीधको मार डाला । इसलिए मैं कहता हूँ— 'अज्ञातकुल' आदि । इस प्रकार कौवेके वचनको सुनकर उस क्षुद्रबुद्धि नामक सियारने क्रोधमें आकर कहा—मृगसे पहले मिलनेके दिन आप भी तो अपरचित ही थे, फिर कैसे आपके साथ इसकी मित्रता क्रमिक आगे-आगे बढ़ती गयी है ।

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि ।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोपि द्रुमायते ॥ ६९ ॥

अन्वयः—यत्र विद्वज्जनः न अस्ति तत्र अल्पधीः अपि (जनः) श्लाघ्यः (भवति) यतः एरण्डः अपि निरस्तपादपे देशे द्रुमायते ॥ ६९ ॥

यत्रेति—यत्र = यस्मिन् स्थाने, विद्वज्जनः = विद्वांश्चासौ जनश्चेति, पण्डितपुरुषः, नास्ति = न तिष्ठति, तत्र = तस्मिन्देशे, अल्पधीः = मूर्खोऽपि, श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः । (यतः हि) निरस्तपादपे = वृक्षरहिते देशे = प्रान्ते एरण्डोऽपि =

उरुबूकोऽपि 'एरण्ड उरुबूकश्च' इत्यमरः। द्रुमायते=द्रुम इवाचरति इति वृक्षायते, इत्यर्थः।

जिस प्रदेशमें विद्वान् पुरुष नहीं हैं वहाँ थोड़े पढ़े-लिखेकी भी प्रशंसा होती है, जैसे—जिस देशमें वृक्ष नहीं होते वहाँ रेड़का पेड़ भी वृक्षोंमें गिना जाता है ॥६९॥

अन्यच्च—अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥७०॥

अन्वयः—अयं निजः परः वा इति गणना लघुचेतसां (भवति), उदारचरितानां तु वसुधा एव कुटुम्बकम् (अस्ति) ॥७०॥

अयमिति—अयम्=एषः, पुरुषविशेषः, निजः=स्वकीयः, परः=अन्यःवा इति एषा, लघुचेतसां=तुच्छहृदयानाम्, गणना=धारणा, उदारचरितानां तु=उदारं चरितं येषां तेषां महाशयानां तु, वसुधा=पृथ्वी एव, कुटुम्बकम्=बन्धुः।

और भी—'यह अपना है, यह पराया है' इस प्रकारकी धारणा (विचार) तुच्छ हृदयवालोंकी होती है, किन्तु महान् हृदयवालोंका तो पृथ्वीमण्डल ही अपना बन्धु है ॥७०॥

यथाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि। मृगोऽब्रवीत्—किमनेनोत्तरोत्तरेण? सर्वैरेकत्र विश्रम्भालापैः सुखमनुभवद्भिः स्थीयताम्।

यथेति—यथा=येन प्रकारेण, अयं=चित्राङ्गः, मृगः=हरिणः मम=क्षुद्रबुद्धिशृगालस्य, बन्धुः=सुहृत्, तथा=तेन प्रकारेण, भवान्=काकोऽपि बन्धुरस्तीत्यर्थः। मृगोऽब्रवीत्=हरिणोऽब्रोचत्, अनेन, उत्तरोत्तरेण=वृथाऽऽलापेन, किम्=को लाभः? सर्वैः=समस्तैः एकत्र=एकस्मिन् स्थाने, विश्रम्भालापैः=विश्वस्तैर्भाषणैः, सुखम्=शर्म, अनुभवद्भिः, स्थीयताम्=स्थातव्यम्।

जैसा यह मृग मेरा मित्र है वैसे तुम हो। मृग बोला—इस वाद-विवाद से क्या प्रयोजन है? सब एक स्थान में विश्वासपूर्वक सुखसे रहो।

यतः—न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ॥७१॥

अन्वयः—(स्वभावात्) कश्चित् कस्यचित् मित्रं न (जायते) (तथा स्वभावात्) कश्चित् कस्यचित् रिपुः न (जायते)। किन्तु मित्राणि तथा रिपवः व्यवहारेण जायन्ते ॥७१॥

नेति—कश्चित् = जनः, कस्यचित् = पुरुषविशेषस्य, मित्रं = सुहृत्, न=न जायते, कश्चित् = पुरुषः, कस्यचित् = कस्यचन जनस्य, रिपुः=शत्रुः, न=नस्तीत्यर्थः। मित्राणि=सुहृदः, तथा रिपवः = शत्रवः, व्यवहारेण = कार्यकलापेन, जायन्ते=भवन्ति ॥७१॥

क्योंकि—न कोई किसीका मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है। किन्तु व्यवहार से ही शत्रु या मित्र बनते हैं ॥ ७१ ॥

काकेनोक्तम्—एवमस्तु। प्रातः सर्वे यथाभिमतदेशं गताः।

काकेन=वायसेन, उक्तम् = निगदितम्, एवम्=इत्थम्, अस्तु = भवतु, अथ = अनन्तरम्, प्रातः=प्रभाते, सर्वे = मृग-काकजम्बुकाः, यथाभिमतदेशं= यथाभिप्रेतदेशम्, गताः=गतवन्तः।

कौवे ने कहा—ठीक है। फिर प्रातःकाल सभी अपने-अपने अभीष्ट स्थानको गये।

एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते—मित्र सखे! अस्मिन्वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति, तदहं त्वां नीत्वा दर्शयामि। तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति। अथ क्षेत्रपतिना तद् दृष्ट्वा पाशो योजितः। अनन्तरं पुनरागतो मृगः पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत्—"को मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात्त्रातुं मित्रादन्यः समर्थः?" अत्रान्तरे जम्बुकस्तत्रागत्योपस्थितोऽचिन्तयत्—'फलिता तावदस्माकं कपटप्रबन्धेन मनोरथसिद्धिः। एतस्योत्कृत्यमानस्य मांसासृग्लिप्तानि अस्थीनि मयाऽवश्यं प्राप्तव्यानि। तानि बाहुल्येन भोजनानि भविष्यन्ति'। मृगस्तं दृष्ट्वोल्लासितो ब्रूते—'सखे! छिन्धि तावन्मम बन्धनम् सत्वरं त्रायस्व माम्।'

एकदेति—एकदा = एकस्मिन्नहनि, निभृतं=एकान्ते, शृगालः = जम्बुकः, ब्रूते=ब्रवीति, सखे=सुहृत्! अस्मिन् वनैकदेशे=अत्र वनस्य एकभागे, सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति=सस्येन धान्येन, पूर्णं-व्याप्तं क्षेत्रं=केदारः 'केदारः क्षेत्रम्' इत्यमरः, अस्ति=वर्तते। तत्=उक्तक्षेत्रम्, अहं = जम्बुकः, त्वां = चित्राङ्गम्, नीत्वा = प्रापय्य, दर्शयामि = अवलोकयामि! तथा कृते सति = जम्बुकवचनानुसारेण क्षेत्रे दृष्टे सति, मृगः=चित्राङ्गः, प्रत्यहं = अहनि अहनि, इति प्रत्यहम्=प्रतिदिवसं तत्र = क्षेत्रे, गत्वा=उपगम्य, सस्यं = धान्यम्, खादति = अत्ति। अथ=अनन्तरम्, क्षेत्रपतिना = भूमिस्वामिना, कृषकेण, तद् = मृगागमनम्, सस्यहानिम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, पाशः=जालम्, योजितः = नियोजितः। अनन्तरम्=पश्चात्

पुनः = मुहुः, आगतः = प्राप्तः, मृगः=चित्राङ्गः, पाशैः = जालैः, बद्धः = नियन्त्रितः सन् अचिन्तयत् = अशोचत्, इतः = अस्मात्, कालपाशात् = कालस्य कृतान्तस्य पाशः बन्धनम्, तस्मादिव, व्याधपाशात् = लुब्धकबन्धनात्, मां = चित्रांगं, त्रातुं = रक्षितुम्, मित्रात् = सुहृदः, अन्यः = अपरः, कः समर्थः = कः शक्तः न कोऽपीत्यर्थः। अत्रान्तरे = अस्मिन्समये, जम्बुकः = क्षुद्रबुद्धिनामा शृगालः, तत्र = तस्मिन्देशे, आगत्य = एत्य, उपस्थितः = वर्तमानः सन्, अचिन्तयत् = विचारयामास, तावदिति वाक्यालङ्कारे। अस्माकं = क्षुद्रबुद्धीनाम्, कपटप्रबन्धेन = कपटस्य–छलस्य प्रबन्धः–व्यवस्था, तेन–माययेत्यर्थः, मनोरथसिद्धिः = अभिलाषपूर्तिः, फलिता = सफला जाता। उत्कृत्यमानस्य = छिद्यमानस्य, एतस्य = मृगस्य, मांसासृग्लिप्तानि = मांसं च असृक् च इति मांसासृजौ ताभ्यां लिप्तानि मांसरुधिरपृक्तानि, अस्थीनि = कुल्यानि 'कीकसं कुल्यमस्थि च'' इत्यमरः, मया=जम्बुकेन, अवश्यं=नूनम्, प्राप्तव्यानि = आसादितव्यानि। यानि = अस्थीनि, बाहुल्येन = पर्याप्तमात्रेन, भोजनानि=खाद्यानि, भविष्यन्तीति। मृगः=पाशबद्धश्चित्रांगः, तं = जम्बुकम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, उल्लासितः = आह्लादेन प्रफुल्लितः, ब्रूते = वदति, सखे=मित्र ! तावत्=मन्मृत्योः पूर्वम्, मम = चित्राङ्गस्य, बन्धनम् = पाशम्, छिन्धि = भेदनं कुरु। सत्वरं = शीघ्रम्, माम् = पाशाद्बद्धं मृगम्, त्रायस्व = रक्षां कुरु।

एक दिन एकान्तमें शृगालने कहा—मित्र चित्राङ्ग, इस वनके एक भाग में धान्यसे भरा हुआ खेत है, मैं तुम्हें ले जाकर वह दिखाता हूँ। वैसा करने पर मृग प्रतिदिन वहाँ जाकर धान्य खाने लगा। इस प्रकार कुछ दिन बीतनेपर खेत वाले (मालिक) ने हरिणको खेत में चरता हुआ देखकर खेतमें फंदा लगा दिया। इसके अनन्तर जब वहाँ दूसरे दिन मृग, और दिनकी तरह चरनेके लिए आया तो जालमें फँसकर सोचने लगा—"मुझे इस यमफाँसकी तरह व्याधफाँससे मित्रके सिवाय दूसरा कौन छुड़ा सकता है।" इसी समय सियार वहाँ आकर उपस्थित हुआ और सोचने लगा कि मेरे कपटकी चालसे मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ। इसके चर्म जब उधेड़े जाएँगे तब मांस और रक्तसे सनी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य मिलेंगी। वे मेरे पर्याप्त भोजनके लिये होंगी। मृग उसको देखकर प्रसन्न होकर बोला—मित्र, मेरे इन बन्धनोंको शीघ्र काटो और मुझे बचाओ।

यतः—आपत्सु मित्रं जानीयात् युद्धे शूरमृणे शुचिम् ।
भार्या क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ॥ ७२ ॥

अन्वयः—आपत्सु मित्रं जानीयात्, युद्धे शूरं जानीयात्, ऋणे शुचिं जानीयात्, वित्तेषु क्षीणेषु (सत्सु) भार्या जानीयात्, व्यसनेषु च बान्धवान् जानीयात् ॥ ७२ ॥

आपदिति—आपत्सु = विपत्सु, मित्रं जानीयात् = परीक्षेत, युद्धे = संग्रामे, शूरं = भटम् परीक्षेत, ऋणे = पर्युदञ्चने, 'स्यादृणं पर्युदञ्चनम्' इत्यमरः । शुद्धि = पवित्रताम् परीक्षेत, वित्तेषु = धनेषु, क्षीणेषु = अपगतेषु, भार्या = स्त्रियम्, परीक्षेत, व्यसनेषुचेतः=पीडासु, 'बन्धकं व्यसनं चेतःपीडाधिष्ठानमाधयः' इत्यमरः । बान्धवान् = भ्रात्रादीन्, परीक्षेत ॥ ७२ ॥

क्योंकि—आपत्ति कालमें मित्र, युद्धमें शूर, ऋणके लेन-देनमें सच्चा व्यवहार करनेवाला, धन नष्ट होनेपर स्त्री और दुःख पड़नेपर अपने भाई-बन्धु परखे जाते हैं ॥ ७२ ॥

अपरञ्च—उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ ७३ ॥

अन्वयः—उत्सवे व्यसने च एवं दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे राजद्वारे श्मशाने च यः तिष्ठति स बान्धवः (अस्ति) ॥ ७३ ॥

उत्सव इति—उत्सवे = आनन्दकाले, पुत्रजन्मादौ, व्यसने = विपत्तौ च दुर्भिक्षे = अन्नसङ्कटे, राष्ट्रविप्लवे = राजपरिवर्तने, राजद्वारे = नृपद्वारे, = श्मशाने पितृवने च यः = पुरुषः तिष्ठति, उपस्थितो भवति, सः बान्धवः = मित्रम् अस्तीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

और भी—पुत्रजन्मादि आनन्द के समय में, विपत्ति आनेपर, अन्नसंकट (अकाल) के समय, राजपरिवर्तनके समय, राजद्वारमें, श्मशानमें जो साथ रहे वही मित्र है ॥ ७३ ॥

जम्बुको मुहुर्मुहुः पाशं विलोक्याचिन्तयत्—'दृढस्तावदयं बन्धः ।' ब्रूते च–सखे ! स्नायुनिर्मिता एते पाशाः, तदद्य भट्टारकवारे कथमेतान् दन्तैः स्पृशामि ? मित्र ! यदि चित्ते नान्यथा मन्यसे तदा प्रभाते यत्त्वया वक्तव्यं तत्कर्त्तव्यम् । इत्युक्त्वा तत्समीप आत्मानमाच्छाद्य स्थितः सः । अनन्तरं स काकः प्रदोषसमये मृगमनागतमवलोक्येतस्ततोऽन्विष्य

तथाविधं दृष्ट्वोवाच—सखे ! किमेतत् ? मृगेणोक्तम्—अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत्' ।

जम्बुक इति—जम्बुकः=क्षुद्रबुद्धिनामा शृगालः, मुहुर्मुहुः = वारं वारम् पाशं=जालम्, विलोक्य=दृष्ट्वा, अचिन्तयत्=विचारयामास, तावदिति वाक्यालङ्कारे, अयम् = एषः, बन्धः = बन्धनम्, दृढः=अभेद्यः अस्ति । ब्रूते, च =प्रकाशं ब्रवीति च, सखे=मित्र ! स्नायुनिर्मिताः=चर्मरचिताः, एते= इमे, पाशाः=बन्धनानि सन्ति । तत् = तस्मात्, अद्य = अस्मिन्नहनि, भट्टारकवारे=सूर्य्यवासरे, कथं=केन प्रकारेण, एतान्=पाशान्, दन्तैः=दशनैः स्पृशामि=स्पृष्ट्वा ते पाशच्छेदनं करोमि । मित्र=सखे ! यदि=चेत् । चित्ते= मनसि, अन्यथा=प्रतिकूलम्, न मन्यसे=नो विचारयसि, तदा प्रभाते= प्रत्यूषे, यत् त्वया=चित्राङ्गेण, वक्तव्यम्=यत्वं कथयिष्यसीत्यर्थः तत्–मया= जम्बुकेन कर्तव्यम्=कार्यम् । इति=एवम् उक्त्वा=अभिधाय, तत्समीपे= तन्निकटे आत्मानं=स्वशरीरम् आच्छाद्य = लतागुल्मेनावृत्य । सः=जम्बुकः स्थितः=तस्थौ, अनन्तरं=पश्चात् सः काकः=सुबुद्धिनामा वायसः प्रदोषकाले =निशामुखे, सन्ध्यासमय इति यावत्, मृगं = चित्राङ्गम्, अनागतम्=अनासम् अवलोक्य=दृष्ट्वा, इतस्ततः=यत्र तत्र अन्विष्य=अन्वेषणं कृत्वा, तथाविधं=पाशेन बद्धम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, सखे=मित्र ! किमेतत्=एतत् पाशैः बन्धनं किन्निमित्तम् ? मृगेण=चित्राङ्गेन, उक्तम्=कथितम्, अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य=अवधीरितं तिरस्कृतं यत् सुहृद्वाक्यं=मित्रोक्तं तस्य, फलमेतत् = एतत् पाशबन्धरूप फलम् ।

शृगाल जालको बार-बार देखकर सोचने लगा यह बन्धन बड़ा मजबूत है और बोला—मित्र ये फन्दे ताँतके बने हैं । इसलिए आज रविवारके दिन कैसे इन्हें दाँतसे स्पश करूँ ? मित्र ! यदि अन्यथा (बुरा) न मानों तो सुबह होते ही जो कहोगे वह करूंगा । ऐसा कहकर चित्राङ्गके नजदीक ही अपने को छिपाकर बैठ गया । बाद वह सुबुद्धि नामक कौवा सायङ्काल मृग को न आया देख इधर-उधर खोजकर उस प्रकार बन्धन में फँसा हुआ देखकर बोला—मित्र ! यह क्या है (यहाँ जालमें फंसना किस कारण से हुआ) । मृगने कहा—मित्रके वाक्यको न माननेका यही फल है ।

सुहृदां हितकामानां भाषितं न शृणोति यः।
विपत् संनिहिता यस्य स नरः शत्रु नन्दनः ॥७४॥

अन्वयः—यः हितकामानां सुहृदां भाषितं न शृणोति तस्य विपत् सन्निहिता (भवति) (तथा) स नरः शत्रुनन्दनः (भवति) ॥७४॥

सुहृदिति—यः = पुरुषः, हितकामानां = हितम् इष्टं—कामयन्ते तेषां, हितेच्छुकानाम्, सुहृदां = मित्राणां, भाषितं = कथनम्, न शृणोति = नाकर्णयति, तस्य = पुरुषस्य, विपत् = आपत्तिः, सन्निहिता = समीपा भवति, सः नरः = पुरुषः, शत्रुनन्दनः = नन्दयतीति नन्दनः शत्रूणां नन्दन इति = रिपूणामानन्दकरो भवति ॥ ७४ ॥

कहा गया है—जो मनुष्य अपने हितकारी मित्रोंका वचन नहीं सुनते हैं उनके समीप ही विपत्ति रहती है और वे अपने शत्रुको प्रसन्न करनेवाले होते हैं। अभिप्राय यह है कि—अपने मित्रों की बात न माननेसे मनुष्य को कष्ट झेलना पड़ता है और उसे दुःखी देख उसके विरोधी प्रसन्न होते हैं ॥७४॥

काको ब्रूते—स वञ्चकः क्वास्ते ? मृगेणोक्तम्—मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव। काको ब्रूते—उक्तमेव मया पूर्वम्।

काक इति—काकः = वायसः ब्रूते = कथयति, स वञ्चकः = स धूर्तः, क्व = कुत्र, आस्ते = वर्तते। मृगेण = चित्रांगदेन, उक्तम् = कथितम्, मन्मांसार्थी = मम—मृगस्य, मांसमर्थयते इति मांसार्थी = मांसाभिलाषी, अत्रैव = अस्मिन्नेव स्थाने तिष्ठति = वर्तते। काकः = वायसः, ब्रूते = कथयति, मया = सुबुद्धिना पूर्वमेव = प्रथममेव, उक्तम् = कथितम्।

कौवा बोला—वह वञ्चक सियार कहाँ है ? मृगने कहा—मेरे मांसका लोभी वह यहीं है। कौवा बोला— मैंने पहले ही कहा था।

अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम्।
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥ ७५ ॥

अन्वयः—अपराधः मे न अस्ति इति एतत् विश्वासकारणं न अस्ति, हि नृशंसेभ्यः गुणवताम् अपि भयं विद्यते ॥७५॥

अपराध इति—मे = मम अपराधः = दोषः, न अस्ति = न विद्यते इति एतत् = इतीदम्, विश्वासकारणं = विश्वासस्य कारणं प्रत्ययस्य हेतुः, न = नास्ति, हि = यतः, नृशंसेभ्यः = क्रूरेभ्यः, गुणवतां = गुणिनाम् अपि, भयं = भीतिः, विद्यते = वर्तते ॥ ७५ ॥

मेरा कुछ भी अपराध नहीं है, इसका मैंने कुछ भी नहीं बिगाड़ा है—इसलिए यह भी मेरे साथ विश्वासघात न करेगा—यह विश्वास का कारण नहीं हो सकता; क्योंकि अविचारी क्रूर पुरुषसे गुणवानोंको भी भय रहता है ॥ ७५ ॥

दीपनिर्वाणगन्धञ्च　　सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् ।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः ॥ ७६ ॥

अन्वयः—गतायुषः दीपनिर्वाणगन्धं न जिघ्रन्ति, सुहृद्वाक्यं न शृण्वन्ति, अरुन्धतीं च न पश्यन्ति ॥ ७६ ॥

दीपनिर्वाणेति—गतायुः = गतम् आयुः येषान्ते आसन्नमृत्यवः प्राणिनः, दीपनिर्वाणगन्धं = दीपस्य निर्वाणं, तस्य गन्धं, दीपकान्तजातगन्धम्, न जिघ्रन्ति, = न नासिकेन्द्रियप्रत्यक्षं कुर्वन्ति, सुहृद्वाक्यं = मित्रोक्तम्, न शृण्वन्ति = न आकर्णयन्ति, अरुन्धतीम् = आकाशस्थमरुन्धतीनामकं नक्षत्रविशेषम् वसिष्ठपत्नीमिति यावत्, न पश्यन्ति = नावलोकयन्ति ॥ ७६ ॥

जिसकी मृत्यु समीप रहती है वह मनुष्य बुझते हुए दीपके गन्धको न सूंघता है न मित्रों की बात ही सुनता है और न अरुन्धती ताराको ही देखता है ॥ ७६ ॥

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः—परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनं तादृशं मित्रं पयोमुखं विषकुम्भम् इव वर्जयेत् ॥ ७७ ॥

परोक्ष इति—परोक्षे = अक्ष्णः परम्, इति परोक्षम्, तस्मिन् परोक्षे = अप्रत्यक्षे, कार्यहन्तारं = कार्यस्य हन्ता तं कार्यविनाशकं, प्रत्यक्षे = समक्षे, प्रियवादिनम् = मधुरभाषिणम्, पयोमुखं = दुग्धमुखं, विषकुम्भमिव = विषघटमिव, तादृशं = तथाविधं मित्रम्, वर्जयेत् = त्यजेत् ॥७७ ॥

परोक्षमें काम बिगाड़नेवाले और सामने प्रिय बोलनेवाले मित्रको मुखपर दूधवाले जहरसे भरे घड़ेके समान छोड़ देना चाहिए ॥७७॥

ततः काको दीर्घं निःश्वस्य 'अरे वञ्चक ! किं त्वया पापकर्मणा कृतम् ?'

तत इति—ततः = तदनन्तरम् काकः = सुबुद्धिनामा वायसः, दीर्घम् =

आयतं यथा स्यात्तथा, निःश्वस्य = श्वासं त्यक्त्वा, अरे वञ्चक = रे धूर्त ! पाप-
कर्मणा = पापात्मना, त्वया = भवता, किं कृतं = किमनुष्ठितम् ।

बाद कौवेने लम्बी साँस भरकर कहा—अरे धूर्त ! पापी, तुमने यह क्या किया ।

यतः—संलापितानां मधुरैर्वचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् ।
आशावतां श्रद्धतां च लोके किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ॥७८॥

अन्वयः—मधुरैः वचोभिः संलापितानां मिथ्योपचारैः वशीकृतानां च आशा-
वतां श्रद्दधताम् अर्थिनां च किं वञ्चयितव्यम् अस्ति ? ॥७८॥

संलापितानामिति—मधुरैः = प्रियैः, वचोभिः = वचनैः, संलापितानाम् = कृतभाषणानाम्, मिथ्योपचारैः = कपटव्यवहारैः, वशीकृतानाम् = अवशिनः वशिनः कृताः इति वशीकृतास्तेषां स्वायत्तीकृतानाम्, श्रद्धताम् = विश्वासः युक्तानाम्, आशावतां = मनोरथवताम्, अर्थिनां = याचकानाम्, लोके वञ्चयितव्यं = प्रतारणीयम्, किम् अस्ति, न किमपीत्यर्थः ॥७८॥

क्योंकि—संसार में प्रिय वचनों से बातचीत करनेवालों को, तथा कपटपूर्ण व्यवहारों से अपने वश में किये हुओं को, श्रद्धा एवं आशावानों और याचकों को ठगना कौन बड़ी बात है ? ॥७८॥

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम् ।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे ! कथं वहसि ? ॥७९॥

अन्वयः—यः उपकारिणि, विश्रब्धे, शुद्धमतौ, पापं, समाचरति, असत्य-
सन्धं तं जनम् (हे) भगवति वसुधे, ! कथं वहसि ? ॥ ७९ ॥

उपकारिणीति—यः = यो जनः, उपकारिणि = परोपकाररते, विश्रब्धे = विश्वस्ते, शुद्धमतौ = स्वच्छबुद्धौ, पापं = वृजिनम्, असद्व्यवहारमित्यर्थः । समाचरति = सम्यक्प्रकारेणानुतिष्ठति, असत्यसन्धम् = असत्या सन्धा सम्प्रत्ययः यस्य तं 'संधा प्रतिज्ञा मर्यादा श्रद्धा सम्प्रत्ययः स्पृहा' इत्यमरः । तं जनम्, हे भगवति वसुधे = हे देवि पृथिवि ! कथं = केन प्रकारेण, वहसि = धारयसि ।

हे देवि पृथिवि ! जो उपकारी, विश्वस्त और पवित्र हृदयवालेके ऊपर पापका आचरण करता है उस असत्यप्रतिज्ञ पुरुषको तुम कैसे ढोती हो ॥७९॥

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥८०॥

अन्वयः—दुर्जनेन समं प्रीतिं सख्यं चापि न कारयेत् । उष्णः अङ्गारः दहति, शीतः कर कृष्णायते ॥८०॥

दुर्जनेति—दुर्जनेति = दुष्टेन जनेन, समं = सह, सख्यं = मैत्रीम्, प्रीतिं च, न कारयेत् = न कुर्वीत । (यतः) उष्णः = प्रज्वलितः, अंगारः, करं = हस्तम्, दहति = ज्वालयति, शीतः = शीतलः सन्, करं = हस्तम्, कृष्णायते = कृष्णीकरोति ॥ ८० ॥

दुष्ट पुरुष के साथ मित्रता और प्रेम नहीं करना चाहिए, क्योंकि जला हुआ अङ्गार (चिनगारी) स्पर्श करनेवालेके हाथको जला देता है और बुझा हुआ (कोयला) स्पर्श करनेवालेके हाथको काला कर देता है ॥८०॥

अथवा स्थितिरियं दुर्जनानाम् ।

अथवेति—अथवा-पक्षान्तरे, दुर्जनानां = दुष्टपुरुषाणाम्, इयम् = एषा, स्थितिः = प्रकृतिः, अस्तीति शेषः ।

अथवा—दुर्जनोंका ऐसा स्वभाव होता है ।

> **प्राक्पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं**
> **कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।**
> **छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः**
> **सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥८१॥**

अन्वयः—प्राक् पादयोः पतति, पृष्ठमांसं खादति, कर्णे किमपि कलं विचित्रं शनैः रौति, छिद्रं निरूप्य, अशङ्कः सहसा प्रविशति, मशकः खलस्य सर्वं चरितं करोति ॥८१॥

प्रागिति—प्राक् = पूर्वम्, पादयोः चरणयोः, पतति पक्षे नीचैर्गच्छति, पृष्ठमांसं = पृष्ठस्य मांसं = पृष्ठमांसं, खादति = पृष्ठे दशति, परोक्षे निन्दां करोति । कर्णे = कर्णप्रदेशे, किमपि = अव्यक्तम्, कलं = मधुरम्, विचित्रं = नानाप्रकारम्, वक्तुमयोग्यमिति यावत् । शनैः = मन्दं मन्दम्, रौति = शब्दं करोति, पक्षे चाटुवचनं कथयति । छिद्रं = रन्ध्रम्, पक्षं=समयम्, निरूप्य = अवलोक्य, अशङ्कः = शङ्कारहितः, सहसा = द्राक्, प्रविशति = प्रवेशं करोति । मशकः = कीटविशेषः, खलस्य = दुर्जनस्य, सर्वं चरितम् = सर्वाचरणम्, करोति = विदधाति ॥८१॥

मच्छर दुष्ट पुरुष के समान सब आचरण करता है अर्थात् जैसे—दुष्ट पुरुष पहले पैरोंपर गिरता है वैसे ही यह भी पहले पैर पर गिरता है । जैसे—

से दुष्ट परोक्षमें निन्दादि द्वारा बुराई करता है वैसे ही यह भी पीठमें काटता है। जैसे दुष्ट कानमें मिथ्या प्रियवचन कहता है वैसे ही यह भी कान के पास धीरे-धीरे मधुर विचित्र (गुन-गुन) शब्द करता है। जैसे—दुष्टपुरुष किसी विशेष आपत्तिको देखकर निडर होकर बुराई करता है वैसे ही मच्छर भी किसी कान, नाक आदिके छिद्रको देखकर उसमें निःशङ्क होकर प्रवेश करता है ॥८१॥

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम्।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम् ॥ ८२ ॥

अन्वयः—दुर्जनः प्रियवादी च एतत् विश्वासकारणं न भवति, (यतः दुर्जनस्य) जिह्वाग्रे मधु तिष्ठति हृदि (च) हालाहलं विषं तिष्ठति ॥८२॥

दुर्जन इति—दुर्जनः = दुष्टः जनः, प्रियवादी = मधुरभाषी च, एतत् = इदम् विश्वासकारणं = विश्वासस्य कारणं = निदानं न, (यतः दुर्जनस्य) जिह्वाग्रे = जिह्वायाः रसनायाः अग्रे = पुरोभागे, मधु = अमृतम्, तिष्ठति हृदि = अन्तःकरणे हालाहलं = तीक्ष्णं विषम् तिष्ठतीति यावत् ॥८२॥

दुष्ट पुरुषका मधुरभाषी होना यह विश्वासका कारण नहीं है, क्योंकि दुर्जन पुरुषकी जिह्वाके अग्रभागमें अमृत रहता है और हृदयमें तीक्ष्ण विष भरा रहता है ॥८२॥

अथ प्रभाते क्षेत्रपतिर्लगुडहस्तस्तं प्रदेशमागच्छन् काकेनावलोकितः। तमालोक्य काकेनोक्तम् सखे मृग ! त्वमात्मानं मृतवत्संदर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ, अहं तव चक्षुषी चञ्च्वा विलिखामि। यदाहं शब्दं करोमि, तदा त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे। मृगस्तथैव काकवचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्ललोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः। 'आः ! स्वयं मृतोऽसि' इत्युक्त्वा मृगं बन्धनान्मोचयित्वा पाशान् गृहीतुं सयत्नो बभूव। ततः काकशब्दं श्रुत्वा मृगः सत्वरमुत्थाय पलायितः। तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो हतः।

अथेति—अथ = अनन्तरम्, प्रभाते = प्रातःकाले, क्षेत्रपतिः = क्षेत्रस्य भूमेः पतिः स्वामी, लगुडहस्तः = लगुडं बृहद्दण्डं हस्ते पाणौ यस्य सः, तं प्रदेशं = तत्स्थानम्, आगच्छन् = आव्रजन्, काकेन = वायसेन, अवलोकितः = दृष्टः। तं = क्षेत्रपतिम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, काकेन = वायसेन, उक्तं = कथितम्, सखे मृग = मित्र चित्राङ्ग ! त्वम् = भवान्, आत्मानं = स्वम्, मृतवत् = मृतमिव, सन्दर्श्य =

दर्शयित्वा, वातेन = वायुना, उदरं = कुक्षिम्, पूरयित्वा = प्रपूर्य, पादान् = चरणान्, स्तब्धीकृत्य = अस्तब्धान् स्तब्धान् कृत्वा इति स्तब्धीकृत्य = एकत्र स्थिरीकृत्य जडीकृत्येत्यर्थः। तिष्ठ = स्थितो भव। अहं, तत्र = भवतः, चक्षुषी = नेत्रे, चञ्च्वा = त्रोटचा, 'चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियौ' इत्यमरः विलिखामि = किमपि उत्किरामि, यदा = यस्मिन् काले, अहं शब्दं करोमि = उच्चैः ब्रवीमि, तदा = तस्मिन् काले, त्वम्, उत्थाय = उत्थितो भूत्वा, सत्वरं = शीघ्रम्, पलायिष्यसे = पलायनं करिष्यसि। मृगः तथैव = तथाविधं एवं, काकवचनेन = वायसवचनानुसारेण, स्थितः = तस्थौ। ततः = तदनन्तरम्, क्षेत्रपतिना = भूमिस्वामिना, हर्षोत्फुल्ललोचनेन = हर्षेण उत्फुल्ले, लोचने यस्य तेन—प्रसन्नदृष्टिना, तथाविधः = तादृशः, स्तब्धीभूतशरीर इत्यर्थः। मृगः = हरिणः, आलोकितः = दृष्टः। आः = इति हर्षे, स्वयं = (मदागमनात्पूर्वं) स्वयमेव, मृतः = पञ्चत्वं गतः, असि, इत्युक्त्वा = इत्यभिधाय, मृगं = हरिणम्, बन्धनात् = पाशात्, मोचयित्वा, पाशान् = जालान् ग्रहीतुं = संकलयितुम्, सयत्नः = सचेष्टः, बभूव = अभूत्। ततः = तदनन्तरम्, काकशब्दं = काकस्य शब्दम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, मृगः सत्वरं = शीघ्रम्, उत्थाय, पलायितः = उत्थितो भूत्वा पलायत। तं = हरिणम्, उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य, तेन क्षेत्रपतिना = कृषकेण (कर्त्रा) क्षिप्तेन = प्रक्षिप्तेन, लगुडेन = दण्डेन (करणेन) शृगालः = क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकः, हतः = मृतः।

बाद सुबहके समय हाथमें लाठी लेकर आते हुए खेतके मालिक (किसान) को कौवेने देखा। उसे देखकर कौवेने कहा—'मित्र मृग! तुम अपनेको मरे हुए की तरह दिखाकर पेटको हवा से फुलाकर और पैरोंको कड़ाकर बैठ जाओ मैं तेरो आँखोंको कुरेदूँगा। 'जब मैं शब्द करूँगा तो तुम शीघ्र ही उठकर भाग जाना।' मृग उसी तरह कौवेके कहनेके अनुसार बैठ गया। बाद खेत के मालिकने प्रसन्नतासे आँखें फाड़कर उस प्रकार पड़े हुए मृगको देखा। 'आहा! अपने आप मर गया', ऐसा कहकर मृगको बन्धनोंसे छुड़ाकर जाल इकट्ठा करनेमें लग गया। बाद कौवेका शब्द सुनकर मृग शीघ्र ही उठकर भागा। मृगको भागते देख किसानने उसको लक्ष्य बनाकर एक लाठी फेंकी, जो मृगको न लगकर सियारको लगी और वह मर गया।

तथा चोक्तम्—त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते॥ ८३॥

अन्वयः—(जनः) अत्युत्कटैः पापपुण्यैः त्रिभिः वर्षैः त्रिभिः मासैः त्रिभिः पक्षैः त्रिभिः दिनैः इह एव फलम् अश्नुते ॥८३॥

त्रिभिरिति—जनः अत्युत्कटैः = अतिमहद्भिः, पापपुण्यैः = पापानि च पुण्यानि च तैः—सुकृतदुष्कृतैः, फलं = सुखदुःखादिकम्, त्रिभिः वर्षैः = हायनत्रयेण, त्रिभिः मासैः = मासत्रयेण, त्रिभिः पक्षैः = सार्धमासेन, त्रिभिः दिनैः = दिनत्रयेण, इहैव = अस्मिन्नेत्र जन्मनि संसारे वा अश्नुते = भुङ्क्ते ॥८३॥

कहा भी गया है—मनुष्य अधिक पाप-पुण्यों का फल तीन वर्ष, तीन मास, तीन पक्ष और तीन दिनों में इसी जन्म में भोगता है ॥८३॥

अतोऽहं ब्रवीमि—'भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः' इत्यादि ।

अतः = अस्मात् कारणात्, अहं = हिरण्यकः, ब्रवीमि = कथयामि, भक्ष्यभक्षकयोः' आदि ।

इसलिये मैं कहता हूँ भोजन और भोजन करनेवाले खाद्य और खादक की प्रीति विपत्तिका कारण बन जाती है ।

काकः पुनराह—भक्षितेनाऽपि भवता नाहारो मम पुष्कलः ।
त्वयि जीवति जीवामि चित्रग्रीव इवानघ ! ॥८४॥

अन्वयः—(हे) अनघ ! भवता भक्षितेन अपि मम पुष्कलः आहारः न (भविष्यति) त्वयि जीवति (च) चित्रग्रीव इव जीवामि ॥८४॥

भक्षितेनेति—हे अनघ = हे निष्पाप ! भवता = त्वया हिरण्यकेन, भक्षितेनापि = खादितेनापि, मम = काकस्य, पुष्कलः = पूर्णः, आहारः = भोजनम्, न = न भविष्यतीत्यर्थः, त्वयि = हिरण्यके, जीवति सति, चित्रग्रीव इव = कपोतराज इव, जीवामि = प्राणामि ।

कौवा फिर बोला—हे पुण्यात्मन् ! तुझे खा लेने पर भी मेरा पूर्ण आहार (भोजन) न होगा । मैं तुम्हारे जीने पर चित्रग्रीव की तरह जीऊँगा ॥८४॥

अन्यच्च – तिरश्चामपि विश्वासो दृष्टः पुण्यैककर्मणाम् ।
सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते ॥ ८५ ॥

अन्वयः—पुण्यैककर्मणां तिरश्चाम् अपि विश्वासः दृष्टः, हि सतां साधुशीलत्वात् स्वभावः न निवर्तते ॥८५॥

तिरश्चामिति—पुण्यैककर्मणां = पुण्यं शुभाचारः, एकं कर्म येषां तेषाम्, तिरश्चामपि = पशुपक्षिणामपि विश्वासः दृष्टः = अवलोकितः, हि = यतः सतां = सज्जनानाम्, साधुशीलत्वात् = साधु शीलं येषां तेषां भावस्तस्मात्, स्वभावः =

निसर्गः 'स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्चेत्यमरः ।' न निवर्त्तते=न प्रत्यावर्त्तते ।

और भी—धर्मात्मा पशु पक्षी आदि का भी विश्वास देखा गया है। क्योंकि सज्जनता के कारण सज्जन पुरुषों का स्वभाव बदलता नहीं है ॥८५॥

किञ्च—साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम् ।
नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया ॥ ८६ ॥

अन्वयः—प्रकोपितस्य अपि साधोः मनः विक्रियां न आयाति, हि सागराम्भः तृणोल्कया तापयितुं शक्यं न (भवति) ॥८६॥

साधोरिति—प्रकोपितस्यापि = क्रोधं प्रापितस्यापि, साधोः = सज्जनस्य, मनः = चित्तम् विक्रियां = विकारम्, न आयाति=न प्राप्नोति । हि=यतः, सागराम्भः = सागरस्य समुद्रस्य अम्भः =जलम्, तृणोल्कया = ज्वलत्तृणेन, तापयितुं = संतापयितुम्, उष्णं कर्तुमिति यावत्, न शक्यम् ॥८६॥

और भी—क्रोधित होनेपर भी सज्जन पुरुष के मन में विकार उत्पन्न नहीं होता है। क्योंकि समुद्रके जलको घासकी आँचसे गरम नहीं किया जा सकता है ॥८६॥

हिरण्यको ब्रूते—चपलस्त्वम् । चपलेन सह स्नेहः सर्वथा न कर्तव्यः ।

हिरण्यक इति—हिरण्यकः = मूषिकराजः ब्रूते = कथयति, त्वं = लघुपतनकः चपलः = चञ्चलः असि । चपलेन=चञ्चलेन सह, स्नेहः =मैत्री, सर्वथा= सर्वप्रकारेण, न कर्तव्यः= न करणीयः ।

हिरण्यक ने कहा—तुम चञ्चल हो और चञ्चल के साथ मित्रता कभी नहीं करनी चाहिये ।

तथा चोक्तम्—मार्जारो महिषो मेषः काकः कापुरुषस्तथा ।
विश्वासात्प्रभवन्त्येते विश्वासस्तत्र नोचितः ॥८७॥

अन्वयः—मार्जारः महिषः मेषः काकः तथा कापुरुषः एते विश्वासात् प्रभवन्ति, (अतः) तत्र विश्वासः न उचितः (भवति) । ८७ ॥

मार्जार इति—मार्जारः= बिडालः, महिषः=लुलायः, 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः । मेषः = ऊर्णायुः "ऊर्णायुमेषवृष्णय एडके" इत्यमरः । काकः= वायसः, कापुरुषः=कुत्सितः पुरुषः, एते = इमे, विश्वासात् =प्रत्ययात्, प्रभवन्ति= समर्थाः भवन्ति, (अतः) तत्र= तेषु, विश्वासः= प्रत्ययः, न उचितः=न योग्यः, अस्तीति शेषः ॥ ८७ ॥

कहा भी है—विडाल, भैंस, भेड़, कौवा और दुर्जनपुरुष इनपर विश्वास करनेपर ये अपनी प्रभुता दिखाते हैं, अतः इनमें विश्वास नहीं करना चाहिये ॥८७॥

किञ्चान्यत् शत्रुपक्षो भवानस्माकम् ।

किञ्चेति—किञ्च अन्यत् = अपरम् (कारणमस्ति, यत्) भवान् = त्वम्, अस्माकं = मूषिकजातीयानाम्, शत्रुपक्षः = शत्रुपक्षावलम्बी भवति ।

और—दूसरे तुम मेरे शत्रु पक्षके हो ।

उक्तं चैतत्—शत्रुणा नहि सन्दध्यात् सुश्लिष्टेनापि सन्धिना ।
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ॥ ८८ ॥

अन्वयः—सन्धिना सुश्लिष्टेन अपि शत्रुणा न सन्दध्यात्, हि सुतप्तम् अपि पानीय पावक शमयति एव ॥८८॥

शत्रुणेति—सन्धिना = मेलनेन, सुश्लिष्टेनापि = सम्यङ् मिलितेनापि, शत्रुणा = रिपुणा, न सन्दध्यात् = न सम्मिलेत् । हि = यतः, सुतप्तमपि = अत्युष्णमपि पानीयं = जलम्, पावकम् = अग्निम्, शमयत्येव = निर्वाणं प्रापयत्येव ॥८८॥

कहा भी गया है—शत्रु कितना भी प्रिय होकर मेल करे किन्तु उसके साथ कदापि मेल नहीं करना चाहिये । क्योंकि पानी कितना ही गरम क्यों न हो फिर भी अग्निको बुझा ही देता है ॥८८॥

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥८९॥

अन्वयः—विद्यया अलङ्कृतः सन् अपि दुर्जनः परिहर्तव्यः । मणिना भूषितः असौ सर्पः किं भयंकरः न (भवति ?) ॥ ८९ ॥

दुर्जनेति—विद्यया = शास्त्रज्ञानेन, अलंकृतः = भूषितः सन्, अपि, दुर्जनः = दुष्टो जनः, परिहर्तव्यः—त्याज्यः (यतः) मणिना = नागरत्नेन, भूषितः = अलङ्कृतः, असौ = सर्पः, किम् = इति प्रश्ने, भयंकरः = भीतिप्रदः, न भवति = नास्ति ? अपि तु भयङ्करो भवत्येवेत्यर्थः ॥ ८९ ॥

दुष्ट पुरुष विद्वान् भी हो तो उसे छोड़ देना चाहिए, क्योंकि मणिसे युक्त सर्प क्या भयंकर नहीं होता है ? अर्थात् होता ही है ॥ ८९ ॥

यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शक्यमेव तत् ।
नोदके शकटं याति न च नौर्गच्छति स्थले ॥ ९० ॥

अन्वयः—यत् अशक्यं तत् शक्यं न (भवति) यत् शक्यं तत् शक्यम् एव, (यतः) शकटम् उदके न याति नौः च स्थले न गच्छति ॥९९॥

यदिति—यत्=कार्यम्, अशक्यं=सर्वथा सम्पादनायोग्यम्, तत्=कार्यम्, शक्यं=साध्यम्, न=नास्त्येव, यत्=यत्कार्यम्, शक्यं=साध्यं, तत्=तत्कार्यम्, शक्यमेव=सम्पादनयोग्यमेव। (तथाहि) उदके=जले, शकटं=गन्त्री, न=नहि, याति=गच्छति, स्थले=भूमौ, नौका च, न गच्छति=न याति ॥

जो कार्य सर्वथा असम्भव है, वह सम्भव नहीं हो सकता और जो सम्भव है, वह सम्भव है ही। जैसे-जलमें गाड़ी नहीं चलती और जमीनपर नाव नहीं चल सकती ॥९०॥

लघुपतनको ब्रूते—श्रुतं मया सर्वम्। तथापि मम चैतावान् सङ्कल्पस्त्वया सह सौहृद्यमवश्यं करणीयम्; नो चेदनाहारेणात्मानं व्यापादयिष्यामि।

लघुपतनक इति—लघुपतनकः=तन्नामककाकः, ब्रूते=ब्रवीति, मया=काकेन, सर्वं=सम्पूर्णम्, श्रुतम्=आकर्णितम्। तथापि=आकर्णितेऽपि, मम=लघुपतनकस्य, एतावान्=इयान्, संकल्पः=निश्चयः, त्वया=हिरण्यकेन, सह=साकम्, सौहृद्यं=मैत्री, अवश्यम्=ध्रुवम्, करणीयम्=कर्तव्यम्। नो चेत्=अन्यथा, सौहृद्यमन्तरेण, अनाहारेण=अनशनेन, आत्मानं=स्वजीवनम् व्यापादयिष्यामि=नाशयिष्यामि।

लघुपतनकने कहा—मैंने सारी बातें सुन ली हैं, तो भी मेरा यह निश्चय है कि आपके साथ अवश्य मैत्री करूँ। अन्यथा (यदि आप मुझसे मित्रता न करेंगे तो) अनशनकर (भूख-हड़तालकर) अपने प्राण दे दूँगा।

तथा हि—मृद्घटवत्सुखभेद्यो दुःसन्धानश्च दुर्जनो भवति।
सुजनस्तु कनकघटवद् दुर्भेद्यश्चाशु सन्धेयः ॥ ९१ ॥

अन्वयः—दुर्जनः मृदघटवत् सुखभेद्यः दुःसन्धानः च भवति, सुजनः तु कनकघटवत् दुर्भेद्यः आशु सन्धेयश्च भवति ॥ ९१ ॥

मृद्घट इति—दुर्जनः=दुष्टः पुरुषः, मृद्घटवत्=मृत्तिकानिर्मितघट इव, सुखभेद्यः=सुखेन अनायासेन, भेद्यः=भेत्तुं योग्यः स्फोटयितव्यः, अस्ति च दुःसन्धानश्च=पुनः दुःखेन संयोज्यश्च भवति। सुजनः=सत्पुरुषः, कनकघटवत्=स्वर्णनिर्मितकलश इव, दुर्भेद्यः=दुःखेन भेत्तुं योग्यः, तथा आशु=शीघ्रम्, संधेयः=संयोजयितुं योग्यो भवतीत्यर्थः ॥९१॥

और भी—दुष्टपुरुष मिट्टी के घडेके समान सहज ही में फूट (विरुद्ध हो) जाता है और उसका जुड़ना बड़ा कठिन है। किन्तु सज्जन पुरुष सुवर्णघट के समान कठिन से फूटता है (विरुद्ध होता है) और शीघ्र ही जुड़ सकता हैं ॥९१॥

किञ्च—द्रवत्वात्सर्वलोहानां निमित्तान्मृगपक्षिणाम् ।
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां संगतं दर्शनात्सताम् ॥९२॥

अन्वयः—सर्वलोहानां द्रवत्वात्, मृगपक्षिणां निमित्तात्, मूर्खाणां भयात् लोभात् च, सतां दर्शनात् संगतं (भवति) ॥९२॥

द्रवत्वादिति—सर्वलोहानां = स्वर्णादिसर्वधातूनाम्, द्रवत्वात् = द्रवत्वेन, मृगपक्षिणां = काकहरिणादीनाम्, निमित्तात् = भोजनादिनिमित्तात्, मूर्खाणां = जडानाम्, भयात् = भीतेः, लोभात् = गर्धायाः, च = पुनः, सतां = सज्जनानाम्, दर्शनात् = दर्शनेनैवेत्यर्थः, संगतम् = मेलनं, भवतीति सर्वत्र सम्बन्धः ॥९२॥

और भी—सभी धातुओं (सुवर्ण, चांदी, ताम्बा, लोहा आदि) का गलाने से, मृग पक्षियों का किसी विशेष निमित्त से, मूर्खों का भय तथा लोभ से, सज्जनों का केवल दर्शन मात्र से ही मेल होता है ॥९२॥

किञ्च—नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः ॥ ९३ ॥

अन्वयः—सुहृज्जनाः हि नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते, अन्ये बदरिकाकाराः बहिः एव मनोहरा (भवन्ति) ।

नारिकेलेति—सुहृज्जनाः = सहृदयाः, नारिकेलसमाकाराः नारिकेलेन समः आकारो येषां ते, अन्तः मधुराः बहिः कठोराः इति भावः, दृश्यन्ते = अवलोक्यन्ते । अन्ये = दुष्टाः, बदरिकाकाराः = बदरिकायाः आकार इव आकारो येषान्ते—बदरफलवत्, बहिरेव = बहिः एव, मनोहराः = रमणीयाः, अन्तः-कठिनाः उपरि कोमला भवन्तीति भावः ॥९३॥

और भी—सहृदय पुरुष नारियल के समान ऊपरसे कठोर तथा भीतरसे कोमल होते हैं और दूसरे (दुष्ट पुरुष) बेर फल के समान भीतर से कठोर और ऊपर से मनोहर (कोमल) होते हैं ॥ ९३ ॥

स्नेहच्छेदेऽपि साधूनां गुणा नायान्ति विक्रियाम् ।
भंगेऽपि हि मृणालानामनुबध्नन्ति तन्तवः ॥९४॥

अन्वयः—साधूनां स्नेहच्छेदे अपि गुणाः विक्रियां न आयान्ति, हि मृणालानां भंगे अपि तन्तवः अनुबध्नन्ति ॥९४॥

स्नेहेति—साधूनां = सज्जनानाम्, स्नेहच्छेदेऽपि = स्नेहस्य च्छेदः स्नेहच्छेदः तस्मिन्—प्रेमभंगेऽपि, गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः, विक्रियां = विकारम् न आयान्ति = न सेवन्ते । हि = यतः, मृणालानां = कमलदण्डानाम्, भंगेऽपि = छेदे सत्यपि, तन्तवः = दण्डान्तःसूत्राणि, अनुबध्नन्ति = अनुस्यूतानि तिष्ठन्तीति सम्बन्धः ॥९४॥

स्नेह छूट जाने पर भी सज्जनों के गुण में विकार उत्पन्न नहीं होता जैसे—कमल के नाल (दण्ड) टूटने पर भी उसके सूत जुड़े ही रहते हैं ॥९४॥

अन्यच्च—शुचित्वं त्यागिता शौर्य्यं सामान्यं सुखदुःखयोः ।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणः ॥९५॥

अन्वयः—शुचित्वं, त्यागिता, शौर्यं, सुखदुःखयोः सामान्यम्, दाक्षिण्यं, अनुरक्तिः च सत्यता च (एते) सुहृद्गुणाः (सन्ति) ।

शुचित्वमिति—शुचित्वं = पवित्रता, त्यागिता = दानशीलता, शौर्यं = विक्रमः, सुखदुःखयोः = सुखं च दुःखञ्च इति तयोः—शर्मकष्टयोः, सामान्यम् = समानता, दाक्षिण्यं = चातुर्यम्, अनुकूलता वा, अनुरक्तिः = अनुरागः, च = तथा, सत्यता = सत्यप्रवणता (एते) सुहृद्गुणाः = सुहृदां मित्राणां गुणाः भवन्तीति शेषः ॥९५॥

पवित्रता, दानशीलता, शूरता, सुख-दुःख में एकता, चतुरता या अनुकूलता, अनुराग और सत्यता, ये मित्रों के गुण कहे गये हैं ॥९५॥

'एतैर्गुणैरुपेतो भवदन्यो मया कः सुहृत्प्राप्तव्यः ?' इत्यादि तद्वचनमाकर्ण्य हिरण्यको बहिः निःसृत्याह—आप्यायितोऽहं भवतामनेन वचनामृतेन ।

एतैरिति—एतैः = पूर्वोक्तैः, गुणैः, उपेतः = युक्तः, भवदन्यः = भवतः—अन्यः, इति भवद्भिन्नः, कः, अपरः सुहृद् = मित्रम्, मया = काकेन, प्राप्तव्यः = आसादितव्यः इत्यादि = इत्येवंविधम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, हिरण्यकः मूषिकराजः, बहिः, निःसृत्य = बाहरागत्य, आह = उवाच, भवतां = युष्माकम्, अनेन = एतेन, वचनामृतेन = वचनरूपेण पीयूषेण, अहं = हिरण्यकः, आप्यायितः = अत्यन्तं तृप्तः, अस्मीति शेषः ।

इन पूर्वोक्त गुणों से युक्त आपके सिवाय दूसरा मित्र मुझे कौन मिलेगा' इत्यादि कौवे के वचनों को सुनकर हिरण्यक बिल के बाहर निकल कर बोला—तुम्हारे इस वचनरूप अमृतसे मैं सन्तुष्ट (अघा गया) हूँ ।

तथा चोक्तम्—घर्मार्तं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं न मुक्तावली,
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यंगमप्यर्पितम् ।
प्रीत्यै सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः,
सद्युक्त्या च पुरस्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम् ॥९६॥

अन्वयः—सुकृतिनाम् आकृष्टिमन्त्रोपमं सद्युक्त्या पुरस्कृतं सज्जनभाषितं चेतसः प्रीत्यै यथा प्रायः प्रभवति तथा घर्मार्तं सुशीतलजलैः स्नानं न सुखयति, मुक्तावली न सुखयति, प्रत्यङ्गम् अर्पितं श्रीखण्डविलेपनम् अपि न सुखयति ॥९६॥

घर्मार्तमिति—घर्मार्तं = आतपतप्तम् , सुशीतलजलैः = अतिशीतलवारिभिः स्नानं तथा=तादृशं, न सुखयति = आनन्दमुत्पादयति, मुक्तावली = मुक्तामाला, (तादृशं न सुखयति) प्रत्यङ्गं=अङ्गं अङ्गं प्रति इति-प्रत्यङ्गं सर्वाङ्गे अर्पितम्=कृतम् , श्रीखण्डविलेपनं=श्रीखण्डस्य श्वेतचन्दनस्य—विलेपनं=आलेपनम्, (तादृशं न सुखयति), सद्युक्त्या = सद्दृष्टान्तेन, पुरस्कृतं = शोभितम्, सुकृतिनां = पुण्यात्मनाम् , आकृष्टिमन्त्रोपमम् = आकर्षणमनुरिव, सज्जनभाषितं = सज्जनानां भाषितम् साधूक्तिः, यथा = येन प्रकारेण, चेतसः = हृदयस्य, प्रीत्यै = आनन्दाय, प्रायः = बाहुल्येन, प्रभवति = समर्थो भवति ॥९६॥

और कहा भी गया है—पुण्यात्माओंके वशीकरण मन्त्र के समान अच्छी युक्तियोंसे युक्त सज्जनोंकी वाणी प्रायः हृदयका जैसा आनन्द देती है वैसा सूर्यकी किरणसे संतप्तको शीतल जलसे स्नान मोतियोंकी माला तथा प्रत्येक अङ्गमें मलयचन्दनका लेप भी नहीं देता है ॥ ९६ ॥

अन्यच्च—रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् ॥९७॥

अन्वयः—रहस्यभेदः, याच्ञा, नैष्ठुर्यं चलचित्तता, क्रोधः, निःसत्यता, द्यूतं च, एतत् (सर्वं) मित्रस्य दूषणं (भवति) ॥९७॥

रहस्येति—रहस्यभेदः = रहस्यस्य—गुप्ताभिमर्शस्य भेदः-व्यवहारः रहस्योद्घाटनमिति यावत् याच्ञा = अर्थना, नैष्ठुर्यं = क्रूरता, चलचित्तता = मनसः चञ्चलता, क्रोधः = कोपः, निःसत्यता = मिथ्यावादिता, द्यूतं = अक्षैः क्रीडनम्, एतत्, मित्रस्य = सुहृदः, दूषणम्, अस्तीति शेषः ॥९७॥

और भी—गुप्त बात को प्रकट करना, माँगना, निष्ठुरता, चित्तकी चञ्चलता, क्रोध, मिथ्या बोलना और जुआ खेलना, ये मित्रके दोष कहे गये हैं ॥९७॥

अनेन वचनक्रमेण यदेकमपि दूषणं त्वयि न लक्ष्यते ।

अनेनेति—अनेन = पूर्वोक्तेन, वचनक्रमेण = वाक्यप्रबन्धेन, तत् = रहस्य-भेदादि, एकमपि दूषणं = दोषः, त्वयि = काके, न लक्ष्यते न = ज्ञायते ।

इन पूर्वोक्त वाक्यप्रबन्धोंसे तुममें रहस्यभेदादि एक भी दोष नहीं जाना जाता । अतः तुम मित्र बनाने योग्य हो ।

यतः--पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते ।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणावगम्यते ॥९८॥

अन्वयः—पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते, अस्तब्धत्वम् अचापल्यं (च) प्रत्यक्षेण अवगम्यते ॥ ९८ ॥

पटुत्वमिति—पटुत्वं = दाक्षिण्यम्, सत्यवादित्वं = सत्यभाषणम्, कथायोगेन = कथायाः योगः प्रसङ्गः तेन वार्तालापेन, बुध्यते = अवगम्यते, अस्तब्धत्वं = गर्वरहितत्वम्, अदम्भ इत्यर्थः, अचापल्यं = चाञ्चल्यराहित्यम्, स्थिरबुद्धितेत्यर्थः, प्रत्यक्षेण = साक्षात्कारेण, अवगम्यते = ज्ञायते ॥९८॥

क्योंकि—चतुरता, सत्यपरायणता ये बातचीत करने से मालूम किये जाते हैं और नम्रता, स्थिरता ये साक्षात्कार होने पर ही जानी जाती है ॥९८॥

अपरञ्च—अन्यथैव हि सौहार्दं भवेत्स्वच्छान्तरात्मनः ।
प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहतचेतसः ॥९९॥

अन्वयः—हि स्वच्छान्तरात्मनः सौहार्दम् अन्यथा एव भवेत् । शाठ्योपहत-चेतसः वाणी अन्यथा प्रवर्तते ॥९९॥

अन्यथैवेति--हि = निश्चयेन, स्वच्छान्तरात्मनः = स्वच्छः-मलरहितः अन्त-रात्मा = अन्तःकरणं यस्य तस्य, सौहार्दं = मैत्री, अन्यथैव = अन्यप्रकारेणैव भवेत् = भवति । शाठ्योपहतचेतसः = शाठ्येन उपहतं व्याप्तं चेतो यस्य, तस्य शठस्येत्यर्थः, वाणी = वाग्, अन्यथा = अन्यप्रकारेण, प्रवर्तते = जायते ॥९९॥

और भी—शुद्धचित्तवालोंकी मैत्री दूसरी ही होती है और जिसका हृदय धूर्तता से भरा है उसकी बातचीत दूसरी तरह की होती है ॥९९॥

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कार्यमन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥१००॥

अन्वयः—दुरात्मनां मनसि अन्यत्, वचसि अन्यत्, कार्यम् अन्यत् (भवति) महात्मनां मनसि एकं वचसि एकं कर्मणि एकं (भवति) ॥१००॥

मनसीति—दुरात्मनां = दुष्टानाम् मनसि = अन्तःकरणे, अन्यत् =

अन्यथा (भवति) वचसि = वाण्याम्, अन्यत् (भवति) कार्य्यं = कर्तव्यम्, अन्यत्, (भवति) सर्वमन्योन्यं विभिन्नमिति भावः। महात्मनां = महापुरुषाणाम् मनसि = हृदये, एकं, वचसि = वाचि, एकं, कर्मणि = कार्ये, एकं = एकप्रकारं भवतीति भावः ॥ १०० ॥

दुष्ट पुरुषोंके मन में कुछ, वचनमें कुछ, और काममें कुछ और ही होता है, (किन्तु) महापुरुषोंके मनमें, वचनमें और कर्ममें एक ही बात होती है ॥१००॥

"तद् भवतु भवतोऽभिमतमेव।" इत्युक्त्वा हिरण्यको मैत्र्यं विधाय भोजनविशेषैर्वायसं सन्तोष्य विवरं प्रविष्टः, वायसोऽपि स्वस्थानं गतः। ततः प्रभृति तयोरन्योन्याहारप्रदानेन कुशलप्रश्नै-र्विश्रम्भालापैश्च कालोऽतिवर्तते।

तदिति—तत्=तस्मात् कारणात्, भवतः = काकस्य, अभिमतमेव = इष्टमेव, मया सह मैत्री एवेति भावः, भवतु = अस्तु, इति, उक्त्वा = एतत्कथयित्वा, हिरण्यकः = मूषिकराजः, मैत्र्यं = मैत्रीम्, विधाय = कृत्वा, भोजनविशेषैः = विविधभोजनैः, वायसं=काकम्, सन्तोष्य = सन्तर्प्य, विवरं = बिलम् प्रविष्टः— प्रविवेश। वायसोऽपि, लघुपतनककाकोऽपि, स्वस्थानं = निजवासस्थानम्। गतः = अगमत्। ततः प्रभृति = तदारभ्य, तयोः = काकहिरण्यकयोः, अन्योन्याहारप्रदानेन = अन्योन्यस्मै परस्परम्, आहारस्य—भोजनस्य, प्रदानेन, कुशलप्रश्नैः = कुशलस्य प्रश्नैः—क्षेमपृच्छाभिः, विश्रम्भालापैः = विश्रम्भस्य आलापैः-विश्वाससंभाषणैः, च। कालः = समयः, अतिवर्तते = अतिक्रान्तो भवति।

अच्छा; 'तुम्हारी इच्छानुसार ही हो' ऐसा कहकर मूषिकराज हिरण्यकने मित्रताकर बहुविध भोजन से काकको सन्तुष्ट कर अपने बिल में प्रवेश किया (घुस गया)। कौवा भी अपने देश (घर) चला गया। उस दिनसे उन दोनोंमें परस्पर भोजनका लेन देन और कुशलादिके पूछने से तथा विश्वासपूर्ण बात-चीत से समय बीतने लगा।

एकदा लघुपतनको हिरण्यकमाह--"सखे! कष्टतरलभ्याहारमिदं स्थानं परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तुमिच्छामि।" हिरण्यको ब्रूते—मित्र! क्व गन्तव्यम्।

एकदेति—एकदा = एकस्मिन्दिने, लघुपतनकः = तन्नामा वायसः, हिरण्यकम् = मूषिकराजं प्रति, आह = उवाच। सखे! = मित्र, कष्टतरलभ्याहारं = कष्टतरेण—अतिकाठिन्येन, लभ्यः आहारो—भोजनं यत्र तत्,

इदं स्थानम् = इमं देशम्। परित्यज्य = विहाय, स्थानान्तरं = अन्यत् स्थानम्, गन्तुमिच्छामि = जिगमिषामि। हिरण्यको ब्रूते—मूषिकराजः पृच्छति, मित्र! सखे! क्व = कुत्र, गन्तव्यम् = व्रजितव्यम्।

एक दिन लघुपतनकने मूषिकराज हिरण्यक से कहा—मित्र! इस स्थानमें बड़ी कठिनाई से भोजन मिलता है, अतः इस स्थानको छोड़कर दूसरी जगह जाने की इच्छा करता हूँ। हिरण्यक ने कहा—मित्र, कहाँ जाओगे?

तथा चोक्तम्—चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्।
नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्॥ १०१॥

अन्वयः—बुद्धिमान् एकेन पादेन चलति, एकेन तिष्ठति, परं स्थानम् असमीक्ष्य पूर्वम् आयतनं न त्यजेत्॥ १०१॥

चलतीति—बुद्धिमान् = मतिमान् (नरः), एकेन पादेन = चरणेन, चलति = गच्छति। एकेन = अपरेण, तिष्ठति, परं = अन्यत्, स्थानम् = देशम् असमीक्ष्य = अनिश्चित्य, पूर्वं = प्रथमम्, आयतनं = स्थानम्, न त्यजेत् = न मुञ्चेत्॥ १०१॥

कहा भी है—बुद्धिमान् पुरुष एक पैर से चलते हैं और दूसरे पैर से ठहरते हैं। अभिप्राय यह है कि दूसरी जगह निश्चित करके ही पहली जगह छोड़ते हैं। अतएव दूसरा स्थान बिना निश्चित किये पहला स्थान नहीं छोड़ना चाहिये॥ १०१॥

वायसो ब्रूते—'अस्ति सुनिरूपितं स्थानम्।' हिरण्यकोऽवदत्-किं तत्? वायसो ब्रूते—अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराभिधानं सरः। तत्र चिरकालोपार्जितः प्रियसुहृन्मे मन्थराभिधानः कच्छपो धार्मिकः प्रतिवसति।

वायस इति—वायसः = काकः, ब्रूते = ब्रवीति, सुनिरूपितं स्थानम् = सु सम्यक् निरूपितं निश्चितं स्थानं देशः, अस्ति = वर्तते, किं तत् = किं स्थानम्, वायसो ब्रूते—दण्डकारण्ये = दण्डकाभिधाने वने, कर्पूरगौराभिधानं = कर्पूरगौरनामकम्, सरः, = कासारः 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः। अस्ति = वर्त्तते तत्र = सरसि, चिरकालोपार्जितः = चिरकालात्—बहुसमयात्, उपार्जितः = अर्जितः मे = मम, प्रियसुहृत् = प्रियश्चासौ सुहृच्च इति, प्रियमित्रम्, मन्थराभिधः = मन्थराख्यः, धार्मिकः = धर्मात्मा, कच्छपः = कूर्मः, प्रतिवसति।

कौवा बोला—एक अच्छी तरह देखा हुआ स्थान है। हिरण्यकने कहा—

'कौन सा ?" कौवा कहने लगा—दण्डकवनमें कर्पूरगौरनामक एक सरोवर है। वहाँ पर बहुत दिनोंसे परिचित धर्मात्मा मेरा प्रिय मित्र मन्थर नामका एक कछुवा रहता है।

अतः-परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः ॥१०२॥

अन्वयः—सर्वेषां नृणां परोपदेशे पाण्डित्यं सुकरं (भवति) धर्मे स्वयम् अनुष्ठानं तु कस्यचित् (एव) महात्मनः (भवति) ॥१०१॥

परोपदेशे इति—सर्वेषां = समेषाम् नृणां = मनुष्याणाम्, परोपदेशे = परस्मै—अन्यस्मै उपदेशः—शिक्षणम् तस्मिन्, पाण्डित्यं = चातुर्यम्, सुकरं = सुलभम् अस्ति। धर्मे = धर्मकार्ये, स्वीयम् = स्वस्य, अनुष्ठानम् = आचरणम् तु, कस्यचित् = विरलस्यैव, महात्मनः = महाशयस्य, भवतीति शेषः ॥१०२॥

क्योंकि दूसरेको धर्मविषयक उपदेश करना सभी मनुष्योंके लिए सुलभ होता है। किन्तु स्वयं धर्मानुसार चलना किसी विरले ही महात्मामें पाया जाता है ॥१०२॥

स च भोजनविशेषैर्मां संवर्धयिष्यति। हिरण्यकोऽप्याह—तत्किमत्रावस्थाय मया कर्तव्यम्?

स चेति—कच्छपः, भोजनविशेषैः = विविधैः भोजनैः, मां = लघुपतनकं, सवर्धयिष्यति = सम्यक् पालयिष्यति, हिरण्यकोऽप्याह = मूषिकराजोऽप्युवाच, तत् = तर्हि अत्र = अस्मिन् स्थाने, अत्रस्थाय = स्थित्वा, मया = हिरण्यकेन, किं कर्तव्यम् = किं करणीयम्? ममात्र स्थितेर्न किमपि प्रयोजनं वर्तते इति भावः।

और वह कछुवा अनेक प्रकारके भोजनोंसे मेरा अच्छी तरह सत्कार करेगा। हिरण्यक बोला—अच्छा, फिर मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा?

यतः—यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥१०३॥

यस्मिन्निति—यस्मिन् = यत्र, देशे = स्थाने, सम्मानो न = सम्यक् मानः सत्कारो नास्ति। वृत्तिर्न = जीविका न (वर्तते), च पुनः बान्धवः = मित्रमपि नास्ति = न भवति, च = पुनः, न कश्चित् = कोऽपि, विद्यागमः = विद्यायाः आगमः इति = विद्याध्ययनोपायः, न नास्ति, तं देशं = तं स्थलविशेषम्, परिवर्जयेत् = सर्वतोभावेन त्यजेत् ॥१०३॥

क्योंकि--जिस देशमें आदर, जीविका, मित्र तथा किसी तरह विद्याकी प्राप्ति न हो उस देशको छोड़ देना चाहिये ॥१०३॥

अपरं च—लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संस्थितिम् ॥१०४॥

अन्वयः—लोकयात्रा, भयम्, लज्जा, दाक्षिण्यम्, त्यागशीलता, (इमे) पञ्च यत्र न विद्यन्ते, तत्र (जनः) संस्थितिं न कुर्यात् ॥१०४॥

लोकेति—लोकयात्रा=लोकस्य = संसारस्य यात्रा=जीवनयात्रोपायः, भयं= शासनभयम्, लज्जा= ह्रीः, दाक्षिण्यं = चातुर्य्यम्, त्यागशीलता=दानशीलता (एते) पंच यत्र = यस्मिन् स्थले, न विद्यन्ते = न वर्तन्ते, तत्र = तस्मिन् स्थाने संस्थितिं = वासम् न कुर्यात्=न कुर्वीत ॥१०४॥

और भी--जिस स्थानमें जीविका, राजभय, लज्जा, चतुरता और दान-शीलता ये पाँच न हों वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ॥१०४॥

तत्र मित्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणदाता च वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥१०५॥

अन्वयः—हे मित्र ! यत्र ऋणदाता वैद्यः च श्रोत्रियः सजला नदी च (इदं) चतुष्टयं नास्ति, तत्र न वस्तव्यम् ॥१०५॥

तत्रेति—मित्र = सखे, यत्र = यस्मिन स्थाने, ऋणदाता = उत्तमर्णः, च=पुनः, वैद्यः=चिकित्सकः, श्रोत्रियः = वेदपाठी, सजला नदी = जलप्रवाहिनी सरित् च नास्ति=न वर्तते, तत्र= तस्मिन् स्थाने, न वस्तव्यं=कदापि वासो न विधेयः ॥१०५॥

मित्रवर ! जहाँ ऋण देनेवाला तथा वैद्य और वेद जाननेवाला (वेदपाठी ब्राह्मण), एवं नित्य बहते जलवाली नदी ये चार न हों वहाँ वास न करना चाहिये ॥१०५॥

ततो मामपि तत्र नय । वायसोऽवदत्—एवमस्तु । अथ वायसस्तत्र तेन मित्रेण सह विचित्रालापैः सुखेन तस्य सरसः समीपं ययौ । ततो मन्थरो दूरादवलोक्य लघुपतनकस्य यथोचितमातिथ्यं विधाय मूषक-स्यातिथिसत्कारं चकार ।

तत इति—ततः=तस्माद्धेतोः, मामपि = हिरण्यकमपि, तत्र=तस्मिन् सरोवरे, नय=प्रापय । वायसः=काकः, अवदत् =अवोचत्, एवम्, अस्तु= भवतु । अथ=अनन्तरम् वायसः=काकः, तत्र = तस्मिन् सरोवरे, तेन=हिरण्यकेन

मित्रेण=सुहृदा सह, विचित्रालापैः=नानाप्रकारैः वार्तालापैः, सुखेन= अनायासेन, तस्य सरसः=सरोवरस्य, समीपं=निकटम् ययौ=प्राप। ततः= तदनन्तरम्, मन्थरः=तन्नामकः कूर्मः, दूरादवलोक्य=विप्रकृष्टात् दृष्ट्वा, लघुप-तनकस्य=तदाख्यकाकस्य, यथोचितं=मित्रोचितम्, आतिथ्यं=अतिथिसत्कारम् विधाय=कृत्वा, मूषकस्यापि=हिरण्यकस्यापि, अतिथिसत्कारम्=आतिथ्यम्, चकार=अकरोत्।

इसलिए मुझे भी वहाँ ले चलो। कौवा बोला ठीक है। बाद कौवा उस मित्र हिरण्यकके साथ अनेक प्रकारकी बातें करता हुआ सुखपूर्वक उस तालाबके समीप पहुँचा। इसके बाद मन्थर नामक कच्छपने दूरसे ही अपने मित्र लघुपतन-कको आते देख यथायोग्य सत्कार कर हिरण्यकका भी योग्य अतिथि-सत्कार किया।

यतः—बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥१०६॥

अन्वयः—बालः वा वृद्धः वा युवा वा यदि गृहम् आगतः (भवेत् तदा) तस्य पूजा (गृहस्वामिना) विधातव्या (यतः) अभ्यागतः सर्वस्य गुरुः अस्ति॥ १०६॥

बालेति—गृहम्=स्वनिवासस्थानम् आगतः=समागतः, उपस्थित इति यावत्। बालः=बालकः (आ पञ्चदशवर्षदेशीयः) वा=अथवा, युवा=तरुणः (आ चत्वारिंशद्वर्षदेशीयः) वा=यद्वा, वृद्धः=वयोतीतः यः कोऽपि भवेत्। तस्य=उपस्थितस्य, पूजा=अर्चा, विधातव्या=कर्तव्या, (यतः) अभ्यागतः= अतिथिः, सर्वस्य=सकलाश्रमिणः, गुरुः=पूज्यः॥ १०६॥

क्योंकि—बालक, वृद्ध, तरुण इनमेंसे कोई भी घरपर आवे तो उसका सत्कार अवश्य करना चाहिए, क्योंकि अतिथि सभीके पूज्य होते हैं॥१०६॥

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥१०७॥

अन्वयः—अग्निः द्विजातीनां गुरुः, ब्राह्मणः वर्णानां गुरुः, स्त्रीणाम् एकः पतिः गुरुः, अभ्यागतः सर्वस्य गुरुः (भवति)॥१०७॥

गुरुरिति—द्विजातीनां=ब्राह्मणादित्रिवर्णानाम्, अग्निः=वह्निः, गुरुः= पूज्यः। वर्णानां=ब्राह्मणादीनाम्, ब्राह्मणः=विप्रः, गुरुः=पूज्यः। स्त्रीणां= नारीणाम्, एकः पतिः=भर्तैव, गुरुः=पूज्यः। सर्वस्य, जनस्येति शेषः,

अभ्यागतः=आवेशिकः, 'स्युरावेशिक आगन्तुरतिथिर्ना गृहागते' इत्यमरः। गुरुः =पूज्यः, सर्वत्र भवतीति सम्बन्धः कार्यः ॥ १०७ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोके अग्नि गुरु (पूज्य) हैं। ब्राह्मण चारों वर्णोंके लिये गुरु हैं, स्त्रियोंका केवल पति ही गुरु है, और सभीके लिये अतिथि गुरु है ॥१०७॥

वायसोऽवदत्-"सखे मन्थर! सविशेषपूजामस्मै विधेहि। यतोऽयं पुण्यकर्मणां धुरीणः कारुण्यरत्नाकरो हिरण्यकनामा मूषिकराजः। एतस्य गुणस्तुतिं जिह्वासहस्रद्वयेनापि सर्पराजो न कदाचित्कथयितुं समर्थः स्यात्" इत्युक्त्वा चित्रग्रीवोपाख्यानं वर्णितवान्। मन्थरः सादरं हिरण्यकं सम्पूज्याह-भद्र! आत्मनो निर्जनवनागमनकारणमाख्यातुमर्हसि। हिरण्यकोऽवदत्—कथयामि श्रूयताम्।

वायस इति—वायवः=लघुपतनकनामा काकः, अवदत्=उवाच, सखे= मित्र मन्थर! अस्मै=मूषकराजाय, सविशेषपूजा=विशेषेण सह वर्तमाना पूजाम्, विशिष्टाभ्यागतसत्कारमिति यावत्, विधेहि=कुरु। यतः=यस्माद्धेतोः अयम्=एषः, पुण्यकर्मणां=पुण्यं कर्म येषां तेषां, धर्मैकनिष्ठानाम्, धुरीणः= धौरेयः, 'धूर्वहे धुर्यधौरेयधुरीणाः सधुरन्धराः' इत्यमरः, अग्रगण्य इत्यर्थः। कारुण्यरत्नाकरः=करुणस्य भावः कारुण्यं, तस्य रत्नाकरः=समुद्रः दयासागर इति यावत्, हिरण्यकनामा=हिरण्यकाभिधः, मूषकराजः=आखुराजः (अस्ति)। एतस्य=अस्य पुरोवर्त्तमानस्येति भावः, गुणस्तुतिम्=गुणवर्णनम्, जिह्वासहस्र- द्वयेनापि=जिह्वानां सहस्रयोर्द्वयं तेन=द्विसहस्रजिह्वाभिः, अपि, सर्पराजः= वासुकिः, कदाचित्=कदापि, कथयितु=वक्तुम्, न समर्थः=न शक्तः। इति एतद्, उक्त्वा=अभिधाय, चित्रग्रीवोपाख्यानं=कपोतराजस्य कथाम्, वर्णितवान् =अभिहितवान्। मन्थरः=तन्नामकः कच्छपः, सादरम्=आदरेण सह यथा स्यात्तथा, हिरण्यकं=मूषिकराजम्, सम्पूज्य=सम्यक् पूजयित्वा, आह=उवाच, भद्र=शोभन! आत्मनः=स्वस्य, निर्जनवनागमनकारणम्=निर्जनं च तत् वनं चेति तस्मिन्; आगमनस्य कारणं निर्जनशून्यारण्यागमनहेतुमित्यर्थः। आख्यातुं =वक्तुम्, अर्हसि=समर्थोऽसि, हिरण्यकोऽवदत्=मूषिकराज उवाच, कथयामि =वच्मि। श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्।

कौवेने कहा—मित्र मन्थर! इनका विशेष सत्कार करो। क्योंकि—ये पुण्यात्माओंमें प्रधान, दयाके सागर हिरण्यक नामक चूहोंके राजा हैं, इनके

गुणोंकी प्रशंसा दो हजार जिह्वासे शेषनाग भी नहीं कर सकते। यह कहकर चित्रग्रीवकी कथा उसने कह सुनाई। बाद मन्थर नाम का कछुआ अत्यन्त आदरसे हिरण्यकका सत्कारकर बोला—मित्र! इस निर्जन वनमें अपने आनेका कारण कहिये। हिरण्यकने कहा—कहता हूँ, सुनिये—

॥ कथा ४ ॥

अस्ति चम्पकाभिधानायां नगर्यां परिव्राजकावसथः। तत्र चूडाकर्णो नाम परिव्राट् प्रतिवसति। स च भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितं भिक्षापात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य स्वपिति। अहं च तदन्नमुत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्षयामि। अनन्तरं तस्य प्रियसुहृद्वीणाकर्णो नाम परिव्राजकः समायातः। तेन सह कथाप्रसङ्गावस्थितो मम त्रासार्थं जर्जरवंशखण्डेन चूडाकर्णो भूमिमताडयत्। वीणाकर्ण उवाच—सखे! किमिति मम कथाविरक्तोऽन्यासक्तो भवान्? चूडाकर्णेनोक्तं मित्र! नाहं विरक्तः। किन्तु पश्यायं मूषिको ममापकारी सदा पात्रस्थमन्नमुत्प्लुत्य भक्षयति। वीणाकर्णो नागदन्तकं विलोक्याह-कथं मूषिकः स्वल्पबलोऽप्येतावद् दूरमुत्पतति? तदत्र केनापि कारणेन भवितव्यम्।

अस्तीति—चम्पकाभिधानायां=चम्पकेति अभिधानं यस्याः सा तस्याम्, चम्पकानाम्न्यामिति यावत्। नगर्यां=पुर्याम्, परिव्राजकावसथः=परिव्राजकानां भिक्षुकाणाम्-आवसथः-निवासस्थानम्, अस्ति=वर्त्तते, तत्र=अस्मिन्नावसथे, चूडाकर्णो नाम, परिव्राट्=संन्यासी, प्रतिवसति=निवासं करोति। सः=चूडाकर्णः, भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितं=भोजनावशिष्टं यद् भिक्षान्नम् तेन सहितम्—भुक्तशेषान्नयुक्तम्, भोजनपात्रं=भोजनभाजनम्, नागदन्तके=काष्ठरचितभित्तिस्थकीलके, अवस्थाप्य=निधाय, स्वपिति=शयनं करोति, अहं च=हिरण्यकश्च, उत्प्लुत्य=कूर्दयित्वा, तदन्नं=भोजनावशिष्टान्नम्, प्रतिदिनम्=प्रत्यहम्, भक्षयामि=अद्मि। अनन्तरं=कतिचिद्दिवसानन्तरम्, तस्य=चूडाकर्णस्य, प्रियसुहृद्=प्रियमित्रम्, वीणाकर्णः=तन्नामकः, परिव्राजकः=संन्यासी, समायातः=उपस्थितः, तेन=वीणाकर्णेन, सह=साकम्, कथाप्रसंगावस्थितः=कथायाः-बहुविधगोष्ठ्याः=प्रसंगः-अवतरणं तत्र अवस्थितः=समासक्तः चूडाकर्णः=तन्नामा संन्यासी, मम=हिरण्यकस्य, त्रासार्थं=भयार्थम्, जर्जरवंशखण्डेन=जीर्णवंशशकलेन, भूमिं=पृथ्वीम्, अताडयत्=

ताडयाञ्चकार, वीणाकर्णः=चूडाकर्णमित्रम्, उवाच=जगाद, सखे=मित्र! भवान् किमिति=किमर्थम्-मम=मे, कथायाः विरक्त इति, अन्यासक्तः= अन्यदत्तचित्तः (भवति). चूडाकर्णेनोक्तम=चूडाकर्णेनोचे, मित्र! न अहं विरक्तः=अनुरागशून्यः, किन्तु=परन्तु, पश्य=अवलोकय, मम, अपकारी=अप-करोतीति तच्छीलः हानिकर्तेति यावत्, अयम्=एषः, मूषिकः=आखुः, सदा= नित्यम्, पात्रस्थं=भाजनस्थम्, भिक्षान्नम्=भिक्षाप्राप्तान्नम्, 'भक्तमन्धोऽन्न-' मित्यमरः, उत्प्लुत्य=कूर्दयित्वा, भक्षयति=अत्ति, वीणाकर्णः, नागदन्तकं= दारुरचितकीलकम्, विलोक्य=दृष्ट्वा, आह=उवाच, कथं, मूषिकः=आखुः, स्वल्पबलोऽपि=हीनबलोऽपि, एतावद्दूरम्=इयद्दूरम्, उत्पतति=कूर्दति, तत्=तस्मात्, अत्र=अस्मिन्नुत्पतने, केनापि=केनचित्, कारणेन=हेतुना, भवितव्यम्=जातव्यम् ।

चम्पका नामक नगरीमें संन्यासियोंका एक निवानस्थान (मठ) है। वहाँ चूड़ाकर्ण नामका एक संन्यासी रहता था। वह भोजन से बचे हुए भिक्षान्न सहित भिक्षा-पात्रको खूँटी पर टाँगकर सो जाया करता था और मैं उस अन्नको प्रतिदिन कूदकर खाया करता था। कुछ दिन बाद उसका मित्र वीणाकर्ण नामक संन्यासी आया। उसके साथ अनेक प्रकार की कथाओंमें आसक्त होते हुए भी वह मुझे डरानेके लिए एक पुराने बाँसके टुकड़ेसे जमीनपर मारता था। वीणाकर्णने कहा--मित्र! क्यों आपका मन मेरी कथामें न लगकर दूसरी ओर लगा है? चूड़ाकर्णने कहा—मित्र! मैं आपकी कथासे विरक्त नहीं हूँ। किन्तु देखो यह चूहा मेरा शत्रु है, यह प्रतिदित पात्रमें रखा हुआ भिक्षाका अन्न उछलकर खा जाता है। वीणाकर्ण खूँटीको अच्छी तरह देखकर बोला—यह चूहा अल्पबलवाला एक छोटा जीव होते हुए भी इतना ऊँचा कैसे उछलता है? इसमें कुछ कारण अवश्य होगा।

क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तम्—कारणं चात्र धनबाहुल्यमेव भविष्यति!

क्षणमिति—क्षणं=किञ्चित्कालम्, विचिन्त्य=विचार्य्य, परिव्राजकेन= वीणाकर्णेन संन्यासिना, उक्तम्=कथितम्, अत्र=अस्मिन् मूषिककूर्दने, धन-बाहुल्यमेव=धनस्य बाहुल्यं धनबाहुल्यम्=द्रव्याधिक्यम् एव, कारणं=निदानम् भविष्यति!

कुछ देर सोच कर वीणाकर्णने कहा यहाँ धनका आधिक्य ही कारण होगा।

यतः—धनवान् बलवाँल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा ।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते । १०८ ॥

अन्वयः—लोके सर्वः धनवान् (च) सर्वत्र सर्वदा पूज्यते, हि राज्ञाम् अपि प्रभुत्वं धनमूलम् (एव) उपजायते ॥ १०८ ॥

धनवानिति—लोके = संसारे, सर्वः = समस्तो जनः, धनवान्=सम्पत्तिमान्, सर्वत्र = सर्वस्मिन् स्थाने, सर्वदा = नित्यम्, बलवान् = समर्थः (भवति), हि = यतः, राज्ञामपि = भूपतीनामपि, (यत्) प्रभुत्वं = स्वामित्वम्, (तदपि) धनमूलं धनम् एव मूलं = कारणं यस्य तत्, उपजायते = भवति ॥ १०८ ॥

क्योंकि—संसारमें धनसे ही सभी मनुष्य सर्वदा बलवान् होते हैं और राजाओंके प्रभुत्वका मूल भी धन ही है ॥ १०८ ॥

ततः खनित्रमादाय तेन विवरं खनित्वा चिरसञ्चितं मम धनं गृहीतम् । ततः प्रभृति निजशक्तिहीनः, सत्त्वोत्साहरहितः स्वाहारमप्युत्पादयितुमक्षमः सत्रासं मन्दमन्दमुपसर्पंश्चूडाकर्णेनावलोकितः ।

तत इति—ततः = तदनन्तरम्, खनित्रं = तोत्रम् भूखननास्त्रमित्यर्थः 'प्राजनं तोदनं तोत्रं खनित्रमवदारणे' इत्यमरः, आदाय = गृहीत्वा, तेन = वीणाकर्णेन, विवरं = बिलं, खनित्वा = अवदार्य्य, चिरसञ्चितं = चिरकालात्, एकत्रीकृतम्, मम = हिरण्यकस्य, धनं = वित्तम्, गृहीतं = स्वीकृतम्, ततः प्रभृति = तस्माद्दिनादारभ्य, निजशक्तिहीनः = निजस्य स्वस्य शक्त्या हीनः = निजपुरुषार्थरहितः, सत्त्वोत्साहरहितः = सत्त्वं च उत्साहश्च ताभ्यां रहितः पराक्रमोत्साहशून्यः, स्वाहारमपि = स्वस्य आहारः स्वाहारः तमपि स्वभोज्यद्रव्यमपि, उत्पादयितुम् = अर्जयितुम्, अक्षमः=असमर्थः, सत्रासं = सभयम्, यथा स्यात्तथा, मन्द मन्दम्=शनैः-शनैः, उपसर्पन् = गच्छन्, चूडाकर्णेन = तन्नामकेन परिव्राजकेन, अवलोकितः = दृष्टः ।

बाद उसने कुदाल या सब्बल लेकर मेरे बिलको खोदकर बहुत दिनोंसे इकट्ठा किया हुआ मेरा धन ले लिया । उसी समयसे अपनी सामर्थ्यसे हीन, पराक्रम तथा उत्साहसे रहित, अपने लिए भोजन ढूँढ़नेमें भी असमर्थ मैं डरके कारण धीरे-धीरे जा रहा था कि चूड़ाकर्णने देखा ।

ततः—धनेन बलवाँल्लोके धनाद्भवति पण्डितः ।
पश्यैनं मूषिकं पापं स्वजातिसमतां गतम् ॥१०९॥

अन्वयः—(जनः) लोके धनेन बलवान् भवति, धनात् पण्डितः भवति

(अत्र दृष्टान्तरूपेण) पापम् (धनराहित्यात् दोनं) स्वजातिसमतां गतम् एनं मूषिकं पश्य ॥ १०९ ॥

धनेनेति—लोके = जगति, धनेन = द्रविणेन (पुरुषः) बलवान् = बली (भवति) धनादेव = सम्पत्तेरेव, पण्डितः = बुद्धिमान् (भवति), पापं = सत्यपि धने परद्रव्यहरणादिरूपपापकर्तारम्—दीनमिति वा, स्वजातिसमतां = स्वजातितुल्यतां, गतं = प्राप्तम् एनम् = पुरो वर्तिनम् । मूषिकं = उन्दुरुम्, पश्य = अवलोकय, त्वमिति शेषः ॥ १०९ ॥

फिर वह बोला—संसारमें मनुष्य धनसे ही बलवान् होता है और धनसे ही पण्डित होता है । इस दुष्ट या दीन चूहेको तो देखो (धनहीन होनेके कारण) अपनी जातिके समान हो गया ॥१०९॥

किञ्च—अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥११०॥

अन्वयः—अर्थेन तु विहीनस्य अल्पमेधसः पुरुषस्य सर्वाः क्रियाः (तथैव) विनश्यन्ति यथा ग्रीष्मे कुसरितः विनश्यन्ति ॥११०॥

अर्थेनेति—अर्थेन = धनेन, विहीनस्य = वियुक्तस्य, अल्पमेधसः = अल्पा मेधा यस्य तस्य मन्दबुद्धेः, पुरुषस्य = पुंसः, सर्वाः = समस्ताः, क्रियाः, ग्रीष्मे = निदाघे, कुसरितः = कुत्सिता नद्यो, यथा = इव, विनश्यन्ति = नाशमुपगच्छन्ति ॥११०॥

और—जैसे गर्मीके समयमें छोटी-छोटी नदियोंका जल सूख जाता है, उसी प्रकार धनहीन तथा मन्दबुद्धिवाले पुरुषकी सभी क्रियायें नष्ट हो जाती हैं अर्थात् धनके बिना उनका कोई कार्य सफल नहीं होता ॥११०॥

अपरं च—यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥१११॥

अन्वयः—लोके यस्य अर्थाः (सन्ति) तस्य (एव) मित्राणि (भवन्ति) यस्य अर्थाः (सन्ति) तस्य (एव) बान्धवाः (भवन्ति) यस्य अर्थाः (सन्ति) स (एव) पुमान् भवति, यस्य अर्थाः सन्ति स हि पण्डितः (भवति) ॥१११॥

यस्येति—यस्य = पुंसः, अर्थाः = धनानि, तस्य, मित्राणि = सुहृदः, यस्य, अर्थाः तस्य, बान्धवाः = सम्बन्धिनः, यस्य अर्थाः (सन्तीति सर्वत्र सम्बन्धः) सः = पुरुषः, लोके = संसारे, पुमान् = पुरुषपदवाच्यः (भवति) हि = इति निश्चयेन, यस्य अर्थाः स (एव) पण्डितः = पण्डा सदसद्विवेकिनी बुद्धिः संजाता अस्येति । पण्डितः = विद्वान् भवतीति शेषः ॥१११॥

और भी—संसारमें जिसके पास धन है उसीके सब मित्र हैं, जिसके पास धन है उसीके सब कुटुम्बी हैं, जिसके पास धन है वही बड़ा पुरुष कहलाता है और जिसके पास द्रव्य है वही पण्डित भी कहलाता है ॥१११॥

अन्यच्च—अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च ।
मूर्खस्य च दिशः शून्याः सर्वशून्या दरिद्रता ॥११२॥

अन्वयः—अपुत्रस्य सन्मित्ररहितस्य च गृहं शून्यं (भवति) मूर्खस्य च (सर्वाः) दिशः शून्याः (भवन्ति) दरिद्रता सर्वशून्या (भवति) ॥११२॥

अपुत्रस्येति—अपुत्रस्य=नास्ति पुत्रः यस्य सः, तस्य पुत्ररहितस्य, च = पुनः, सन्मित्ररहितस्य=सन्मित्रेण रहितस्य-वियुक्तस्य, गृहं=भवनम्, शून्यं = रिक्तं भवति । मूर्खस्य=मूढस्य, (सर्वाः) दिशः शून्याः=प्रकाशरहिताः भवन्ति, दरिद्रता=निर्धनता, सर्वशून्या भवति=दरिद्रस्य सर्वं शून्यमिव भवतीति भावः ॥ ११२ ॥

और भी—पुत्ररहितका तथा जिसे सच्चा मित्र नहीं है उसका घर सूना है और मूर्खके लिए सभी दिशायें सूनी हैं, अर्थात् मूर्खको कहीं सम्मान नहीं मिलता और दरिद्रता तो सभी अभावोंका स्थान है । अभिप्राय यह कि दरिद्रके लिये संसारमें कहीं भी ठिकाना नहीं है, अतः धनाभाव सब अभावों में बलवान् है ॥ ११२ ॥

अपि च—दारिद्र्यान्मरणाद्वापि दारिद्र्यमवरं स्मृतम् ।
अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमतिदुःसहम् ॥ ११३ ॥

अन्वयः—दारिद्र्यात् मरणात् वा अपि दारिद्र्यम् अवरं स्मृतम् । यतः मरणम् अल्पक्लेशेन (भवति किन्तु) दारिद्र्यम् अतिदुस्सहं (भवति) ॥११३॥

दारिद्र्याद्िति–दारिद्र्यात्=धनशून्यत्वात्, निर्धनादित्यर्थः मरणात् = प्राणत्यागात् वा, दारिद्र्यं = निर्धनत्वम्, अवरं=न वरं,=न श्रेष्ठम्, हीनमित्यर्थः (यतः उभयोर्मध्ये) अल्पक्लेशेन=स्वल्पकष्टेन, मरणम् = मृत्युः, प्राणत्याग इति यावत् (भवति, किन्तु) दारिद्र्यं = धनराहित्यम्, अतिदुस्सहम् = अत्यन्तं सोढुमशक्यम् ॥ ११३ ॥

और भी—दरिद्रता और मृत्यु इन दोनोंमें दारिद्र्य ही बुरा कहा गया है, क्योंकि—मृत्यु थोड़े कष्टसे ही हो जाती है और दरिद्रता जीवन भर कष्ट देती है ॥ ११३ ॥

अपरं च—तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥११४॥

अन्वयः—अविकलानि इन्द्रियाणि तानि एव, नाम तत् एव, अप्रतिहता बुद्धिः सा एव, वचनं तत् एव, पुरुषः स एव, (किन्तु) अर्थोष्मणा विरहितः (सन्) क्षणेन अन्यः भवति इति एतत् विचित्रम् (अस्ति)॥ ११४॥

तानीन्द्रियाणीति—अविकलानि = अशकलितानि, यथा पूर्वाणीति यावत्, इन्द्रियाणि = अक्षाणि, तान्येव = पूर्वप्रतिपादितान्येव यथास्थितान्येवेत्यर्थः (सन्ति, एतत्क्रियायाः सर्वत्र सम्बन्धः वचनविपरिणामेन कार्यः)। नाम = संज्ञा अभिधानमित्यर्थः, तदेव=प्रागुक्तमेव(अस्ति) अप्रतिहता=अविकृता, बुद्धिः=मतिः सा, प्राग्भवा (एवास्ति)। वचनं=वचः; तदेव=प्राग्भवमेव (अस्ति)। अर्थोष्मणा=अर्थस्य-धनस्य ऊष्मा—ग्रीष्मता—मद इति यावत्, तेन—धनमदेनेत्यर्थः, विरहितः = रहितः, पुरुषः=जनः, स एव=प्राक्तन एव (अस्ति) (किन्तु सर्वस्मिन् वर्तमानेऽपि) क्षणेन = क्षणमात्रेण, अन्यः = भिन्नः, भवति = जायते, एतत् = अदः, विचित्रम् = आश्चर्यकरम् (अस्ति)। इन्द्रियादीनां तथात्वेऽपि धनाभावेन पुरुषस्य भिन्नत्वप्रतीतिराश्चर्यकारिकेत्यर्थः ॥ ११४ ॥

और भी—धनयुक्त अवस्थामें जो विकाररहित इन्द्रियाँ थीं वे ही इस समय भी हैं, पूर्व जो नाम था वही नाम इस समय भी विद्यमान है, पूर्व जैसी निर्मल बुद्धि थी वही बुद्धि इस समय भी है, वही वचन, और–वही पुरुष है किन्तु धनमद रूपी उष्णतासे हीन होनेपर क्षणभरमें औरका और हो जाता है, यह बड़ी विचित्रता है ॥११४॥

एतत्सर्वमाकर्ण्य मयाऽऽलोचितम् ममात्रावस्थानमयुक्तमिदानीम्, यच्चान्यस्मै एतद्वृत्तान्तकथनं तदप्यनुचितम्।

एतदिति—एतत् = चूडाकर्णोक्तम्, सर्वं = समस्तं, आकर्ण्य = श्रुत्वा, मया = हिरण्यकेन, आलोचितम् = विचारितम्, इदानीं = साम्प्रतम्, मम = हिरण्यकस्य, अत्र = अस्मिन् स्थाने, अवस्थानं वासः, अयुक्तम् = अशोभनम्, यच्च = यदपि, अन्यस्मै = परस्मै, एतत् = धननाशात्मकं, वृत्तान्तकथनं = वार्ताकथनम्, तदप्यनुचितम् = अयोग्यम् वर्तत इति शेषः।

इस प्रकार चूड़ाकर्णकी सारी बातें सुनकर मैंने सोचा—अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है, और दूसरेसे यह समाचार कहना भी ठीक नहीं है।

यतः—अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥११५॥

अन्वयः—मतिमान् अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च वञ्चनम् अपमानं च न प्रकाशयेत् ॥११५॥

अर्थेति—मतिमान्=बुद्धिमान् नरः, अर्थनाशं=अर्थस्य नाशः तं धननाशम्, मनस्तापं=मनसः तापम् इति अन्तःकरणदुःखम्, गृहे=स्वगेहे, (यानि) दुश्चरितानि=दुराचरणानि—(तानि, अन्येन कृतं) वञ्चनं=प्रतारणम्, च=पुनः, अपमानं=स्वतिरस्कारम् च न प्रकाशयेत्=परेभ्यो न श्रावयेत् ॥११५॥

क्योंकि—बुद्धिमान् पुरुषको अपने धनका नाश, मनका दुःख, अपने घरका दुराचारादि (गोपनीय विषय), किसी दूसरेसे अपना ठगा जाना तथा अपमानित होना इन पाँचोंको प्रकाशित नहीं करना चाहिये ॥११५॥

तथा च—अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरुषे।
मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत्कुतः सुखम् ॥११६॥

अन्वयः—दैवे अत्यन्तविमुखे यत्ने पौरुषे च व्यर्थे (सति) दरिद्रस्य मनस्विनः वनात् अन्यत् सुखं कुतः ? ॥११६॥

अत्यन्तेति—दैवे=भाग्ये, अत्यन्तविमुखे=अतिपराङ्मुखे, यत्ने=उद्योगे, पौरुषे=पराक्रमे च व्यर्थे=निष्फले, (सति) दरिद्रस्य=निर्धनस्य, मनस्विनः=विचारवतः अभिमानवतः (पुंसः) वनात्=अरण्यात्, अन्यत्=बिना, सुखम्=आनन्दः, कुतः=कुत्र, न कुत्रापीति भावः।

और कहा भी गया है—भाग्यके अत्यन्त प्रतिकूल होनेपर तथा पराक्रम और उद्योगके निष्फल होनेपर चतुर धनहीन पुरुषको जंगलके सिवाय सुख कहाँ है! अर्थात्—वह वनमें ही सुखी रह सकता है अन्यत्र नहीं ॥११६॥

अन्यच्च—मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति।
अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ॥११७॥

अन्वयः—मनस्वी कामं म्रियते (किं) तु कार्पण्यं न गच्छति, अनलः निर्वाणम् अपि आयाति (किन्तु) शीततां न याति ॥११७॥

मनस्वीति—मनस्वी=मनः अस्यास्तीति मनस्वी=विद्वान् (अभिमानी) नरः, कामं=यथेच्छम्, म्रियते=प्राणत्यागम् करोति, तु=किन्तु, कार्पण्यं=

कृपणस्य भावः कार्पण्यं = कदर्यताम्, 'कदर्ये कृपणक्षुद्रकिंपचानमितंपचाः' इत्यमरः, न गच्छति = न प्राप्नोति। तथा हि अनलः = अग्निः, निर्वाणं = कैवल्यम् 'मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणे'त्यमरः। नाशमिति भावः, आयाति = प्राप्नोति, (किन्तु) शीततां = शीतलभावम्, नयाति = न गच्छतीत्यर्थः ॥११७॥

और भी—विचारशील (स्वाभिमानी) पुरुष भले ही मृत्युका आलिंगन कर लेता है किन्तु अपनी दीनता नहीं दिखाता। जैसे—अग्नि भले ही बुझ जाय पर शीतल नहीं होती ॥११७॥

किञ्च—कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेत् विशीर्येत वनेऽथवा ॥११८॥

अन्वयः—मनस्विनः तु कुसुमस्तबकस्य इव द्वे वृत्ती (भवतः) सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेत् अथवा वने विशीर्येत ॥११८॥

कुसुमेति—कुसुमस्तबकस्य = कुसुमानां = पुष्पाणां स्तवकः = गुच्छकः तस्य, इव = पुष्पगुच्छकवत्, मनस्विनः = सहृदयस्य चतुरस्य द्वे वृत्ती = द्वौ व्यापारौ (स्तः) द्वे के इत्यत आह—सर्वेषां = सकलानां जनानाम्, मूर्ध्नि = मस्तके तिष्ठेत् = वर्तेत सर्वप्रधानं भूत्वा तिष्ठेदित्यर्थः। अथ = पक्षान्तरे, वने = अरण्ये, विशीर्णतामापद्येत ॥११८॥

और भी—सहृदय पुरुषका कार्य फूलके गुच्छोंकी तरह दो प्रकारका होता है, प्रथम तो सबके मस्तकपर रहे या वनमें ही खिलकर बिखर जाय। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार पुष्प किसी देवी या महापुरुषके मस्तकपर चढ़ता है या पुष्पोद्यानमें ही खिलकर बिखर जाता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी सर्वप्रधान ही बनकर रहते हैं अथवा वनमें जाकर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु किसी के आगे दीन वचन नहीं कहते ॥११८॥

यच्चात्रैव याच्ञया जीवनं तदतीव गर्हितम्।

यच्चेति—यच्च = यदपि अत्रैव = अस्मिन्नेव स्थाने, याच्ञया = भिक्षया जीवनं = प्राणधारणम्, तत् अतीव = अत्यन्तम् गर्हितं = निन्दितम्।

और जो यहाँ भीख मांगकर जीवन बिताना है वह तो अत्यन्त ही निन्दित है।

यतः—वरं विभवहीनेन प्राणैः सन्तर्पितोऽनलः।
नोपचारपरिभ्रष्टः कृपणः प्रार्थितो जनः ॥११९॥

अन्वयः—विभवहीनेन (पुरुषेण) प्राणैः (यत्) अनलः सन्तर्पितः

(भवति तत्) वरम्, (परन्तु) यत् उपचारपरिभ्रष्टः जनः प्रार्थितः (भवति तत्) न वरम् ॥ ११९ ॥

वरमिति—विभवहीनेन=धनहीनेन दरिद्रेणेति यावत्, (पुंसा) प्राणैः = जीवनैः, सन्तर्पितः=सम्यक् तोषितः, अनलः=अग्निः, वरं=श्रेष्ठम्, मृत्वा चिताग्नौ नाशो वरम् (किन्तु) उपचारपरिभ्रष्टः = उपचारात्—सत्कारात् परिभ्रष्टः = रहितः, कृपणः = कदर्यः, प्रार्थितः = याचितः जनः न वरमिति शेषः ॥ ११९ ॥

क्योंकि—धनहीन पुरुष अपने प्राणोंसे अग्निको प्रसन्न करे अर्थात् मरकर चितामें जल जाय यह अच्छा है, किन्तु मानरहित कृपण पुरुषसे याचना करना अच्छा नहीं ॥११९ ॥

दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्त्वात्परिभ्रश्यते
निःसत्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥ १२० ॥

अन्वयः—दारिद्र्यात् ह्रियम् एति, ह्रीपरिगतः सत्त्वात् परिभ्रश्यते, निःसत्त्वः परिभूयते परिभवात् निर्वेदम् आपद्यते, निर्विण्णः शुचम्, एति, शोकपिहितः बुद्ध्या परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयम् एति, अहो निधनता सर्वापदाम् आस्पदम् (अस्ति) ॥१२०॥

दारिद्र्यादिति—दारिद्र्यात्=दरिद्रस्य भावः दारिद्र्यं तस्मात् निर्धनत्वात्, ह्रियम्=लज्जाम् एति=प्राप्नोति । ह्रीपरिगतः = ह्रिया—लज्जया परिगतः—व्याप्तः (सन्) सत्त्वात्=पौरुषात् परिभ्रश्यते=त्यज्यते । निःसत्त्वः=पराक्रमशून्यः, परिभूयते = तिरस्क्रियते, जनैरिति शेषः । परिभवात् = तिरस्कारात् निर्वेदं =दुःखम् आपद्यते=प्राप्नोति । निर्विण्णः=दुःखितः, शुचं=शोकम् एति = गच्छति । शोकपिहितः=शोकयुक्तः बुद्ध्या = प्रतिभया, परित्यज्यते=हीयते, निर्बुद्धिः = बुद्धिरहितः, क्षयं = नाशम् एति = प्राप्नोति । अहो ! इति विस्मये, आश्चर्ये वा, निधनता = धनशून्यता, सर्वापदाम्=समस्तापत्तीनाम् , आस्पदम् = स्थानम्, अस्तीति शेषः ॥ १२० ॥

निर्धनतासे मनुष्य लज्जित होता है, लज्जित पुरुष पराक्रमहीन हो जाता है, पराक्रमहीन मनुष्य दूसरेसे अपमानित होता है, और अपमानसे दुःखित होता है, दुःखी शोकको प्राप्त करता है, शोकाकुल बुद्धिरहित हो जाता है और

बुद्धिहीन पुरुषका नाश हो जाता है। अहो! निर्धनता सभी आपत्तियोंका स्थान है ॥१२०॥

अपि च—सेवेव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्।
हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥ १२१ ॥

अन्वयः—सेवा अखिलं मानम् इव, ज्योत्स्ना तमः इव, जरा लावण्यम् इव हरिहरकथा दुरितम् इव अर्थिता गुणशतमपि हरति ॥१२१॥

सेवेति—सेवा=शुश्रूषा, अखिलं=सम्पूर्णम्, मानं=सम्मानम् इव=यथा, ज्योत्स्ना=कौमुदी, तमः=अन्धकारम् इव=यथा, जरा=वृद्धावस्था, लावण्यं=सौन्दर्यम् यथा, हरिहरकथा=विष्णुशिवकीर्तनम्, दुरितं=पापम्, इव =यथा, (तथा) अर्थिता=याचना गुणशतमपि=अनन्तानपि गुणान् (पुरुषस्य) हरति=नाशयति ॥ ११२ ॥

और भी—जिस प्रकार दूसरेकी सेवा (नौकरी) सम्मानको, चाँदनी अन्धकारको, बुढ़ापा सौन्दर्यको और विष्णु-शिवकी कथा सभी पापोंको नाश करती है, उसी प्रकार याचना (पुरुषके) सैकड़ों गुणोंको नाश करती है ॥१२१॥

इति विमृश्य, तत्किमहं परपिण्डेनात्मानं पोषयामि। कष्टं भोः! तदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम्।

इतीति—इति=इत्थम् विमृश्य=विचार्य, तत् किमहं, परपिण्डेन=अन्यदत्तभोजनग्रासेन, आत्मानम्=स्वशरीरम्, पोषयामि=पालयामि, भोः= इति सम्बोधने, कष्टं=दुःखम्, अस्ति, तदपि=परदत्तभोजनेन जीवनमपि, द्वितीयम्=अपरम्, मृत्युद्वारम्=मृत्योः द्वारम्।

इस प्रकार—सोचकर कि फिर मैं क्यों दूसरेसे दिए गये भोजनसे अपना पालन करूँ। अहो! कष्ट है कि वह भी मृत्युका दूसरा द्वार है। अर्थात् एक प्रकारकी मृत्यु ही है।

रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥१२२॥

अन्वयः—रोगी, चिरप्रवासी, परान्नभोजी परावसथशायी (च) यत् जीवति तत् (तस्य) मरणम् यत् (च तस्य) मरणं सः अस्य विश्रामः (अस्ति) ॥१२२॥

रोगीति—रोगी=रोगः अस्यास्तीति रोगी—रोगग्रस्तः, चिरप्रवासी= चिरं प्रवसति इति, चिरकाल विदेशे निवासकारी, परान्नभोजी=परस्य अन्नं

भोक्तुं शीलमस्येति, अन्यान्नभोक्ता, परावसथशायी परस्य आवसथे—निवासगृहे शेते तच्छील इति, परगृहशयनशीलः जन इति शेषः, यत् जीवति=प्राणान् धारयति, (तस्य) तत् मरणं=मरणतुल्यम्, वर्तते (तथा च) यत् मरणं=यन्मृत्युः, सः अस्य=जनस्य, विश्रामः=शान्तिः वर्तते इति शेषः ॥१२२॥

रोगपीड़ित, अधिक दिनों तक विदेशमें रहनेवाले, दूसरेके सहारे भोजन करनेवाले और दूसरेके घर सोनेवाले का जीवन ही मरण है और मरण ही शान्ति है ॥ १२२ ॥

इत्यालोच्याऽपि लोभात् पुनरपि अर्थं ग्रहीतुं ग्रहमकरवम् ।

इतीति—इति=उक्तप्रकारेण, आलोच्य=विचार्य, अपि, लोभात्=गर्धातः, पुनरपि=भूयोऽपि, अर्थं=धनम्, ग्रहीतुं=अधीनीकर्तुम्, ग्रहम्=आग्रहम्, विचारमिति यावत्, अकरवम्=कृतवान्, अहमिति शेषः ।

इस प्रकार विचारकर भी—लोभसे फिर मैंने धन ग्रहण करनेका विचार (आग्रह) किया ।

तथा चोक्तम्—लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् ।
तृषार्त्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥१२३॥

अन्वयः—लोभेन (मानवस्य) बुद्धिः चलति, लोभः तृषां जनयते, तृषार्तः मानवः इह परत्र च दुःखम् आप्नोति ॥ १२३ ॥

लोभेति—लोभेन=गर्धया, बुद्धिश्चलति=मतिर्विचलति, लोभः, तृषां=तृष्णाम् जनयते=उत्पादयति, तृषार्त्तः=तृष्णाभिभूतः, मानवः=मनुष्यः, परत्र=परलोके, इह च=अत्र लोके च, दुःखम्=कष्टम् आप्नोति ॥१२३॥

और कहा भी गया है—लोभसे बुद्धि चञ्चल हो जाती है, लोभ ही तृष्णाको, उत्पन्न करता है, तृष्णासे पीड़ित मनुष्य इस लोक तथा परलोक दोनों जगह कष्ट प्राप्त करता है ॥ १२३ ॥

ततोऽहं मन्दं मन्दमुपसर्पंस्तेन वीणाकर्णेन जर्जरवंशखण्डेन ताडितश्चाचिन्तयम्—

तत इति—ततः=तदनन्तरम्, अहं=हिरण्यकः, मन्दं मन्दं=शनैः-शनैः, उपसर्पन्,=गच्छन्, तेन=प्रागुक्तेन वीणाकर्णेन=तन्नामककर्त्ता परिव्राजकेन, जर्जरवंशखण्डेन=जीर्णवंशखण्डेन (करणेन) ताडितः=आहतः, च=पुनः, (अहम्) अचिन्तयम्=विचारं कृतवान् ।

बाद उस वीणाकर्णने धीरे-धीरे मुझे जाते हुए देखकर सड़े बाँसके टुकड़ेसे मारा और मैं सोचने लगा।

धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रियः।
सर्वा एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम् ॥१२४॥

अन्वयः—यस्य मानसं तुष्टं न (अस्ति) तस्य सर्वाः आपदः (जायन्ते)। हि (सः) धनलुब्धः असन्तुष्टः अनियतात्मा अजितेन्द्रियः (च भवति)॥

धनलुब्ध इति—यस्य=पुंसः मानसम्=चित्तम् न तुष्टम्=न सन्तुष्टम् (वर्तते) तस्य=जनस्य, सर्वाः=समस्ताः, आपदः=विपत्तयः समापतन्ति। हि=यतः, (सः) धनलुब्धः=धनासक्तः, असन्तुष्टः=सन्तोषहीनः, अनियतात्मा=अनियतः आत्मा यस्य सः संयमहीनः, अजितेन्द्रियः=अवशेन्द्रियो भवतीति भावः ॥१२४॥

जो पुरुष सन्तोषी नहीं है उसे सारी विपत्तियाँ आ घेरती हैं। क्योंकि वह लोभी, असन्तुष्ट, असंयमी और इन्द्रियासक्त हो जाता है॥ १२०॥

तथा च—सर्वाः संपत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ॥१२५॥

अन्वयः—यस्य मानसं सन्तुष्टम् (अस्ति) तस्य सर्वाः सम्पत्तयः (जायन्ते) ननु उपानद्गूढपादस्य भूः चर्मावृता इव (भवति)॥ १२५॥

सर्वा इति—यस्य=पुंसः, मानसं=अन्तःकरणम्, सन्तुष्टं=सन्तोषयुक्तम् (वर्तते) तस्य, सर्वाः=समस्ताः सम्पत्तयः=समृद्धयः (वर्तन्ते)। ननु=इति निश्चये, उपानद्गूढपादस्य–उपानद्भ्यां=पदायताभ्याम् गूढौ=आच्छादितौ पादौ यस्य, तस्य, 'पादूरुपानत्स्त्री सैवानुपदीना पदायता' इत्यमरः। भूः=पृथ्वी चर्मावृता=चर्मणा आच्छादिता इव, भवतीति भावः ॥१२५॥

और भी—जिसका मन सन्तुष्ट है उसे सारी सम्पत्तियाँ मिली हैं। जैसे जूता पहने हुए पुरुषको पृथ्वी ही चमड़ेसे ढकी हुई मालूम पड़ती है ॥१२५॥

अपरं च—सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥१२६॥

अन्वयः—सन्तोषामृततृप्तानां शान्तचेतसां (जनानां) यत् सुखं भवति तत् धनलुब्धानाम् इतः च इतः धावतां कुतः (स्यात्?)॥ १२६॥

सन्तोषेति—सन्तोषामृततृप्तानां=सन्तोषः तुष्टिः, एव अमृतं तेन तृप्तानां शान्तचेतसाम=स्थिरचित्तानाम (जनानाम्) यत् सुखम्=आनन्दः, (भवति),

तत्, सुखं, इतश्चेतश्च = यत्र तत्र, धावतां = परिभ्रमताम्, धनलुब्धानां = धनाकाङ्क्षिणाम्, कुतः = कस्मात् स्यादिति भावः ॥१२६॥

और भी सन्तोषरूपी अमृतसे तृप्त शान्त अन्तःकरणवालों को जो सुख है वह सुख इधर-उधर घूमनेवाले धनलोभियोंको कहाँ प्राप्त हो सकता है ॥ १२६ ॥

किञ्च—तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥१२७॥

अन्वयः—येन आशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यम् अवलम्बितं तेन सर्वमेव अधीतम्, तेन सर्वं श्रुतम् अनुष्ठितं (च) ॥१२७ ॥

तेनेति—तेन = पुरुषेण, अधीतं = शास्त्राध्ययनं कृतम्, तेन, श्रुतं = सर्वं श्रवणं कृतम्, तेन, सर्वं = समस्तम्, अनुष्ठितम् = सम्पादितम् । येन = पुरुषेण, आशाः = मनोरथाः, पृष्ठतः = पश्चात् कृत्वा, नैराश्यं = तृष्णात्यागः, अवलम्बितम् = आश्रितम् ॥ १२७ ॥

और—जिसने आशाको छोड़ निराशाका अवलम्बन किया है, उसने (सम्पूर्ण शास्त्रोंको) पढ़ा, उसने सुना (शास्त्रों को) और उसने ही सभी कर्तव्य कार्यों को किया (ऐसा समझना चाहिए) ॥१२७॥

अपि च—असेवितेश्वरद्वारमदृष्टविरहव्यथम् ।
अनुक्तक्लीबवचनं धन्यं कस्यापि जीवनम् ॥१२८॥

अन्वयः—असेवितेश्वरद्वारम् अदृष्टविरहव्यथम् अनुक्तक्लीबवचनं कस्य अपि जीवनं धन्यम् (अस्ति) ॥ १२८ ॥

असेवीति—असेवितेश्वरद्वारं = न सेवितम् = अनाश्रितम् = ईश्वरस्य धनिकस्य, द्वारं यस्मिंस्तत् = धनिकद्वारानाश्रयि, अदृष्टविरहव्यथम् = न दृष्टा विरहस्य व्यथा यत्र तत् = अननुभूतवियोगदुःखम्, अनुक्तक्लीबवचनं = अनुक्तं क्लीबं = दीनं वचनं यत्र तत् अकथितकातरवचः, कस्यापि = नरस्य, जीवनम् = प्राणधारणम्, धन्यं = कृतार्थम्, अस्ति इति शेषः ॥१२८॥

और भी—जिसने जीवनमें कभी किसी धनी पुरुषके दरवाजेकी सेवा नहीं की, जिसने विरहके कष्ट न सहे, जिसने अपनी जिह्वासे गरीबी के शब्द न निकाले ऐसे विरले—महापुरुषका जीवन धन्य है—अर्थात् सार्थक है ॥ १२८॥

यतः—न योजनशतं दूरं वाह्यमानस्य तृष्णया ।
सन्तुष्टस्य करप्राप्तेऽप्यर्थे भवति नादरः ॥१२९॥

अन्वयः—तृष्णया वाह्यमानस्य (जनस्य) योजनशतम् (अपि) दूरं न (भवति, किन्तु) सन्तुष्टस्य करप्राप्ते अपि अर्थे आदरः न भवति ॥१२९॥

नेति—तृष्णया=लिप्सया, वाह्यमानस्य = प्रेर्यमाणस्य, आकृष्यमाणस्य पुरुषस्येति यावत्, योजनशतं=योजनानां शतमपि शतयोजनपरिमितमपि स्थानम्, दूरं = विप्रकृष्टम्, न भवति । सन्तुष्टस्य = सन्तोषयुक्तान्तःकरणस्य, करप्राप्ते = हस्तगते, अपि अर्थे = धने, आदरः न = सत्कारो न, भवतीति शेषः ॥१२९॥

जो मनुष्य तृष्णाके वशीभूत हैं उनके लिए सौ योजन (४ कोसका एक योजन होता है) भी दूर नहीं होता और जो पुरुष सन्तुष्ट हैं, उनके लिये हाथमें आये हुए धनका भी आदर नहीं होता है ॥१२९॥

तदत्रावस्थोचितकार्यपरिच्छेदः श्रेयान् ।

तदिति—तत् = तस्मात्कारणत् अत्र = अस्मिन् विषये, अवस्थोचितकार्यपरिच्छेदः = कार्यस्य परिच्छेदः = निश्चयः इति कार्यपरिच्छेदः अवस्थायाः उचितः कार्यपरिच्छेदः इति अवस्थोचितकार्यपरिच्छेदः = स्थितियोग्यकार्यनिश्चयः श्रेयान् = श्रेष्ठः ।

इसलिये अब अपनी अवस्थाके अनुकूल कार्यका निश्चय करना उचित है ।

यतः—को धर्मो भूतदया किं सौख्यमरोगिता जगति जन्तोः ।
कः स्नेहः सद्भावः किं पाण्डित्यं परिच्छेदः ॥१३०॥

अन्वयः—जगति जन्तोः धर्मः कः ? भूतदया, सौख्यं किम् ? अरोगिता स्नेहः कः ? सद्भावः, पाण्डित्यं किम् ? परिच्छेदः ॥१३०॥

क इति—जगति = संसारे, जन्तोः = प्राणिनः धर्मः कः ? इति प्रश्नः भूतदया = भूतेषु—प्राणिषु दया, इत्युत्तरम् । सौख्यं किं ?—अरोगिता = अरोगिणो भावः, नीरोगितेति यावत् । स्नेहः = प्रेम, कः ? सद्भावः=सर्वप्राणिषु सद्भावना । पाण्डित्यं किं ? परिच्छेदः=कर्तव्याकर्तव्यनिश्चयः । अत्र सर्वत्र अस्तीति क्रिया शेषः, प्रथम चत्वारि प्रश्नोत्तराणि च बोद्धव्यानि ॥१३०॥

क्योंकि—(प्रश्न) ससारमें मनुष्योंका धर्म क्या है ? (उत्तर) प्राणियोंपर दया । (प्र०) सुख क्या है ? (उ०) अरोग रहना । (प्र०) स्नेह क्या है ? (उ०) सभी जीवोंपर समता रखना (प्र०) पण्डिताई क्या है ! (उ०) कर्तव्य तथा अकर्तव्यका निश्चय करना ॥१३०॥

तथा च—परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः ।
अपरिच्छेदकर्तॄणां विपदः स्युःपदे पदे ॥१३१॥

अन्वयः—यदा विपत्तयः आपन्नाः (स्युः, तदा) परिच्छेदः पाण्डित्यं (भवति) अपरिच्छेदकर्तॄणां (जगत्यां) पदे पदे विपदः स्युः ॥१३१॥

परिच्छेद इति—यदा=यस्मिन् समये, आपन्नाः=प्राप्ताः, विपत्तयः= आपदः, स्युः= वर्तन्ते, तदा परिच्छेदः=कर्तव्याकर्तव्यविवेकः, पाण्डित्यं=वैदुष्यम्, अपरिच्छेदकर्तॄणां=सदसद्विवेकशून्यानाम्, पदे पदे = प्रतिपदम्, विपदः = आपदः, स्युः = भवेयुः ॥१३१॥

और भी—जब आपत्तियाँ आ जायँ तो कर्तव्याकर्तव्य-निर्णयपूर्वक काम करना ही पाण्डित्य है। 'यह अच्छा है और यह बुरा है' इस विचारसे शून्य पुरुषोंके लिये पग-पगपर विपत्तियाँ रहतीं हैं ॥१३१॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे स्वात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥१३२॥

अन्वयः—कुलस्य अर्थे एकं (जनम्) त्यजेत्, ग्रामस्य अर्थे कुलं त्यजेत् जनपदस्य अर्थे ग्रामं त्यजेत् स्वात्मार्थे (च) पृथिवीं त्यजेत् ॥१३२॥

त्यजेदिति—कुलस्य = वंशस्य, अर्थे=कृते, कुलमर्यादापालनायेत्यर्थः । एकं = कमपीष्टम्, (जनं) त्यजेत् = मुञ्चेत् । ग्रामस्य=नगरस्य अर्थे= कृते, हितायेत्यर्थं कुलं= स्ववंशं, त्यजेत्, जनपदस्य= देशस्य, अर्थे=कृते, ग्रामं त्यजेदिति, स्वात्मार्थे =स्वस्य आत्मा, तस्य अर्थः, तस्मिन्, पृथिवीं = भूमिं, त्यजेत् ऐहिकलीलां परिहरेदित्यर्थः ॥१३२॥

वंशमर्यादाकी रक्षाके लिए एक प्रियवस्तुको छोड़ दे, गाँवके लिए अपने वंशको छोड़ दे। देशके लिये गाँव छोड़ दे और अपने लिये संसार ही छोड़ दे ॥१३२॥

अपरं च—पानीयं वा निरायासं स्वाद्वन्नं वा भयोत्तरम् ।
विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः ॥१३३॥

अन्वयः—निरायासं पानीयं वा भयोत्तरम् स्वादु अन्नं वा (अनयोः) यत्र निर्वृतिः (अस्ति) तत् सुखम् (इति) खलु विचार्य पश्यामि ॥१३३॥

पानीयमिति—निरायासं=आयासरहितम्, पानीयं=जलम्, भयोत्तरं = भयानन्तरम्, स्वाद्वन्नं = सुस्वादुयुक्तम् अन्नम्, वा, अनयोर्मध्ये, विचार्य=विचिन्त्य

खलु = इति निश्चयेन, पश्यामि = अवलोकयामि, यत्र निर्वृतिः = शान्तिः। (अस्ति) तत् सुखं = सुखकरम्, निश्चिनोमीति भावः ॥१३३॥

बिना यत्नके मिलनेवाला जल और भयके बाद स्वादिष्ट भोजन, इन दोनोंमें विचारकर देखता हूँ तो जो बिना प्रयत्नके मिले वही अच्छा है। अर्थात् जलमात्र भी अनायास प्राप्त हो तो अच्छा है, किन्तु भय के बाद स्वादिष्ट भोजन भी अच्छा नहीं ॥ १३३ ॥

इत्यालोच्याहं निर्जनवनमागतः।

इति = इदम्, आलोच्य = विचार्य, निर्जनवनं — जनशून्यम् वनम्, अहं = हिरण्यकः, आगतः = समायातः।

ऐसा सोचकर मैं निर्जन वनमें आया हूँ।

यतः — वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम्।
तृणानि शय्यापरिधानवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥ १३४ ॥

अन्वयः — व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयं, पक्वफलाम्बुभोजनम्, (यत्र) तृणानि शय्या परिधानवल्कलं (च, तादृशं) वनं वरम्, (अस्ति, किन्तु) बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् न वरम् (अस्ति) ॥ १३४॥

वरमिति — व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं = व्याघ्राश्च गजेन्द्राश्च तैः सेवितम्, द्रुमालयं = द्रुमः = वृक्षः आलयो गृहं यत्र तत्, पक्वफलाम्बुभोजनम् = पक्वानि फलानि अम्बु च भोजनम् यत्र तत्, तृणानि = शष्पाणि, शय्या = शयनस्थानम्, परिधानवल्कलं = परिधानम् — आच्छादनीयं वल्कलं = वृक्षत्वग् यत्र तद् वनं = अरण्यम् वरं, (किन्तु) बन्धुमध्ये = कुटुम्बमध्ये, धनहीनजीवनं धनेन हीनं जीवनम् तुच्छजीवनमिति यावत्, न वरम् ॥१३४॥

बाघ और हाथियोंसे व्याप्त, जहाँपर वृक्ष ही घर है, पके हुए फल और जल ही भोजन हैं, घास से भरी भूमि ही शय्या है, वृक्षकी छाल ही वस्त्र है ऐसे जंगल श्रेष्ठ हैं, किन्तु अपने सजातीयों में निर्धन होकर रहना ठीक नहीं ॥१३४॥

ततोऽस्मत्पुण्योदयादनेन मित्रेणाहं स्नेहानुवृत्त्यानुगृहीतः, अधुना च पुण्यपरम्परया भवदाश्रयः स्वर्ग एव मया प्राप्तः।

तत इति—ततः=अरण्यप्राप्त्यनन्तरम्, अस्मत्पुण्योदयात्=अस्माकं पुण्यस्य उदयः तस्मात्=मत्सत्कर्मोदयात्, अनेन=लघुपतनकनाम्ना काकेन, मित्रेण=सुहृदा, अहं=हिरण्यकः, स्नेहानुवृत्या=स्नेहस्य अनुवृत्तिः तया—प्रेमाधिक्येन, अनुगृहीतः=कृतार्थीकृतः। अधुना=साम्प्रतम्, पुण्यपरम्परया=पुण्यानां परम्परा तया सत्कर्मफलसमुदायेन, भवदाश्रयः=भवतः—कच्छपस्य आश्रयः—आश्रयणम्, स्वर्ग एव=देवलोक एव, मया=हिरण्यकेन, प्राप्तः।

इस वनमें आनेके बाद मेरे पुण्यके उदय होनेसे इस मित्रने अत्यन्त स्नेहसे मेरा सत्कार किया और इस समय पुण्योंके प्रतापसे ही आपका आश्रय रूप स्वर्ग मुझे मिला है।

यतः—संसारविषवृक्षस्य द्वे एव रसवत्फले।
काव्यामृतरसास्वादः संगमः सुजनैः सह॥ १३५॥

अन्वयः—काव्यामृतरसास्वादः सुजनैः सह सङ्गमः (च) इमे द्वे एव संसारविषवृक्षस्य रसवत्फले (स्तः)॥१३५॥

संसारेति—संसारविषवृक्षस्य=विषस्य वृक्षः विषवृक्षः, संसार एव विषवृक्षः तस्य—संसाररूपविषद्रुमस्य, काव्यामृतरसास्वादः=काव्यमेवामृतं तस्य काव्यामृतस्य रसः शृङ्गारादिः तस्य आस्वादः=काव्यरूप-अमृतरसस्यानुभवः (इत्येकम्), सुजनैः=साधुभिः सह, संगमः—समागमः, (इत्यपरम्, एवमिमे) द्वे एव=द्वयमेव, रसवत्फले=रसयुक्ते फले, भवत इति शेषः॥ १३५॥

संसाररूपी विष-वृक्ष के दो ही रसयुक्त फल हैं। एक—काव्यरूप अमृतरसका आस्वादन करना और दूसरा—सदा सज्जनोंका संग करना॥१३५॥

मन्थर उवाच—

मन्थरः=तदाख्यः कच्छपः उवाच=जगाद।

मन्थर बोला—

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवन-
मायुष्यं जललोलबिन्दुचपलं फेनोपमं जीवितम्।
धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनं
पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते॥ १३६॥

अन्वयः—अर्थाः पादरजोपमाः (सन्ति) यौवनं गिरिनदीवेगोपमम् (अस्ति)

आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलम् (अस्ति) जीवितं फेनोपमम् (अस्ति, एवं विचार्य) यः

निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनं धर्मं न करोति (सः) जरापरिगतः पश्चात्तापयुतः (सन्) शोकाग्निना दह्यते ॥ १३६ ॥

अर्था इति—अर्थाः=धनानि, पादरजोपमाः=पादस्य—चरणस्य रजः धूलिः उपमा येषां ते—चरणधूलितुल्याः सन्तीति शेषः, एवमग्रेऽपि वचनविपरिणामेन सर्वत्र बोध्यम् । यौवनः=यूनः भावः यौवनम्—तारुण्यम्, गिरिनदीवेगोपमम्=गिरेः पर्वतस्य नदी तस्याः वेगः उपमा यस्य तत्, अस्ति । आयुष्यं=जीवनम्, जललोलबिन्दुचपलं=जलस्य लोलाः चञ्चलाः ये बिन्दवः तद्वत् चपलं—चञ्चलम्, जीवितम्=आयुः, फेनोपमम्=फेनस्य—जलकफस्य, उपमा—यस्य तत् (एवं विचार्य), निन्दितमतिः=निन्दिता मतिः यस्य सः कुत्सितधीः, यः=पुमान्, स्वर्गार्गलोद्घाटनं=स्वर्गस्य अर्गलं—विस्कम्भः तस्य उद्घाटनम्—विघटनम्, धर्मं=पुण्यम् न करोति, जरापरिगतः=वृद्धावस्थया युक्तः, पश्चात्तापयुतः=पश्चात्—तापेन=अनुतापेन युतः—युक्तः-(सः) शोकाग्निना=शोकवह्निना, दह्यते=दुःखी भवतीति भावः ॥ १३६ ॥

धन, पैरकी धूलिके समान है, युवावस्था पर्वतकी नदीके समान शीघ्र चलनेवाली है, आयु जलबिन्दुके समान चञ्चल है और जीवन जलके फेन तुल्य है । (यह विचारकर) जो मन्दबुद्धि पुरुष स्वर्गकी आगल (सिकड़ी) खोलनेवाले धर्मको नहीं करता है वह बुढ़ापेसे युक्त अन्तकालमें सन्तप्त हो शोकरूपी अग्निसे जलता है ॥ १३६ ॥

युष्माभिरतिसञ्चयः कृतः । तस्याऽयं दोषः, शृणु—

युष्माभिरिति—युष्माभिः=भवद्भिः, अतिसंचयः=बहुसञ्चयः, कृतः तस्य=अतिसञ्चयस्य, अयम्=एषः, दोषः=अवगुणः, अस्ति ।

आपने अत्यधिक सञ्चय किया उसीका यह दोष है सुनिये—

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ॥ १३७ ॥

अन्वयः—तडागोदरसंस्थानाम् अम्भसां परीवाह इव उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव रक्षणं हि ॥ १३७ ॥

उपार्जितानामिति—तडागोदरसंस्थानां=तडागमध्यस्थितानाम् अम्भसां =जलानाम्, परीवाहः—निष्कासनमार्गं इव उपार्जितानां=सञ्चितानाम्, वित्तानां=धनानाम्, त्याग एव=सत्पात्रे दानमेव, रक्षणं=पालनम् अस्ति ॥१३७॥

सरोवरमें स्थित जलका निष्कासनमार्ग (कनवाह) काटनेके समान (अर्थात् बार-बार जल निकालकर जैसे सरोवरकी शुद्धि की जाती है उसी प्रकार) उपार्जित धनका सत्पात्रमें बार-बार दान देना ही उसकी रक्षा है।

अन्यच्च—यदधोऽधः क्षितौ वित्तं निचखान मितंपचः।
तदधोनिलयं गन्तुं चक्रे पन्थानमग्रतः ॥१३८॥

अन्वयः—मितंपचः यत् वित्तं क्षितौ निचखान तत् अधोनिलयं गन्तु अग्रतः पन्थानं चक्रे ॥ १३८ ॥

तदिति–मितंपचः = कृपणः, यत् वित्तं = धनम्, क्षितौ = पृथिव्याम् अधोऽधः भूगर्भभागे, निचखान = निखातवान्, तत्, (आत्मनः) अधोनिलयं = पातालम्, गन्तुम्, अग्रतः = प्रथमतः, पन्थानं = मार्गम्, चक्रे = कृतवान् ॥१३८॥

और भी—कृपण पुरुष धनको गाड़नेके लिए जो पृथ्वीको खोदता है वह मानो अपने पातालमें जानेके लिये पहलेसे ही मार्ग बना लेता है ॥१३८॥

अन्यच्च—निजसौख्यं निरुन्धानो यो धनार्जनमिच्छति।
परार्थभारवाहीव क्लेशस्यैव हि भाजनम् ॥१३९॥

अन्वयः—यः (जनः) निजसौख्यं निरुन्धानः धनार्जनम् इच्छति (सः) परार्थभारवाही इव क्लेशस्य एव भाजनं भवति हि ॥१३९॥

निजेति—निजसौख्यं = निजस्य–स्वस्य, सौख्यम्—सुखम्, निरुन्धानः = त्यजन्, यः = पुमान्, धनार्जनं = धनस्य–द्रविणस्य, अर्जनं = सञ्चयम्, इच्छति = अभिलषति (सः) परार्थभारवाहीव=परस्मै इदं परार्थं, परार्थं भारं वहति तच्छीलः परार्थभारवाही इव—अन्यस्मै भारवाहक इव, क्लेशस्यैव = दुःखस्यैव, भाजनं = पात्रम्, भवति ॥१३९॥

जो प्राणी अपने सुखको रोकता हुवा केवल धन ही कमाता है, वह दूसरेके लिये बोझ उठानेवालेकी तरह दुःखका ही भागी बनता है ॥१३९॥

अपरं च—दानोपभोगहीनेन धनेन धनिनो यदि।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम् ॥१४०॥

अन्वयः—दानोपभोगहीनेन धनेन यदि धनिनः (भवन्ति तर्हि) तेन एव धनेन वयं धनिनः किं न भवामः ॥१४०॥

दानेति—दानोपभोगहीनेन = दानश्च उपभोगश्च, इति दानोपभोगौ—त्यागभोगौ ताभ्यां हीनेन—रहितेन, भूमौ निहितेनेत्यर्थः; धनेन = सम्पदा (यदि केचित्) धनिनः = धनिकाः (भवन्ति तर्हि) तेनैव = धनेन भूमिस्थितेनैव,

(तेषां कृपणानां धनेन) वयम् = निर्धनाः, धनिनः = द्रविणयुक्ताः किं = कथम्
न भवामः, अपि तु भवाम एवेत्यर्थः ॥१४०॥

और भी—दान और भोगसे रहित पृथ्वीमें गड़े हुए धनसे यदि (ये कृपण) धनी कहलाते हैं तो क्या हम लोग भी उसी धनसे धनी नहीं हैं ? अर्थात् अवश्य हैं ॥१४०॥

अन्यच्च—न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने ।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः ॥१४१॥

अन्वयः—कृपणस्य धनं न देवाय न विप्राय, न बन्धुभ्यः न आत्मने (भवति किन्तु) वह्नितस्करपार्थिवैः (क्षयं) याति ॥१४१॥

नेति—कृपणस्य = कदर्यस्य, धनं = वित्तम्, न देवाय = न सुराय, न विप्राय = न ब्राह्मणाय न बन्धुभ्यः, आत्मने च न = स्वोपभोगाय च न भवति, (किन्तु) वह्नितस्करपार्थिवैः = वह्निः = अग्निः, तस्करः – चोरः, पार्थिवः = राजा तैः याति = ह्रियते इत्यर्थः ॥१४१॥

और—कृपण पुरुषका धन देवकार्य, ब्राह्मणभोजनादि, कुटुम्बी तथा अपने कार्यके लिए उपयोगी नहीं होता, किन्तु अग्नि, चोर या राजाओंसे नष्ट किया जाता है, अर्थात्—अग्निमें भस्म हो जाता है या चोर चुराकर ले जाते हैं या किसी अपराधमें राजा दण्ड में ले लेता है ॥१४१॥

दानोपभोगहीनाश्च दिवसा यान्ति यस्य वै ।
स चर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥ १४२ ॥

अन्वयः—यस्य च (धनिनः) दिवसाः दानोपभोगहीनाः यान्ति स वै श्वसन् अपि चर्मकारभस्त्रा इव न जीवति ॥१४२॥

दानेति—यस्य = संपच्छालिनः पुंसः, दानोपभोगहीनाः = दानोपभोगाभ्यां रहिताः, दिवसाः = दिनानि, यान्ति = गच्छन्ति, वै = निश्चयेन, सः धनयुक्तः पुमान्, श्वसन्नपि = श्वासं गृह्णन् अपि, चर्मकारभस्त्रेव = चर्मकारस्य भस्त्रा = चर्मप्रसेविका इव "तैजसावर्त्तनी मूषा भास्त्रा चर्मप्रसेविका" इत्यमरः, न जीवति = प्राणधारणं न करोति, अपि तु, स मृत एवेत्यर्थः ॥१४२॥

जिस धनवान् पुरुषके दिन दान और भोगके बिना बीतते हैं वह लोहारकी धौंकनीके समान सांस लेता हुआ भी जीता नहीं है। अर्थात् मृत तुल्य है ॥१४२॥

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते
बलेन किं यश्च रिपून् न बाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥१४३॥

अन्वयः—यः (धनिकः) न ददाति न (च) अश्नुते (तस्य) धनेन किम्? यः च रिपून् न बाधते (तस्य) बलेन किम्? यः च धर्मं न आचरेत् (तस्य) श्रुतेन किम्? यः जितेन्द्रियः न भवेत् तस्य आत्मना किम्? ॥१४३॥

धनेनेति—यः = धनी, न ददाति = दानं न करोति, न अश्नुते = न भुङ्क्ते, (तस्य) धनेन = सम्पदा किम्? यः = बलवान् रिपून् = शत्रून्, न बाधते = न रुणद्धि, (तस्य) बलेन किम्? यः = शास्त्रज्ञः पुमान्, धर्मम् = आचारादिकम्, न आचरेत् = न पालयेत्, (तस्य) श्रुतेन = शास्त्रज्ञानेन किम्! यः = पुरुषः, जितेन्द्रियः = वशी, न भवेत् (तस्य) आत्मना = जन्मना किं? न किमपि फलमित्यर्थः ॥१४३॥

जो धनवान् न दान देता है, न भोग करता है, उसके धन से क्या फल? जो बलवान् शत्रुको परास्त नहीं करता, उसके बलसे क्या फल? जो विद्वान् धर्म का आचरण नहीं करता, उसकी विद्या का क्या फल? और जो इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं रखता है, उसके जीवनसे क्या फल है? अर्थात् ये सभी व्यर्थ हैं ॥१४३॥

अपि च—दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥१४४॥

अन्वयः—दानं, भोगः, नाशः (इति) वित्तय तिस्रः गतयः (भवन्ति) यः न ददाति न (च) भुङ्क्ते तस्य (वित्तस्य) तृतीया गतिः भवति ॥१४४॥

दानमिति—वित्तस्य = धनस्य, दानं = त्यागः, उपभोगः = सुखभोगः, नाशः = विनाशः (इति), तिस्रः = त्रिसंख्याकाः, गतयः = अवस्थाः, भवन्ति = जायन्ते। यः = धनवान्, न ददाति = न दानं करोति, न भुङ्क्ते = नाश्नुते, तस्य तृतीया (नाशात्मिका) गतिः = अवस्था, भवति = जायते ॥१४४॥

और भी—दान, भोग, और नाश ये तीन गतियां धन के लिए कही गयी हैं; जो न देता है, न स्वयं उपभोग करता है उसके धनकी तीसरी गति होती है। अर्थात् वह नष्ट हो जाता है ॥१४४॥

असंभोगेन सामान्यं कृपणस्य धनं परैः ।
अस्येदमिति सम्बन्धो हानौ दुःखेन गम्यते ।। १४५ ।।

अन्वयः—कृपणस्य धनम् असम्भोगेन परैः सामान्यं (भवति, किन्तु) हानौ (सत्याम्) दुःखेन इदम् अस्य इति सम्बन्धः गम्यते ।।१४५।।

असंभोगेनेति—कृपणस्य = कदर्यस्य, धनं = द्रविणम्, असंभोगेन = न सम्भोगः, असम्भोगः तेन = उपभोगाभावेन, परैः = अन्यैः, सामान्यं = तुल्यम् (अस्ति, किन्तु) हानौ = नाशे, दुःखेन = क्लेशेन, अस्य = पुरुषस्य, इदं = धनम् इति सम्बन्धः, गम्यते = ज्ञायते ।।१४५।।

कृपण पुरुषका धन उपभोगमें न आनेके कारण दूसरोंके धनके बराबर है। किन्तु चोरी वगैरह हो जाने पर जब उसको क्लेश होता है तब 'इसका वह धन था' यह जाना जाता है। अभिप्राय यह है कि—दान या स्वयं उपभोग न करनेसे वह धन दूसरेके धनके तुल्य है, किन्तु नाश होने पर जब वह संग्रहकर्ता मनुष्य दुःखी होता है तब 'उसका वह धन था' यह ज्ञात होता है, अर्थात् दूसरेको तो उस धनका दुःख भी नहीं होता, केवल संग्रहकर्त्ताको ही दुःख होता है। अतः धनका केवल संग्रह ही न करे, किन्तु उसका दान एवं उपभोग आदि भी करना चाहिये ।।१४५।।

दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम् ।
वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतच्चतुष्टयं लोके ।।१४६।।

अन्वयः—प्रियवाक्सहितं दानम्, अगर्वं ज्ञानं, क्षमान्वितं शौर्यं त्यागनियुक्तं वित्तम्, एतत् चतुष्टयम् लोके दुर्लभं (भवति) ।।१४६।।

दानमिति—प्रियवाक्सहितं = प्रिया हृद्या वाक् वचः तया सहितं युक्तम्, दानं = सत्पात्रे त्यागः, अगर्वं = न गर्वो यस्य तत् अगर्वम्, निरभिमानम् ज्ञानम् = बुद्धिः, क्षमान्वितं = क्षमया अन्वितं युक्तम्, शौर्यं = शूरत्वम्, त्यागनियुक्तं = त्यागेन दानेन नियुक्तम् = अन्वितम्, वित्तं = धनं, एतत् = इदम्, चतुष्टयं = चतुष्कम्, लोके = संसारे, दुर्लभम् = दुष्प्राप्यम्, भवतीति भावः ।।१४६।।

मधुर वाणीके साथ दान, अहंकाररहित ज्ञान, शान्तियुक्त शूरता, दानयुक्त धन ये संसारमें दुर्लभ होते हैं ।।१४६।।

उक्तं च—कर्त्तव्यः संचयो नित्यं कर्त्तव्यो नातिसंचयः।

पश्य सञ्चयशीलोऽसौ धनुषा जम्बुको हतः ।।१४७।।

अन्वयः—सञ्चयः नित्यं कर्तव्यः, अतिसञ्चयः न कर्तव्यः सञ्चयशीलः असौ जम्बुकः धनुषा हतः (इति) पश्य ॥१४७॥

कर्तव्य इति—संचयः = धनादिसञ्चयः नित्यं=सदा, कर्तव्यः = करणीयः, अतिसञ्चयः=अधिकसञ्चयश्च, न कर्तव्यः = न विधेयः, सञ्चयशीलः = सञ्चयपरायणः, असौ—वक्ष्यमाणोऽयम्, जम्बुकः = शृगालः, धनुषा = चापेन, हतः = मृतः, (इति) पश्य = अवलोकय, त्वमिति शेषः ॥१४७॥

और कहा भी गया है—धनादिका संचय नित्य करना चाहिये, किन्तु अधिक संचय करना ठीक नहीं। देखो—अधिक संचय करनेवाला शृगाल धनुष से मारा गया ॥१४७॥

तावाहतुः—कथमेतत्, मन्थरः कथयति—

ताविति—तौ = हिरण्यकलघुपतनकौ, आहतुः = ऊचतुः, कथमेतत् = कथमिदम्। मन्थरः = तदाख्यः कूर्मः, कथयति = ब्रवीति।

उन दोनों ने कहा—यह कैसे? मन्थर कहने लगा।

॥ कथा ५ ॥

आसीत्कल्याणकटकवास्तव्यो भैरवो नाम व्याधः। स चैकदा मृगमन्विष्यमाणो विन्ध्याटवीं गतवान्। ततस्तेन व्यापादितं मृगमादाय गच्छता घोराकृतिः शूकरो दृष्टः। तेन व्याधेन मृगं भूमौ निधाय शूकरः शरेणाहतः। शूकरेणापि घनघोरगर्जनं कृत्वा स व्याधो मुष्कदेशे हतः संच्छिन्नद्रुम इव भूमौ निपपात।

आसीदिति—कल्याणकटकवास्तव्यः=वसतीति वास्तव्यः कल्याणकटके वास्तव्यः इति कल्याणकटकवास्तव्यः = कल्याणकटकाख्ये नगरे निवासकर्त्ता, भैरवो नाम = भैरवाभिधः, व्याधः = लुब्धकः आसीत्। सः = भैरवः, एकदा = एकस्मिन्दिने, मृगं = हरिणम् अन्विष्यमाणः = मार्गमाणः, विन्ध्याटवीं = विन्ध्यवनं, गतवान् = जगाम। ततः = तदनन्तरम्, तेन = व्याधेन, व्यापादितं = हतम्, मृगं = हरिणम्, आदाय = गृहीत्वा, गच्छता = भ्रमता, प्रतिनिवर्तमानेनेत्यर्थः, घोराकृतिः = भयंकराकृतिः, शूकरः = वराहः, दृष्टः = अवलोकितः, तेन = व्याधेन, मृगं = हरिणम्, भूमौ = पृथिव्याम्, निधाय = संस्थाप्य, शूकरः = वराहः, शरेण = बाणेन, हतः = विद्धः। शूकरेणापि = वराहेण च, घनघोरगर्जनं = भीषणशब्दम्, कृत्वा = विधाय, स व्याधः = स लुब्धकः, मुष्कदेशे =

अण्डकोशे, हतः = ताडितः, सन्, छिन्नः = भिन्नः, द्रुम इव = वृक्ष इव भूमौ = मह्याम् निपपात = पतितवान् ।

कल्याणकटक नामक नगरमें भैरव नामका एक व्याध रहता था । वह एक दिन शिकार खोजते हुए विन्ध्याचलके वनमें गया । बाद उसने मारे हुए हरिणको लेकर जाते हुए (रास्तेमें) एक भयंकर सूअरको देखा । उस व्याधने (अपने) शिकारको जमीनपर रखकर सूअरको बाणसे मारा । सूअर ने भी भयंकर शब्द कर उस व्याधके अण्डकोशमें मारा, जिससे वह कटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ।

यतः—जलमग्निर्विषंशस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः ।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ॥ १४८ ॥

अन्वयः—जलम्, अग्निः, विषं, शस्त्रं, क्षुत्, व्याधिः, गिरेः पतनम्, (एषु) किञ्चित् निमित्तम् आसाद्य देही प्राणैः विमुच्यते ॥ १४८ ॥

जलमिति = जलम् = आपः, अग्निः = वैश्वानरः, विषं = गरलम्, शस्त्रम् = आयुधम्, क्षुत् = क्षुधा, व्याधिः = पीडा, गिरेः = पर्वतात्, पतनम्, (एषु) किंचित्, एकमपि, निमित्तं = कारणम्, आसाद्य = प्राप्य, देही = प्राणी, प्राणैः = असुभिः, विमुच्यते = त्यज्यते, म्रियते इत्यर्थः ॥ १४८ ॥

क्योंकि—जल, अग्नि, विष, शस्त्र, भूख, रोग, पहाड़ (ऊंचे-ऊँचे स्थान) से गिरना, इनमें से किसी एक निमित्तको प्राप्तकर ही आत्मा शरीरसे पृथक् होता है । अर्थात् मनुष्य मर जाता है ॥१४८॥

अथ तयोः पादास्फालनेन एकः सर्पोऽपि मृतः । अथाऽनन्तरं दीर्घरावो नाम जम्बुकः परिभ्रमन्नाहारार्थी तान् मृतान् मृगव्याघसर्पशूकरानपश्यत् अचिन्तयच्च—"अहो अद्य महद्भोज्यं मे समुपस्थितम् ।' !

अथेति—अथ = अनन्तरम्, तयोः = शूकरव्याधयोः पादास्फालनेन = पादानां = चरणानाम्, आस्फालनेन = भूमौ ताडनेन, एकः सर्पः = अहिः, अपि मृतः = मृतवान्, अथानन्तरं = किञ्चित् कालानन्तरम्, आहारार्थी = भोजनार्थी, दीर्घरावो नाम = दीर्घरावाभिधः, जम्बुकः = शृगालः, परिभ्रमन् = यत्र तत्र गच्छन्, तान् = पूर्वोक्तान्, मृतान् = निष्प्राणान्, मृगश्च सर्पश्च शूकरश्च तान् = हरिणलुब्धकवराहादीन्, अपश्यत् = अवालोकयत् । अहो ! इति हर्षे, अद्य = अस्मिन्दिने, मे = मम, जम्बुकस्य, महद्भोज्यं = बहुभोजनपदार्थः, समुपस्थितं = प्राप्तम्, इति च = एतच्च, अचिन्तयत् = विचारितवान् ।

बाद उन दोनोंके जमीन पर पैर पटकनेसे एक सर्प भी मर गया, कुछ देर बाद उस रास्तेसे भोजनके लिए जाते हुए दीर्घराव नामक एक श्रृगालने उन मरे हुए मृग, व्याघ्र, शूकर और सर्पको देखा और सोचने लगा—"अहा! भाग्यसे मुझे आज बड़ा भोजन मिला"।

अथवा—अचिन्तितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखान्यपि तथा मन्ये दैवमत्रातिरिच्यते ॥१४९॥

अन्वयः—देहिनां यथा दुःखानि अचिन्तितानि आयान्ति, तथा एव सुखानि अपि (अचिन्तितानि आयान्ति) अत्र दैवम् अतिरिच्यते (अहम् एतत्) मन्ये॥१४९॥

अचिन्तितानीति—देहिनां=प्राणिनाम्, यथैव=येन प्रकारेण, अचिन्तितानि =अतर्कितानि, दुःखानि = क्लेशाः, आयान्ति,=आपतन्ति, तथा=तथैव, सुखानि अपि = शर्माण्यपि, आयान्ति, अत्र = अनयोः सुखदुःखयोः। दैवं = भाग्यम्, अतिरिच्यते = बलवान् भवति, इति मन्ये = एतत् स्वीकरोमि ॥१४९॥

अथवा—प्राणियोंको जैसे सहसा कष्ट आ पड़ते हैं, वैसे ही सुख भी आते हैं, इस विषयमें मैं भाग्यको ही बलवान् मानता हूँ ॥१४९॥

तद् भवतु एषां मांसैर्मासत्रयं मे सुखेन गमिष्यति।

तदिति—तत् = तस्माद्धेतोः, भवतु=अस्तु, एषां = त्रयाणां, मांसैः=पिशितैः, मे = मम श्रृगालस्य, सुखेन =अक्लेशेन, मासत्रयं = मासानां त्रयं—त्रयो मासाः, गमिष्यन्ति = यास्यन्ति।

मासमेकं नरो याति द्वौ मासौ मृगशूकरौ।
अहिरेकदिनं याति अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः ॥ १५० ॥

अन्वयः—नरः एकं मासं याति, मृगशूकरौ द्वौ मासौ यातः, अहिः एकदिनं याति, अद्य धनुर्गुणः भक्ष्यः ॥१५०॥

मासमिति—नरः =व्याघ्रः, एकं मासम् = एकमासपर्यन्तम् याति = गमिष्यति, मृगशूकरौ = हरिणवराहौ, मृगस्य शूकरस्य च मांसमित्यर्थः, द्वौ मासौ = मासद्वयमभिव्याप्य, याति = चलिष्यति, एकं दिनम् = एकाहम्, अहिः = सर्पः, याति, अद्य = अस्मिन्नहनि, धनुर्गुणः = धनुषः चापस्य गुणः—ज्या, भक्ष्यः = भक्षणीयः ॥१५०॥

एक मास तक इस मनुष्य (व्याघ्र) का मांस चलेगा। दो मास शूअर

और हरिण के मांस चलेंगे, एक दिन सर्पका मांस चलेगा और आज धनुषकी डोरी ही खानी चाहिए ॥१५०॥

ततः प्रथमबुभुक्षायामिदं निःस्वादु कोदण्डलग्नं स्नायुबन्धनं खादामि। इत्युक्त्वा तथा कृते सति छिन्ने स्नायुबन्धने उत्पतितेन धनुषा हृदि निर्भिन्नः स दीर्घरावः पञ्चत्वं गतः। अतोऽहं ब्रवीमि-"कर्तव्यः सञ्चयो नित्यम्" इत्यादि।

तत इति—ततः = तस्मात्, कारणात् प्रथमबुभुक्षायां = प्रथमा चासौ बुभुक्षा च इति प्रथमबुभुक्षा तस्यां, पूर्वक्षुधायाम्, इदं = पुरोगतं, निःस्वादु = स्वादुरहितम् कोदण्डलग्नं = कोदण्डे = धनुषि लग्नम् = आसक्तं संलग्नमित्यर्थः, स्नायुबन्धनं = चर्मपरिष्कृतो गुणः = अन्त्रमिति यावत्, खादामि = भक्षयामि। इत्युक्त्वा = इति अभिधाय, तथा कृते सति = भक्षिते सति, छिन्ने = भिन्ने, स्नायुबन्धने = अन्त्रे, उत्पतितेन = ऊर्ध्वमुद्गच्छता, धनुषा = चापेन, हृदि = उरसि, निर्भिन्नः = निहितः, स दीर्घरावः = शृगालः, पञ्चत्वं गतः = मृतः। अतोऽहं = मन्थरः, ब्रवीमि = कथयामि 'कर्तव्येत्यादि।'

इसलिये पहिली भूखमें इस स्वादरहित, धनुष में लगे हुए तांतको ही खाता हूँ। ऐसा कहकर उस प्रकार करनेपर अर्थात्—तांत काटनेपर—तांतके बन्धनके टूटनेसे धनुष उछला और उस धनुषसे उसकी छाती फट गयी जिससे वह सियार मर गया। इसलिए मैं कहता हूँ कि—'सञ्चय नित्य करना चाहिए' आदि।

तथा च—यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥१५१॥

अन्वयः—यत् (वस्तु) ददाति यत् (च) अश्नाति तत् एव धनिनः धनम् (अन्यथा) अन्ये मृतस्य दारैः अपि धनैः अपि क्रीडन्ति ॥१५१॥

यदिति—यद् = वस्तु, ददाति = परेभ्यो वितरतीत्यर्थः, यत् = वस्तु अश्नाति = स्वयं भुङ्क्ते, तत् एव, दत्तं भुक्तञ्चैव, धनिनः = धनवतः, धनं = वित्तम्, (अस्ति अन्यथा) अन्ये = अपरे, मृतस्य = पञ्चत्वं प्राप्तस्य, धनिनः, दारैः = स्त्रिया, धनैः = वित्तैः, अपि क्रीडन्ति = सुखमनुभवन्ति ॥१५१॥

कहा भी गया है—धनियोंका सच्चा धन वही है जो दूसरेको दान देता है और स्वयं उपभोग करता है, (नहीं तो) मर जानेपर उसकी स्त्री और धनसे दूसरे ही सुख भोगते हैं ॥१५१॥

किञ्च—यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥ १५२ ॥

अन्वयः—विशिष्टेभ्यः यत् दिने ददासि यत् दिने अश्नासि, तत् ते वित्तम् (अस्ति, शेषं तु) कस्य अपि रक्षसि (इति) अहं मन्ये ॥१५२॥

यदिति—विशिष्टेभ्यः = सुपात्रेभ्यो यत् = वित्तम्, ददासि = अर्पयसि, यच्च = यद्धनं च दिने = प्रतिदिनम्, अश्नासि = स्वयं खादसि, तत् = दत्तं भुक्तञ्च, वित्तं = धनम्, ते = अस्ति, शेष = अवशिष्टम्, कस्यापि = अन्यस्य हेतोः, रक्षसि = स्थापयसि इति अहं मन्ये = अनुभवामि ॥ १५२ ॥

और भी—जो सुपात्रको दान देते हो और जो प्रतिदिन स्वयं उपभोगमें लाते हो, वही तुम्हारा धन है ऐसा मैं समझता हूँ, शेष तो दूसरेका है, तुम केवल उसके रक्षक मात्र हो ॥१५२॥

यातु, किमिदानीमतिक्रान्तोपवर्णनेन ।

यात्विति—यातु = गच्छतु, इदानीं = साम्प्रतम्, अतिक्रान्तोपवर्णनेन = व्यतीतस्य कीर्तनेन, किम् = को लाभः, न किमपीत्यर्थः ।

जाने दो, इस समय बीते हुए की चर्चासे क्या लाभ ?—(बीते ताहि बिसारिये०) ।

यतः—नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥ १५३ ॥

अन्वयः—पण्डितबुद्धयः नराः अप्राप्यं न अभिवाञ्छन्ति, नष्टं शोचितुं न इच्छन्ति आपत्सु अपि न मुह्यन्ति ॥१५३॥

नेति—पण्डितबुद्धयः—पण्डितानां बुद्धिः इव बुद्धिः येषां ते विद्वन्मतयः, नराः = मनुष्याः, अप्राप्यं = प्राप्तुमयोग्यम्, (वस्तु) न अभिवाञ्छन्ति = नाभिलषन्ति, नष्टं = गतम्, शोचितुं = चिन्तितुम्, न इच्छन्ति = नाभिलषन्ति, आपत्सु = विपत्सु, अपि न मुह्यन्ति = न मोहमुपयान्ति ॥ १५३ ॥

क्योंकि—विद्वानोंकी तरह बुद्धिवाले अर्थात् चतुर मनुष्य दुर्लभ वस्तुकी इच्छा नहीं रखते और नष्ट हुएका सोच नहीं करते एवं आपत्ति आनेपर घबराते नहीं हैं ॥ १५३ ॥

तत् सखे ! त्वया सोत्साहेन भवितव्यम् ।

तदिति—तत् = तस्माद्धेतोः, सखे = मित्र ! सर्वदा = नित्यम्, त्वया = भवता, सोत्साहेन = प्रसन्नचित्तेन, = भवितव्यम = वर्तितव्यम् ।

इसलिए मित्र ! तुमको हमेशा प्रसन्न रहना चाहिये ।

यतः—शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥ १५४ ॥

अन्वयः—शास्त्राणि अधीत्य अपि (जनाः) मूर्खाः भवन्ति, (किं) तु यः पुरुषः क्रियावान् (भवति)। स विद्वान् (भवति)। (यतः) सुचिन्तितं च औषधं नाममात्रेण आतुराणाम् अरोगं न करोति ॥ १५४ ॥

शास्त्राणीति—शास्त्राणि = व्याकरणादीनि, अधीत्यापि = पठित्वाऽपि, मूर्खाः = अज्ञाः, भवन्ति, जना इति शेषः। तु = किन्तु, यः, पुरुषः क्रियावान् = कार्यकुशलः, स पण्डितः = स विद्वान् भवतीति शेषः। सुचिन्तितं = सुष्ठु विचारितम्, औषधं = भेषजम्, नाममात्रेण = नामकीर्तनमात्रेण, आतुराणां = रोगाकुलानाम्, अरोगं = रोगरहितं, न करोति ॥१५४॥

क्योंकि—शास्त्र पढ़कर भी लोग मूर्ख हो जाते हैं, किन्तु जो क्रियावान् पुरुष हैं, वे ही विद्वान् कहलाते हैं। जैसे—अच्छी तरह विचार कर निर्णीत औषधि भी केवल कीर्तनमात्रसे ही रोगियोंको निरोग नहीं कर देती ॥ १५४ ॥

अन्यच्च—न स्वल्पमप्यध्यवसायभीरोः करोति विज्ञानविनिर्गुणं हि।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोऽपि प्रकाशयत्यर्थमिह प्रदीपः ? ॥१५५ ॥

अन्वयः—विज्ञानविधिः अध्यवसायभीरोः स्वल्पमपि गुणं न करोति। हि इदं हस्ततलस्थितोऽपि, प्रदीपः अन्धस्य अर्थं प्रकाशयति किम् ? ॥ १५५ ॥

नेति—विज्ञानविधिः = विज्ञानस्य विधिः विज्ञानक्रिया, अध्यवसायभीरोः = उद्योगशून्यस्य, स्वल्पमपि = ईषदपि, गुणं = उपकारम्, न करोति = न विदधाति हि = तथाहि, इह = संसारे, हस्ततलस्थितोऽपि = हस्तस्य करस्य तलम् तत्र स्थितः हस्तोपरिस्थितोऽपि, प्रदीपः = दीपकः, अन्धस्य = नेत्रविकलस्य, अर्थं = घटपटादि वस्तु, किं प्रकाशयति = दर्शयति, न दर्शयतीत्यर्थः ॥१५५ ॥

और दूसरे—उद्योग शून्य मनुष्यको शास्त्रादिका ज्ञान कुछ भी उपकार नहीं करता है—क्योंकि जैसे संसारमें हाथपर रखा हुआ भी दीपक अन्धेको घटपट आदि वस्तुओंको क्या दिखला सकता है ? अर्थात् नहीं ॥ १५५ ॥

तदत्र सखे ! दशाविशेषे शान्तिः करणीया। एतदप्यतिकष्टं त्वया न मन्तव्यम्।

तदिति—तत् = तस्मात्, अत्र = अस्मिन् दशाविशेषे दशायाः विपत्यवस्थायाः विशेषः तस्मिन्, शान्तिः = धीरता, करणीया = अवलम्बनीया। एतत्

=स्वस्थानपरित्यागोऽपि, अतिकष्टम्=अतिक्लेशकरम्, त्वया=हिरण्यकेन न मन्तव्यम्=न बोद्धव्यम् ।

इसलिए मित्र ! विशेष विपत्तिकी इस अवस्थामें शान्ति धारण करनी चाहिये और अपने स्थानका त्याग भी तुम्हें विशेष कष्टप्रद नहीं होना चाहिये ।

यतः—राजा कुलवधूर्विप्रा मन्त्रिणश्च पयोधराः ।
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ॥१५६॥

अन्वयः—राजा कुलवधूः विप्राः मन्त्रिणः पयोधराः केशाः नखाः नराः च स्थानभ्रष्टाः न शोभन्ते ॥१५६॥

राजेति—राजा=पृथ्वीपतिः, कुलवधूः=कुलस्त्री, विप्राः=ब्राह्मणाः, मन्त्रिणः=अमात्याः, पयोधराः=स्तनाः, दन्ताः=दशनाः, केशाः=कचाः, नखाः=पुनर्भवाः, नराः=मानवाः च (एते) स्थानभ्रष्टाः=स्वस्थानच्युताः (सन्तः) न शोभन्ते=न राजन्ते ॥१ ६॥

क्योंकि—राजा, कुलकी स्त्री, मन्त्री, स्त्रीके स्तन, दाँत, केश, नख और मनुष्य अपने स्थानसे च्युत होने पर शोभित नहीं होते ॥१५६॥

इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् । कापुरुषवचनमेतत् ।

इतीति—इति=पूर्वोक्तम्, विज्ञाय=ज्ञात्वा, मतिमान्=बुद्धिमान्, स्वस्थानं =स्वावासस्थानम्, न परित्यजेत्=न जह्यात्, एतत्=इदम्, कापुरुषवचनम् =हीनजनोक्तिः, अस्ति ।

यह जानकर बुद्धिमान् पुरुषको अपना आवासस्थान नहीं छोड़ना चाहिये, यह कायर मनुष्यका वचन है ।

यतः—स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः ।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषाः मृगाः ॥१५७॥

अन्वयः—सिंहाः सत्पुरुषाः, गजाः स्थानम् उत्सृज्य (अन्यत्र) गच्छन्ति (तथा) काकाः, कापुरुषाः, मृगाः तत्र एव निधनं यान्ति ॥१५७॥

स्थानमिति—सिंहाः=मृगेन्द्राः, सत्पुरुषाः=सज्जनाः, गजाः=हस्तिनः, स्थानं=निवासस्थानम्, उत्सृज्य=विहाय, गच्छन्ति=अन्यत्र यान्ति । (किन्तु) काकाः=वायसाः, कापुरुषः=कुत्सितपुरुषाः, मृगाः=हरिणादयः, तत्रैव=विपत्तावपि स्वदेशे एव, निधनं=मृत्युम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति ॥१५७॥

क्योंकि—सिंह, सज्जन पुरुष और हाथी (समय आनेपर) अपने स्थानको

भी छोड़कर (जीविकोपार्जन के लिये) अन्यत्र जाते हैं। किन्तु कायर पुरुष, कौवा और मृग ये अपने ही स्थानपर (कष्ट झेलकर) नष्ट हो जाते हैं ॥१५७॥

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्यात्मनः ॥१५८॥

अन्वयः—मनस्विनः वीरस्य स्वविषयः कः? तथा विदेशः वा कः? (यतः वीरः) यं देशं श्रयते तम् एव बाहुप्रतापार्जितं कुरुते। दंष्ट्रानखलाङ्गल-प्रहरणः सिंहः यद् वनं गाहते तस्मिन् एव हतद्विपेन्द्ररुधिरैः आत्मनः तृष्णां छिनत्ति ॥१५८॥

क इति—वीरस्य = शूरस्य, मनस्विनः = समुन्नतान्तःकरणस्य, स्वविषयः कः = स्वदेशः कः वा विदेशः = देशान्तरम् कः, अस्तीति शेषः उभयत्र। यं देशं = यं प्रदेशम्, श्रयते = आश्रयते, तमेव = देशम् एव, बाहुप्रतापार्जितं=बाह्वोः प्रतापेन अर्जितम्, उपार्जितम् कुरुते। द्रंष्ट्रानखलांगलप्रहरणः = दंष्ट्रा नखा लांगलाश्च प्रहरणानि यस्य सः दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः,=दन्तनखलाङ्गूलमात्रः, सहायः सिंहः = मृगेन्द्रः, यद्वनं = यदरण्यम्, गाहते = सेवते, तस्मिन्नेव = वने एव हतद्विपेन्द्ररुधिरैः = हता द्विपेन्द्राः = हस्तिनः इति हतद्विपेन्द्राः तेषां रुधिरैः = शोणितैः, आत्मनः = स्वस्य, तृष्णां = पिपासाम्, छिन्नत्ति = दूरीकरोति ॥१५८॥

वीर एवं उत्साही पुरुषके लिये अपना देश या विदेश क्या है? वीर पुरुष तो जिस देशका आश्रयण करते हैं उसे ही अपने पराक्रमसे अधीन कर लेते हैं। जैसे—दाँत, नाखून और पूँछमात्र साधनवाला सिंह जिस वनमें जाता है, उसी वनमें हाथियोंको मारकर उनके खून से अपनी प्यास बुझाता है अर्थात् राजा बन जाता है ॥१५८॥

अपरं च--निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः ।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्वसम्पदः ॥१५९॥

अन्वयः—मण्डूकाः निपानम् इव अण्डजाः पूर्ण सरः इव, सर्वसम्पदः विवशाः (सत्यः) सोद्योगं नरम् आयान्ति ॥१५९॥

निपानमिति—मण्डूकाः भेकाः, निपानमिव—उपकूपमिव, अण्डजाः = पक्षिणः, पूर्ण = जलभरितम्, सरः = जलाशयमिव। सर्वसम्पदः = सर्वसमृद्धयः,

विवशाः = आकृष्टाः (सत्यः), सोद्योगं = उद्योगिनम्, नरं = पुरुषम्, आयान्ति = प्राप्नुवन्ति ॥ १५९ ॥

और भी—जैसे मेढक कूपके समीप वाले गढ़ेमें और पक्षी भरे तालाबोंमें आते हैं, उसी तरह सारी सम्पत्तियाँ आकृष्ट होकर उद्योगी पुरुषके पास आ जाती हैं ॥ १५९ ॥

अन्यच्च—सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥१६०॥

अन्वयः—आपतितं सुखं सेव्यम्, तथा आपतितं दुःखं सेव्यम्, (यतः) सुखानि च दुःखानि च, चक्रवत् परिवर्तन्ते ॥१६०॥

सुखमिति—आपतितं = प्राप्तम्, सुखम् = आनन्दः, सेव्यं=सेवनीयम्, तथा तेन प्रकारेण, आपतितं = समुपस्थितम्, दुःखं = क्लेशः (सेव्यम्)। सुखानि=शर्माणि दुःखानि च, चक्रवत् = रथाङ्गमिव (यथा चक्रं सर्वदा भ्रमति तथैव) परिवर्तन्ते = आयान्ति गच्छन्ति चेति भावः ॥१६०॥

और भी—आये हुए सुख तथा दुःखका अनुभव करना चाहिये। क्योंकि—गाड़ीके पहियेकी तरह सुख और दुःख घूमते (आते-जाते) रहते हैं ॥ १६० ॥

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥१६१॥

अन्वयः—लक्ष्मीः, उत्साहसम्पन्नम्, अदीर्घसूत्रं, क्रियाविधिज्ञं, व्यसनेषु असक्तं, शूरं, कृतज्ञं दृढसौहृदं च (जनम्) निवासहेतोः स्वयं याति ॥१६१॥

उत्साहेति—उत्साहसम्पन्नम् = उत्साहेन सम्पन्नं युक्तम्, अदीर्घसूत्रं = अचिरक्रियम्, क्रियाविधिज्ञं, विधानं विधिः क्रियायाः विधिः तं जानातीति तम् = कार्यज्ञम्, व्यसनेषु=बन्धकेषु, 'बन्धकं व्यसनं चेतः पीडाधिष्ठानमाधयः' इत्यमरः। असक्तम् = अलीनम्, शूरं = बलवन्तम्, कृतज्ञं = उपकारज्ञम्, दृढसौहृदं=स्थिरमित्रवन्त, स्थिरानुरागमिति यावत्, (जनं) लक्ष्मीः = श्रीः, निवासहेतोः = स्थातुं, स्वयं याति = स्वयमुपतिष्ठते ॥१६१॥

और दूसरे—जो उत्साही, आलस्यहीन, कार्य करनेके उपायोंको जाननेवाले तथा बुरे विषयोंमें अनासक्त, शूर, उपकारको माननेवाले और सच्ची मित्रता वाले हैं; ऐसे मनुष्यके घर स्थिर रहनेके लिए लक्ष्मी आप ही जाती है ॥१६१॥

विशेषतश्च—विनाप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥१६२॥

अन्वयः—वीरः अर्थैः विना अपि बहुमानोन्नतिपदं स्पृशति, कृपणः अर्थैः समायुक्तः अपि परिभवपदं याति, धृतकनकमालः अपि श्वा स्वभावात् उद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां सैंहीं द्युतिं किं लभते? ॥१६२॥

विनेति—वीरः=साहसी पुरुषः, अर्थैः=धनैः विनाऽपि=अन्तरेणापि बहुमानोन्नतिपदं=अत्यादराभ्युदययोः स्थानं, समुन्नतं स्थानमिति यावत्, स्पृशति=आप्नोति, कृपणः=कदर्यः, अर्थैः समायुक्तोऽपि=धनसम्पन्नोऽपि, परिभवपदं=पराभवम्, याति=प्राप्नोति, धृतकनकमालः=धृता परिहिता कनकस्य सुवर्णस्य माला स्रक् येन सः, अपि, श्वा=कुक्कुरः, स्वभावात्=निसर्गात्, "स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्च" इत्यमरः, उद्भूताम्=उत्पन्नाम्, गुणसमुदयावाप्तिविषयां=गुणानां समुदयः=समुदायः तस्य अवाप्तिः=प्राप्तिः तस्य विषयः यस्यास्ताम्—अनेकगुणसमुदायबोधिकाम्, सैंहीं=सिंहसम्बन्धिनीं द्युतिं=प्रभाम्, लभते किम्=प्राप्नोति किम्? कदापि न प्राप्नोतीति भावः ॥१६२॥

विशेष तो यह है— वीर पुरुष बिना धनके भी मान और अभ्युदयसे युक्त पदको प्राप्त करते हैं और कृपण मनुष्य धनवान् होनेपर भी तिरस्कारको ही प्राप्त करते हैं। जैसे—कुत्ता सोनेकी माला पहनकर भी, प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाली और अनेक गुणोंको प्रकट करनेवाली सिंहकी प्रभाको क्या प्राप्त कर सकता है? अर्थात् नहीं ॥१६२॥

धनवानिति हि मदो मे किं गतविभवो विषादमुपयामि।
करनिहतकन्दुकसमाः पातोत्पाता मनुष्याणाम् ॥१६३॥

अन्वयः—(धने सति यस्य) मे (अहम्) धनवान् (अस्मि) इति मदः (भवति, सः अहम्) गतविभवः (सन्) किं विषादम् उपयामि? मनुष्याणां पातोत्पाताः करनिहतकन्दुकसमाः (भवन्ति) ॥ १६३ ॥

धनवानिति—धनवान्=अहं धनी, इति मे=मम, मदः=अभिमानः (अस्ति) किं=कथम् (अहम्) गतविभवः=नष्टधनः (सन्) विषादं=दुःखम्, उपयामि=प्राप्नोमि। हि=यतः, मनुष्याणां=नराणाम्, पातोत्पाताः=पतनोन्नतयः, करनिहतकन्दुकसमाः=हस्तताडितकन्दुकवद्भवन्तीति भावः ॥१६३॥

'मैं धनी हूँ' ऐसा घमण्ड करना व्यर्थ है, और दरिद्र हो जानेपर शोक करना भी व्यर्थ है, क्योंकि मनुष्योंकी उन्नति और अवनति हाथसे मारे गये गेंदकी तरह है। जैसे गेंदको हाथसे मार देनेपर वह बारम्बार नीचे-ऊपर चढ़ता-उतरता है, उसी प्रकार पुरुषकी उन्नति और अवनति बराबर हुआ करती है ॥ १६३ ॥

वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्नवतः स्तनौ ॥ १६४ ॥

अन्वयः—(जनः) वृत्त्यर्थं न अतिचेष्टेत, हि सा धात्रा एव निर्मिता (भवति), जन्तौ गर्भात् उत्पतिते (सति) मातुः स्तनौ प्रस्नवतः ॥१६४॥

वृत्त्यर्थमिति—वृत्त्यर्थं = आजीविकार्थम्, न अतिचेष्टेत = नातियतेत। हि = यतः, सा = वृत्तिः, धात्रा = ब्रह्मणा, एव, निर्मिता = कल्पिता। जन्तौ = प्राणिनि, गर्भात् = उल्बात्, उत्पतिते = बहिरागते सति, मातुः = जनन्याः, स्तनौ = कुचौ, प्रस्नवतः = क्षरतः ॥ १६४ ॥

जीविकाके लिये अधिक प्रयास नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह तो विधाताने ही निश्चित कर रखी है। देखा जाता है—प्राणियोंके गर्भसे निकलते ही माताके स्तनसे दूध निकलने लगते हैं ॥ १६४ ॥

अपरं च सखे—येन शुक्लीकृता हंसा शुकाश्च हरितीकृताः।
मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति ॥१६५॥

अन्वयः—येन हंसाः शुक्लीकृताः, शुकाः हरितीकृताः, येन च मयूराः चित्रिताः स ते वृत्तिं विधास्यति ॥ १६५ ॥

येनेति—येन = ब्रह्मणा, हंसाः = मरालाः, शुक्लीकृताः = श्वेतीकृताः, शुकाश्च = कीराश्च, हरितीकृताः = हरिद्वर्णाः कृताः, येन = ब्रह्मणा, मयूराः = शिखिनः, चित्रिताः = विचित्रवर्णाः कृताः, स = ब्रह्मा दैवमित्यर्थः, ते वृत्तिं = तव जीविकाम्, विधास्यति = करिष्यति ॥ १६५ ॥

और भी—मित्र ! जिस ब्रह्माने हंसोंको सफेद, सुग्गोंको हरा, और जिसने मोरोंको विचित्र बनाया है वही तुम्हारी भी जीविकाको बना देगा ॥ १६५ ॥

अपरं च, सतां रहस्यं शृणु मित्र !

अपरं च = अन्यच्च, सतां = साधूनां, रहस्यं=गुप्त विषयं, शृणु = आकर्णय।
और भी—मित्र ! सज्जनोंका गुप्त रहस्य सुनो।

जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु ।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः ॥ १६६ ॥

अन्वयः—(ये) अर्थाः अर्जने दुःखं जनयन्ति, विपत्तिषु तापयन्ति, सम्पत्तौ च मोहयन्ति (ते) कथं=सुखावहाः (भवन्ति) ॥ १६६ ॥

जनयन्तीति—(ये अर्थाः) अर्जने = उपार्जने, दुःखं = क्लेशम्, जनयन्ति, विपत्तिषु, तापयन्ति = खेदयन्ति, सम्पत्तौ = सम्पन्नावस्थायाम्, मोहयन्ति = बुद्धि नाशयन्ति, ते अर्थाः=सम्पत्तयः, कथं=केन प्रकारेण, सुखावहाः=सुखजनकाः भवन्तीति शेषः ॥ १६६ ॥

(जो धन) उपार्जन करनेमें अत्यन्त कष्ट देता है, कष्ट होने पर अत्यन्त सन्ताप देता है, सम्पत्तिमें मूर्ख बना देता है, फिर वह धन सुखकारक कैसे हो सकता है ? ॥ १६६ ॥

अपरं च—धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥ १६७ ॥

अन्वयः—यस्य धर्मार्थं वित्तेहा (भवति) तस्य निरीहता (अस्तु, इति एव) वरम्, हि पङ्कस्य प्रक्षालनात् (तस्य) दूरात् अस्पर्शनम् (एव)वरं भवति ।

धर्मार्थमिति—यस्य, धर्मार्थं = धर्मकरणाय, वित्तेहा = वित्तस्य ईहा धनेच्छेति यावत्, तस्य, निरीहता = निरभिवाञ्छा, वरं = श्रेष्ठम् अस्तीति शेषः, पङ्कस्य=कर्दमस्य, प्रक्षालनात् = क्षालनापेक्षया, दूरात् = विप्रकृष्टात्, अस्पर्शनं = न स्पर्शनं अस्पर्शनम्, श्रेष्ठम् अस्ति ॥ १६७ ॥

और भी—पाप करके मनुष्य धर्मके द्वारा उस पापका नाश करना चाहता है, अतः धर्मके लिये धनकी इच्छा होती है वह इच्छा न करना ही अच्छा है । क्योंकि कीचड़ लगाकर उसको धोनेसे तो अच्छा है कि उससे दूर ही रहा जाय या उसे स्पर्श ही न किया जाय । अभिप्राय यह है कि—पापका उपार्जन कर फिर धर्मके द्वारा उसका नाश करनेकी अपेक्षा पाप ही न करना चाहिये ॥ १६७ ॥

यतः—यथा ह्यामिषमाकाशे पक्षिभिः श्वापदैर्भुवि ।
भक्ष्यते सलिले नक्रैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥ १६८ ॥

अन्वयः—यथा आमिषम् आकाशे पक्षिभिः, भुवि श्वापदैः, सलिले

(च) नक्रैः भक्ष्यते तथा वित्तवान् (जनः) सर्वत्र भक्ष्यते हि ॥ १६८ ॥

यथेति—यथा=येन प्रकारेण, आमिषं=मांसम्, पक्षिभिः=विहगैः,

आकाशे = नभोमण्डले, (भक्ष्यते), भुवि = पृथिव्यां, श्वापदैः = हिंस्रकैः, (भक्ष्यते), सलिले = जले, नक्रैः (भक्ष्यत इति) तथा = तेन प्रकारेण, वित्तवान् = धनवान् सर्वत्र भक्ष्यते ।

क्योंकि—जैसे मांसको आकाशमें पक्षी, पृथ्वीपर हिंसकादि जीव और जलमें मगर आदि नोचते हैं वैसे ही धनवान्‌को सभी जगह धूर्त्त लोग अपना शिकार बनाते हैं, अर्थात् ठगते-लूटते रहते हैं ॥ १६८ ॥

राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि ।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ॥ १६९ ॥

अन्वयः—प्राणभृताम्, मृत्योः इव अर्थवतां राजतः, सलिलात्, अग्नेः, चोरतः, स्वजनात्, अपि नित्यं भयं (भवति) ।

राजत इति—प्राणभृतां = प्राणिनाम्, मृत्योरिव = कालादिव, अर्थवतां = धनयुक्तानाम्, राजतः = राज्ञः सकाशात्, सलिलात् = जलात्, अग्नेः = वह्नेः, चोरतः = तस्करात्, स्वजनात् = बान्धवादेः, अपि, नित्यं = सर्वदा, भयं जायते इति शेषः ।

जिस प्रकार प्राणधारियोंको यमराजसे डर होता है, उसी प्रकार धनी मनुष्यको राजासे, जलसे, अग्निसे, चोरसे तथा अपने कुटुम्बसे निरन्तर भय बना रहता है ॥ १६९ ॥

तथा हि—जन्मनि क्लेशबहुले किं नु दुःखमतः परम् ।
इच्छासम्पद्यतो नास्ति यच्चेच्छा न निवर्तते ॥ १७० ॥

अन्वयः—यतः क्लेशबहुले जन्मनि इच्छासम्पत् नास्ति, यत् च इच्छा न निवर्तते, अतः परं किं नु दुःखं (स्यात्) ।

जन्मनीति—यतः = यस्मात् कारणात्, क्लेशबहुले = कष्टप्राये, जन्मनि = मनुष्ययोनौ, इच्छासम्पत् = इच्छानुकूला सम्पत्तिः, नास्ति, यच्च = यदपि, इच्छा = सम्पत्तृष्णा, न निवर्तते = नोपशाम्यति, अतः परं = अस्मादधिकम्, किं नु = किं खलु, दुःखं = कष्टम्, स्यादिति ।

कष्टोंसे पूर्ण मनुष्य योनिमें इससे बढ़कर और दुःख क्या होगा कि अपनी इच्छानुसार धन नहीं मिलता और इच्छाकी निवृत्ति भी नहीं होती ॥१७०॥

अन्यच्च भ्रातः ! शृणु—

धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिन्तयेत् ॥ १७१ ॥

अन्वयः—धनं तावत् असुलभम्, लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते, लब्धनाशः यथा मृत्युः, तस्मात् (सुखेच्छुः जनः) एतत् न चिन्तयेत् ।

धनमिति—धनम् = अर्थः, तावत् = प्रथमम्, असुलभम् = न सुलभम् असुलभम् कष्टेन लभ्यमिति यावत्, अस्तीति शेषः, लब्धम् = उपार्जितम्, कृच्छ्रेण = क्लेशेन, रक्ष्यते = पाल्यते । लब्धनाशो लब्धस्य = उपार्जितस्य वित्तस्य नाशः = क्षयः यथा मृत्युः = मृत्युतुल्यः कष्टकरः, तस्मात् एतत् = वित्तम्, न चिन्तयेत् = न स्मरेत् ।

और भी—भाई ! सुनो—प्रथम तो धन अत्यन्त कष्टसे मिलता है, बाद मिले हुएकी रक्षा अत्यन्त कठिनतासे होती है और उसका नाश मरण तुल्य कष्टप्रद होता है, अतः धनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥१७१॥

तृष्णां चेह परित्यज्य को दरिद्रः क ईश्वरः ।
तस्याश्चेत्प्रसरो दत्तो दास्यं च शिरसि स्थितम् ॥ १७२ ॥

अन्वयः—इह तृष्णां परित्यज्य कः दरिद्रः कः च ईश्वरः (अस्ति) । तस्या प्रसरः दत्तः चेत् शिरसि च दास्यं स्थितम् ।

तृष्णामिति—इह = अस्मिन् संसारे, तृष्णां = वाञ्छाम्, परित्यज्य—विहाय, कः, दरिद्रः, = निर्धनः, कश्च ईश्वरः = प्रभुः (अस्ति), चेत् = यदि, तस्याः = वाञ्छायाः, प्रसरः = समयः, दत्तः (तर्हि) दास्यं = भृत्यता, शिरसि = मूर्ध्नि, स्थितम् ।

इस संसारमें तृष्णाको छोड़ देनेसे कौन धनी और कौन निर्धन है ? यदि तृष्णाको अवकाश दिया, तो पराधीनता शिरपर आयी समझो । अभिप्राय यह है कि—संसारमें मनुष्य तृष्णाका त्याग कर सुखी हो सकता है । सतृष्ण मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ १७२ ॥

अपरं च—यद्यदेव हि वाञ्छेत ततो वाञ्छा प्रवर्तते ।
प्राप्त एवार्थतः सोऽर्थो यतो वाञ्छा निवर्तते ॥ १७३ ॥

अन्वयः—यद् यद् एव वाञ्छेत ततः वाञ्छा प्रवर्तते । यतः वाञ्छा निवर्तते स एव अर्थः अर्थतः (भवति) ॥ १७३ ॥

यदिति—यत् यत् एव वस्तु = पदार्थं, वाञ्छेत--अभिलषेत्, हि, ततः = तस्मात् वस्तुनः, वाञ्छा = इच्छा, प्रवर्तते = अधिका भवति । यतः = यस्मात् वस्तुनः, वाञ्छा = प्राप्तीच्छा, निवर्तते = शाम्यति, सः = अर्थः एव, अर्थतः = यथार्थतः, प्राप्तः = लब्ध इति सम्बन्धः ॥ १७३ ॥

और भी—मनुष्य जो वस्तु पानेकी इच्छा करता है, उसकी इच्छा और अधिक बढ़ती जाती है। जिस वस्तुसे इच्छाकी निवृत्ति हो जाती है, वही वस्तु वस्तुतः प्राप्त होती है ॥१७३॥

किं बहुना पक्षपातेन ? मयैव सहात्र कालो नीयताम् ।

किमिति—बहुना = अधिकेन पक्षपातेन = पक्षग्रहणेन, किं = न किमपीत्यर्थः, ततः त्वया, मया = मन्थरकेण, सह = साकम्, अत्र = अस्मिन् स्थाने कालः = समयः, नीयतां = याप्यताम् ।

और विशेष क्या कहूँ ? मेरे ही साथ यहाँ निवासकर समय बिताओ।

यतः—आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत्क्षणभंगुराः ।
परित्यागाश्च निःसङ्गा भवन्ति हि महात्मनाम् ॥ १७४ ॥

अन्वयः—हि महात्मनां प्रणयाः आमरणान्ताः कोपाः तत्क्षणभङ्गुरा परित्यागाश्च निस्सङ्गा भवन्ति ॥१७४॥

आमरणेति—हि = निश्चयेन, महात्मनां = सज्जनानाम्, प्रणयाः = स्नेहाः, आमरणान्ताः = मरणपर्यन्तस्थायिनः, कोपाः = क्रोधाः, तत्क्षणभङ्गुराः = तस्मिन्नेव समये विनाशिनः क्षणिका इत्यर्थः, परित्यागाः = दानादयः, निःसङ्गाः = सङ्गरहिताः स्वार्थहीना इति यावत्, भवन्ति ॥१७४॥

क्योंकि—सज्जन पुरुषोंका स्नेह मरण-पर्यन्त स्थायी, क्रोध क्षणिक और दान निःस्वार्थ होता है ॥१७४॥

इति श्रुत्वा लघुपतनको ब्रूते--धन्योऽसि मन्थर ! सर्वथा श्लाघ्यगुणोऽसि ।

इतीति—इति = पूर्वोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, लघुपतनकः = तन्नामा वायसः, ब्रूते = वक्ति, मन्थर = कच्छप ! धन्योऽसि = धन्यः असि, सर्वथा, श्लाघ्यगुणोऽसि = प्रशंसनीयचरितोऽसि ।

पहले कही हुई बातें सुनकर लघुपतनक नामका कौवा बोला—हे मन्थर ! तुम धन्य हो और तुम्हारा चरित्र प्रशंसनीय है।

यतः—सन्त एव सतां नित्यमापदुद्धरणक्षमाः ।
गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरन्धराः ॥ १७५ ॥

अन्वयः—सन्त एव नित्यम् सतां आपदुद्धरणक्षमाः (सन्ति) पङ्कमग्नानां गजानां गजा एव धुरन्धरा (भवन्ति) ॥ ७५॥

सन्त इति—सन्तः = सत्पुरुषाः, एव = निश्चयेन, नित्यं = सर्वदा, सतां = सज्जनानाम्, आपदुद्धरणक्षमाः = आपद्भ्यः उद्धरणं-दूरीकरणं तत्र क्षमाः =

योग्याः भवन्तीति शेषः अत्र दृष्टान्तं दर्शयति--पङ्कमग्नानां = कर्दमनिमग्नानां, गजानां = द्विपानाम्, उद्धरणे इति शेषः, गजा एव = हस्तिन एव, धुरन्धराः = समर्थाः, भवन्तीति शेषः ॥१७५॥

क्योंकि--सज्जनोंकी आपत्तिको सज्जन ही दूर करनेमें समर्थ होते हैं, जैसे कीचड़में फँसे हाथीको हाथी ही निकाल सकता है ॥१७५॥

यतः—श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां
स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः ।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा
नाशाभिभङ्गाद्विमुखाः प्रयान्ति ॥ १७६ ॥

अन्वयः—यस्य अर्थिनो वा शरणागता वा आशाभिभङ्गात् विमुखाः न प्रयान्ति, मानवानाम् एकः स भुवि श्लाघ्यः स उत्तमः, स सत्पुरुषः धन्यः (अस्ति) ॥ १७६ ॥

श्लाघ्य इति—भुवि = मर्त्यलोके, यस्य = पुरुषस्य अर्थिनः वा=याचकाः वा, शरणागता वा = शरणाभिलाषिणो वा, आशाभिभङ्गात् = आशायाः मनोरथस्य—अभिभङ्गो वैफल्यं तस्मात्—निराशाः सन्तः, विमुखाः = पराङ्मुखाः, न प्रयान्ति = न गच्छन्ति, स एकः = केवलं स एव, मानवानां = मनुष्याणाम् मध्ये, श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः, स उत्तमः = श्रेष्ठः, सत्पुरुषः = सज्जनः, स धन्यः = कृतार्थः, अस्तीति सम्बन्धः ॥१७६॥

संसारमें जिस महापुरुषके याचक वा शरणमें आये हुए निराश होकर लौट नहीं जाते वही एक व्यक्ति मनुष्योंमें प्रशंसनीय है, वही उत्तम सत्पुरुष है और वही धन्य है ॥ १७६ ॥

तदेवं स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः सन्तुष्टाः सुखं निवसन्ति ।

तदिति—तदेवं = एव प्रकारेण, ते = हिरण्यकप्रभृतयः स्वेच्छाहारविहारं = स्वेच्छया आहारविहारस्तं, कुर्वाणाः = कुर्वन्तः, सन्तुष्टाः = प्रसन्नाः (सन्तः) सुखं = सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा, निवसन्ति = निवास कुर्वन्ति ।

इस प्रकार वे हिरण्यक आदि अपनी इच्छानुसार आहार और विहार करते हुए प्रसन्न हो सुखपूर्वक निवास करने लगे ।

अथ कदाचिच्चित्राङ्गनामा मृगः केनापि त्रासितस्तत्रागत्य मिलितः । ततः पश्चादायान्तं मृगमवलोक्य भयं सञ्चिन्त्य मन्थरो जलं प्रविष्टः, मूषिकश्च विवरं गतः काकोऽप्युड्डीय वृक्षमारूढः । ततो लघुपतनकेन सुदूरं निरूप्य भयहेतुर्न कोऽप्यायातीत्यालोचितम् । पश्चात्तद्वचनादागत्य

पुनः सर्वे मिलित्वा तत्रैवोपविष्टाः । मन्थरेणोक्तम्—'भद्र मृग ! स्वागतम् । स्वेच्छयोदकाद्याहारोऽनुभूयताम् । अत्रावस्थानेन वनमिदं सनाथीक्रियताम्' । चित्राङ्गो ब्रूते—"लुब्धकत्रासितोऽहं भवतां शरणागतः, भवद्भिः सह सख्यमिच्छामि" हिरण्यकोऽवदत्—'मित्रत्वं तावदस्माभिः सह भवताऽयत्नेन मिलितम्' ।

अथेति—केनापि = केनचित्, लुब्धकेनेति—शेषः, त्रासितः = भयभीतः कृतः तत्र = मन्थराद्यन्तिके, आयान्तं = आगच्छन्तम्, मृगं = हरिणम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, भयं = भीतिं, संचिन्त्य = अवगत्य, निरूप्य = याथातथ्येन निरीक्ष्य, आलोचितं = विचारितम्, अवस्थानेन = निवासेन स्थित्वा वा, सनाथीक्रियताम् = अलंक्रियताम्, अयत्नेन = अनायासेन, मिलितं = निष्पन्नम् ।

कुछ समय बाद चित्राङ्ग नामका एक हरिण किसी व्याधसे भयभीत हो वहाँ उन लोगोंसे मिला । अनन्तर मृगको भागकर आते हुए देखकर विपत्तिकी शङ्कासे मन्थर (कछुवा) तो पानीमें घुस गया, चूहा बिलके भीतर प्रवेश कर गया और कौवा उड़कर वृक्षपर चढ़ बैठा । बाद लघुपतनक ने अधिक दूर तक अच्छी तरह देखकर निश्चय किया कि भयका कोई भी कारण नहीं है । पीछे उसके वचनसे मन्थर आदि फिर आकर वहाँ बैठ गये । मन्थरने कहा—मित्र मृग ! तुम्हारा स्वागत है । अपनी इच्छाके अनुसार जलादिका आहारकर सुखका अनुभव करो और अपने निवाससे इस वनको सनाथ करो । चित्राङ्गने कहा—मैं व्याधसे भयभीत होकर आप लोगोंकी शरणमें आया हूँ और आप लोगोंके साथ मित्रता चाहता हूँ । हिरण्यकने कहा—मित्रता तो हम लोगोंके साथ तुहारी अनायास ही हो गयी ।

यतः—लोभाद्वाऽथ भयाद्वाऽपि यस्त्यजेच्छरणागतम् ।
ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः ॥ १७७ ॥

अन्वयः—यः लोभात् वा अथ वा भयात् अपि शरणागतं त्यजेत्, मनीषिणः तस्य ब्रह्महत्यासमं पापम् आहुः ॥१७७॥

लोभादिति—यः = यः कोऽपि जनः, लोभात् = धनादिलोभात्, अथवा भयात् = भीतेः, शरणागतं = गृहागतम्, त्यजेत् = मुञ्चेत्, मनीषिणः = विद्वांसः, तस्य, ब्रह्महत्यासम = ब्रह्मणः हत्या समं तुल्यम्, पापं = किल्बिषम्, आहुः = कथयन्ति ॥ १७७ ॥

जो मनुष्य लोभसे अथवा भय से शरणमें आये हुएकी रक्षा नहीं करता उसको

ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है, ऐसा धर्म को जाननेवाले विद्वान् कहते हैं ॥ १७७ ॥

यतः—औरसं कृतसम्बंधं तथा वंशक्रमागतम् ।
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं प्राहुश्चतुर्विधम् ॥ १७८ ॥

अन्वयः—(पण्डिताः) औरसम्, कृतसम्बन्धम्, तथा वंशक्रमागतम्, व्यसनेभ्यः रक्षितं च (एतत्) चतुर्विधं मित्रं प्राहुः ॥१७८॥

औरसमिति—औरसम् = उरसो जातं पुत्रादिकम्, कृतसम्बन्धं = सम्बन्धेन निष्पन्नं श्यालकादि, तथा वंशक्रमागतं = कुलक्रमाल्लब्धम्, अमात्यभृत्यादि, व्यसनेभ्यः = आपद्भ्यः, रक्षितम्=उद्धृतम् (एतत्) चतुर्विधं=चतुःप्रकारकम्, मित्रं = सुहृदं, प्राहुः = कथयन्ति, पण्डिता इति शेषः ॥१७८॥

मित्र चार प्रकारके होते हैं ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं—एक औरस पुत्रादि; दूसरा—सम्बन्धसे साला आदि । तीसरा—कुलपरम्परागत मन्त्री, नौकर आदि । चौथा—जो विपत्तिसे बचावे ॥१७८॥

तदत्र भवता स्वगृहनिर्विशेषं स्थीयताम् । तच्छ्रुत्वा मृगः सानन्दो भूत्वा स्वेच्छाहारं कृत्वा पानीयं पीत्वा जलासन्नतरुच्छायायामुपविष्टः । अथ मन्थरेणोक्तम्-'सखे मृग ! एतस्मिन्निर्जने वने केन त्रासितोऽसि ? कदाचित्किं व्याधाः सञ्चरन्ति ?' मृगेणोक्तम्—'अस्ति कलिङ्गविषये रुक्माङ्गदो नाम नरपतिः । स च दिग्विजयव्यापारक्रमेणागत्य चन्द्रभागानदीतीरे समावासितकटको वर्तते । प्रातश्च तेनात्रागत्य कर्पूरसरः समीपे भवितव्यमिति व्याधानां मुखात्किंवदन्ती श्रूयते । तदत्रापि प्रातरवस्थानं भयहेतुकमित्यालोच्य यथावसरकार्यमारभ्यताम्' । तच्छ्रुत्वा कूर्मः सभयमाह—जलाशयान्तरं गच्छामि, काकमृगावप्युक्तवन्तौ—"एवमस्तु" । ततो हिरण्यको विहस्याह—जलाशयान्तरे प्राप्ते मन्थरस्य कुशलम् । स्थले गच्छतः कः प्रतीकारः ?

तदत्रेति—स्वगृहनिर्विशेषं = निजगृहसमानमस्मद्गृहं मत्वा, स्थीयतां = निवासो विधीयताम्, जलासन्नतरुच्छायायां=जलस्य आसन्नः समीपतरः यः तरुः= वृक्षः तस्य छायायाम्=अनातपे । सञ्चरन्ति = भ्रमणं कुर्वन्ति । कलिङ्गविषये = कलिङ्गदेशे, दिग्विजयव्यापारक्रमेण = दिशां विजयः दिग्विजयस्तस्य व्यापारः तस्य क्रमेण परम्परया समावासितकटकः=सम्यक् आवासितः कटकः सेना येन सः, किंवदन्ती=जनश्रुतिः 'समस्तु समासार्थः किंवदन्ती जनश्रुतिः' इत्यमरः ।

इसलिये तुम अपने घरके समान मेरे घरको समझकर वास करो। यह सुनकर आनन्दपूर्वक अपनी इच्छानुसार भोजन और जल पीकर जलके समीपस्थ वृक्षकी छायामें बैठ गया। मन्थरने कहा—हे मित्र मृग! इस निर्जन वनमें किससे भयभीत हो? क्या कभी-कभी व्याध लोग इधर-उधर घूमते हैं? मृगने कहा—"कलिङ्ग देशमें रुक्माङ्गद नामका एक राजा है, वह दिग्विजय यात्रामें आकर चन्द्रभागा नदीके किनारे अपनी सेनाको ठहराकर रुका है। प्रातःकाल वह इस कर्पूरसरोवरके समीप आयेगा, यह बात व्याध लोगोंके मुँहसे सुनी गयी है। इसलिये सबेरे तक यहाँ भी रहना खतरेसे खाली नहीं है, ऐसा सोचकर यथोचित कार्य करना चाहिये।" यह सुनकर भयभीत हो कछुआ बोला—मैं किसी दूसरे तालाबमें जाता हूँ। काक और मृगने भी कहा—'ठीक है'—चलो। हिरण्यक ने हँसकर कहा—दूसरे तालाबमें पहुँच जानेपर मन्थरके लिए कुशल है, किन्तु पृथ्वीमें चलते समय इसकी क्या दशा होगी?

यतः—अम्भांसि जलजन्तूनां दुर्गं दुर्गनिवासिनाम्।
स्वभूमिः श्वापदादीनां राज्ञां मन्त्री परं बलम्॥ १७९॥

अन्वयः—जलजन्तूनाम् अम्भांसि, दुर्गनिवासिनां दुर्गम्, श्वापदादीनां स्वभूमिः, राज्ञां (च) मन्त्री परंबलं (भवति)॥ १७९॥

अम्भांसीति—जलजन्तूनां = मकरादीनाम्, अम्भांसि = जलानि, दुर्गनिवासिनां = दुर्गे निवसन्तीति तेषां, दुर्ग = 'किला' इति प्रसिद्धम्। श्वापदादीनां = सिंहादीनाम्, स्वभूमिः = जन्मभूमिः, वनादिकमित्यर्थः, राज्ञां = नृपाणां, मन्त्री = अमात्यः, परं = उत्कृष्टम्, बलम् = सामर्थ्यम्, भवतीति शेषः।

क्योंकि—जलमें निवास करनेवाले मत्स्य-मकरादिको जलका, किलेमें रहनेवालोंको किलेका, सिंहादि जंगली जीवोंको अपनी जगहका और राजाको अपने मन्त्रीका पूरा बल रहता है॥१७९॥

तद्धितवचनमवधीर्य महता भयेन विमुग्ध एव तं जलाशयमुत्सृज्य मन्थरश्चलितः। तेऽपि हिरण्यकादयः स्नेहादनिष्टं शङ्कमाना मन्थरमनु गच्छन्तः। ततः स्थले गच्छन् मन्थरः काननं पर्यटता केनापि व्याधेन प्राप्तः। तं गृहीत्वोत्थाप्य धनुषि बद्ध्वा भ्रमणक्लेशात्क्षुत्पिपासाकुलः स्वगृहाभिमुखश्चलितः। अथ मृगकाकमूषकाः परं विषादं गच्छन्तस्तमनुजग्मुः।

तदिति—तद्धितवचनं = तस्य हिरण्यकस्य हितं हितकरं वचनम् = वचः अवधीर्य = तिरस्कृत्य, महता = तीव्रेण, भयेन = साध्वसेन, विमुग्ध इव = मोहं प्राप्त इव, तं = कर्पूरसरो नामकम्, जलाशयं = सरोवरम्, उत्सृज्य = विहाय, मन्थरः, चलितः = प्रतस्थे। तेऽपि हिरण्यकादयः = वृद्धमूषकवायसादयः स्नेहात् = प्रेम्णः, अनिष्टम् = अशुभम्, शङ्कमानाः = शङ्कन्ते इति शङ्कमानाः, मन्थरं = कच्छपम्, अनुगच्छन्ति = पृष्ठतो यान्तीत्यर्थः। ततः = तदनन्तरम्, स्थले = भूमौ गच्छन् = व्रजन्, मन्थरः = कच्छपः, काननम् = अरण्यम्, पर्यटता = भ्रमता, केनापि = केनचन, व्याधेन = लुब्धकेन, प्राप्तः = गृहीतः तं = कच्छपं, गृहीत्वा = उत्थाप्य, धनुषि = कार्मुके, बद्ध्वा, भ्रमणक्लेशात् = वनात् वनपर्यटनदुःखात्, क्षुत्पिपासाकुलः = पातुमिच्छा पिपासा, क्षुच्च पिपासा च इति क्षुत्पिपासे ताभ्याम् आकुलः = व्याकुलः, स्वगृहाभिमुखं = स्वस्य गृहं भवनम्—तस्य अभिमुखं दिशि, चलितः = प्रस्थितः, अथ हिरण्यकादयः, परं = अत्यन्तम् अनिर्वचनीयमिति यावत्, विषादं = क्लेशम्, गच्छन्तः = अनुभवन्तः, तं व्याधेन गृहीतं कच्छपम्, अनुजग्मुः = अनुवव्रजुः।

उस (हिरण्यक) के हित वचनोंको न सुनकर अत्यन्त भयसे मुग्ध हो वह (मन्थर) उस जलाशयको छोड़कर चल दिया। बाद वे हिरण्यक आदि भीप्रेमके कारण विपत्तिकी आशंका करते हुए उसके पीछे चल पड़े। अनन्तर रास्ते में जाते हुए मन्थरको जंगलमें घूमनेवाले किसी व्याधने पकड़ लिया। और उठाकर धनुषमें बाँध घूमते हुए भूख और प्याससे व्याकुल हो अपने घरकी ओर चल पड़ा। इसके बाद वे (कौवा, मृग और चूहा) अत्यन्त दुखी हो उस (व्याध) के पीछे-पीछे चलने लगे।

ततो हिरण्यको विलपति—

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति॥ १८०॥

अन्वयः—अर्णवस्य पारम् इव यावत् एकस्य दुःखस्य अन्तं न गच्छामि तावत् द्वितीयं मे समुपस्थितं (भवति, सत्यं) छिद्रेषु अनर्थाः बहुलीभवन्ति।

एकस्येति—अर्णवस्य = समुद्रस्य, पारमिव = अपरतटमिव, यावत् = यावत्कालम्, एकस्य, दुःखस्य = क्लेशस्य, अन्तं = पारम् अहं न गच्छामि = न यामि, तावत् = तावदेव, मे द्वितीयम् = अपरं, दुःखम्, समुपस्थितं = प्राप्तम्। सत्यमुक्तं भवति-छिद्रेषु = गर्त्तेषु त्रुटिषु वा, अनर्थाः = विपत्तयः बहुलीभवन्ति = वर्द्धन्ते ॥१८०॥

बाद हिरण्यक विलाप करने लगा—समुद्रके समान असीम क्लेश (द्रव्यापहरण वा मित्रोंकी विपत्तिरूप) का जब तक पार नहीं कर जाता हूँ तब तक ही दूसरा दुःख पहुँच जाता है। ठीक है, एक विपत्तिके साथ अनेक आपत्तियाँ आ पड़ती हैं ॥१८०॥

स्वाभाविकं तु यं मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति ॥ १८१ ॥

अन्वयः—यत् तु स्वाभाविकं मित्रं (भवति, तत्) भाग्येन एव अभिजायते, तत् (च) अकृत्रिमसौहार्दम् आपत्सु अपि न मुञ्चति ॥

स्वाभाविकमिति—यत्, स्वाभाविकं = नैसर्गिकम्, मित्रं = सुहृद्, अस्ति तत् भाग्येन—अदृष्टगुणेन, अभिजायते = सम्पद्यते । तत्, अकृत्रिमसौहार्दं = स्वाभाविकं मैत्र्यम्, आपत्स्वपि = महतीषु विपत्स्वपि न मुञ्चति = न त्यजति ॥

स्वाभाविक मित्र अत्यन्त भाग्यसे मिलते हैं और वह सहज प्रेम विपत्तिके समय भी नहीं छूटता ॥१८२॥

न मातरि न दारेषु न सोदर्य्ये न चात्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे ॥ १८२ ॥

अन्वयः—पुंसः स्वभावजे मित्रे यादृक् विश्वासः (भवति) तादृशः मातरि न, दारेषु न, सोदर्ये न, आत्मजे च न (भवति) ॥१८२॥

नेति—पुंसां—पुरुषाणाम्, स्वभावजे = स्वाभाविके, मित्रे = सुहृदि, यादृक् = यादृशः, विश्वासः = प्रत्ययः, भवति, तादृशः = तथाविधः विश्वासः मातरि न = जनन्यां न, दारेषु न = स्त्रीषु न, सोदर्ये = सहोदरे भ्रातरि न (तथा) आत्मजे = आत्मनो जात आत्मजस्तस्मिन् पुत्रे न भवतीति सर्वत्र क्रियासम्बंधः कार्यः ॥ १८२ ॥

मनुष्योंका स्वाभाविक मित्रोंमें जैसा विश्वास होता है, वैसा विश्वास मातामें, स्त्रियोंमें, सहोदर भाईमें और पुत्रमें नहीं होता है ॥१८२॥

इति मुहुर्विचिन्त्य , अहो दुर्दैवम् !

इतीति—मुहुः = पुनः, विचिन्त्य = विचार्य अहो = खेदातिशयेऽव्ययपदमिदम् । दुर्दैवं = दुर्भाग्यम् अस्ति ।

इस प्रकार बारम्बार सोचकर हिरण्यक बोला अरे ? 'दुर्दैव' ।

यतः—स्वकर्मसंतानविचेष्टितानि

कालांतरावर्त्तिशुभाशुभानि ।

इहैव दृष्टानि मयैव तानि
जन्मान्तराणीव दशांतराणि ॥१८३॥

अन्वयः—स्वकर्मसन्तानविचेष्टितानि कालान्तरावर्तिशुभाशुभानि तानि दशान्तराणि, मया जन्मान्तराणि इव इह दृष्टानि एव ॥१८३॥

स्वकर्मेति—स्वकर्मसन्तानविचेष्टितानि = स्वस्य कर्मणां यत्सन्तानं परम्परा-तस्य विचेष्टितानि—चेष्टारूपाणि, निजकर्तव्यकृत्यानीति यावत् । कालान्तरा-वर्तिशुभाशुभानि = कालान्तरे जन्मान्तरे आवर्त्तीनि पुनः पुनर्लभ्यानि शुभानि च अशुभानि च—इष्टानिष्टानि जन्मान्तरे पौनः पुन्येन प्राप्याणि फलानीति भावः । जन्मान्तराणीव = अन्यजन्मानीव, मया = हिरण्यकेन, तानि = सर्वाणि दशान्तराणि=अन्या दशाः, तानि दशान्तराणि = विभिन्नदशाः, इहैव = अस्मिन्नेव जन्मनि, दृष्टानि = अनुभूतानि ॥ १८३ ॥

क्योंकि—अपने कर्म-परम्परासे किये गये और कालान्तर में शुभ और अशुभ फलको देनेवाले जन्मान्तरोंके समान दशान्तरोंको मैंने यहीं देख लिया (भोग लिया) ॥१८३॥

अथवा इत्थमेवैतत्—

अथवा = यद्वा, एतत् = दृश्यमानमिदं जगत्, इत्थमेव = ईदृग्विधमेव ।

अथवा दुनिया ही ऐसी है—

कायः सन्निहितापायः सम्पदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम् ॥ १८४ ॥

अन्वयः—कायः सन्निहितापायः (अस्ति) सम्पदः आपदां पदं (सन्ति) समागमाः सापगमाः (भवति) उत्पादि सर्वं भंगुरं (भवति) ॥ १८४ ॥

काय इति—कायः = शरीरम्, सन्निहितापायः = सन्निहितः समीपस्थितः अपायः नाशः यस्य सः अस्ति, सम्पदः = धनानि, आपदां = विपत्तीनाम्, पदम् = स्थानं सन्तीति भावः, समागमाः = मित्रादिसज्जनसंयोगाः, सापगमाः = अपगमेन वियोगेन सहिताः, सन्ति । एवम् उत्पादि = उत्पद्यत इति तत् उत्पत्तिशीलं = वस्तु सर्वं = सकलम्, भंगुरं = विनश्वरम्, ध्वंसावसानकमिति यावत् भवतीति भावः ॥ १८४ ॥

शरीर एक न एक दिन अवश्य नष्ट होगा, धन विपत्तियों का स्थान है । किसी मित्रादिका मेल भी स्थिर नहीं है, अतः निश्चित है कि उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थ नाशवान् (क्षणभङ्गुर) होते हैं ॥१८४॥

पुनर्विमृश्याह—शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम्।
केन रत्नमिदं सृष्टं 'मित्र' मित्यक्षरद्वयम् ॥ १८५ ॥

अन्वयः—शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनं मित्रम् इति अक्षरद्वयं इदं रत्नं केन सृष्टम् (अस्ति) ॥१८५॥

शोकेति—शोकारातिभयत्राणं = शोक एव अरातिः = शत्रुः तस्मात् यत् भयं तस्मात्त्राणं रक्षणं येन तत्, प्रीतिविश्रम्भभाजनं = प्रीतेः स्नेहस्य विश्रम्भस्य विश्वासस्य च भाजनं = पात्रम्, मित्रमिति = सुहृदिति, इदम् = एतत्, अक्षरद्वयं = वर्णद्वयं, रत्नं = रत्नतुल्यम्, केन = महापुरुषेण, सृष्टम् = उत्पादितम् ॥१८५॥

फिर हिरण्यक विचारकर बोला—शोकरूपी शत्रुके भयसे बचानेवाला स्नेह और विश्वासका पात्र, यह दो अक्षरका 'मित्र' रूपी बहुमूल्य रत्न किस महापुरुषने बनाया है ॥ १८५ ॥

किञ्च—मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम्।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ।१८६॥

अन्वयः—यत् मित्रं नयनयोः प्रीतिरसायनं चेतसः आनन्दनं मित्रेण सह सुख-दुःखयोः पात्रं (च) भवेत्, तत् दुर्लभं (भवति)। ये च समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुलाः अन्ये सुहृदः ते सर्वत्र मिलन्ति, विपत् तु तेषां तत्त्वनिकषग्रावा (भवति) ॥ १८६ ॥

मित्रमिति—यत्, मित्रं = सुहृद्, नयनयोः = नेत्रयोः, प्रीतिरसायनं = स्नेहात्मकं महौषधम्, चेतसः = हृदयस्य, आनन्दनम् = = आह्लादकरम्, सुखदुःखयोः = सुखं दुःखं च तयोः—शर्मणि कष्टे च, मित्रेण = सुहृदा, सह, पात्रं = स्थानम्, भाजनमिति यावत्, तत् = मित्रं, दुर्लभम् = दुष्प्रापं वर्तते, ये च, समृद्धिसमये = सम्पत्त्याधिक्यकाले, द्रव्याभिलाषाकुलाः = द्रव्यस्य धनस्य अभिलाषेण = मनोरथेन लिप्सया वा आकुलाः = व्याकुलाः, अन्ये = इतरे, सुहृदः = मित्राणि, ते, सर्वस्मिन् स्थाने मिलन्ति = प्राप्नुवन्ति, तेषां = धनैषिणां सुहृदाम् विपत् = आपत्तिः, तु, तत्त्वनिकषग्रावा = तत्वस्य सौहार्दस्य, निकषग्रावा = परीक्षणशिला कसौटीति प्रसिद्धः, (भवतीति शेषः) ॥ १८६ ॥

जो मित्र आंखोंको आनन्द देनेवाली औषधिके समान हो, और हृदयको प्रसन्न करनेवाला हो तथा सुख और दुःखमें एक दूसरेका साथ

दे, ऐसा मित्र इस संसारमें मिलना कठिन है। जो सम्पत्तिमें धनके लालचसे व्याकुल हो मित्रताकरते हैं, वे सर्वत्र मिलते हैं। किन्तु मित्रोंको परीक्षा करनेके लिये विपत्ति ही कसौटी है ॥ १८६ ॥

इति बहु विलप्य हिरण्यकश्चित्रांगलघुपतनकावाह–'यावदयं व्याधो वनान्न निःसरति तावन्मन्थरं मोचयितुं यत्नः क्रियताम्।' तावूचतु:– "सत्वरं कार्यमुच्यताम्" हिरण्यको ब्रूते—"चित्रांगो जलसमीपं गत्वा मृतमिवात्मानं दर्शयतु, काकश्च तस्योपरि स्थित्वा चञ्च्वा किमपि विलिखतु। नूनमनेन लुब्धकेन तत्र कच्छपं परित्यज्य मृगमांसार्थिना सत्वरं गन्तव्यम्। ततोऽहं मन्थरस्य बन्धनं छेत्स्यामि। सन्निहिते लुब्धके भवद्भ्यां पलायितव्यम्।"

इतीति—इत्येवं प्रकारेण बहुविलप्य = अतिरोदनं कृत्वा, हिरण्यकः = वृद्धमूषकः, चित्राङ्गलघुपतनकौ = हरिणवायसौ, आह = उवाच। यावत् = यावत् पर्यन्तम्, अयं = पुरो दृश्यमानः, व्याधः = लुब्धकः, वनात् = अरण्यात्, न निःसरति = न बहिर्गच्छति, तावत् = तावत्कालम्, मन्थरं = कच्छपम्, मोचयितुं = बन्धनात्-स्वतन्त्रयितुम्, यत्नः = उपायः, क्रियतां = प्रस्तूयताम्। तौ ऊचतुः = मृगकाकौ ब्रूतः, सत्वरं = शीघ्रम्, कार्यं = कर्तव्यम्, उच्यतां = कथ्यताम्। हिरण्यको ब्रूते = मूषिकराजो वक्ति, चित्राङ्गः = मृगः, जलसमीपं = जलपार्श्वम्, गत्वा = एत्य, मृतमिव = पञ्चत्वं गतमिव, आत्मानं = स्वशरीरम्, दर्शयतु। काकः = वायसः, तस्य = मृगस्य, उपरि = शरीरोपरि, स्थित्वा = उपविश्य, चञ्च्वा = मुखाग्रेण, किमपि = मिथ्या, विलिखतु = विकर्षतु, नूनं = निश्चयम्, मृगमांसार्थिना = मृगस्य मांसम् अर्थयते इति मृगमांसार्थी तेन, अनेन = अमुना, व्याधेन = लुब्धकेन, तत्र = जलसमीपे, कच्छपं = मन्थरम्, परित्यज्य = विहाय, सत्वरं = शीघ्रम्, गन्तव्यम्। ततः = तदनन्तरम्, अहं = हिरण्यकः, मन्थरस्य = कच्छपस्य, बन्धनं = जालबन्धनं, छेत्स्यामि, सन्निहिते = समीपागते, लुब्धके = मृगयौ, भवद्भ्यां = युवाभ्याम्, पलायितव्यम् = स्वरक्षार्थमन्यतो गन्तव्यम्।

इस प्रकार—अनेक तरहसे विलापकर हिरण्यकने चित्राङ्ग और लघुपतनकसे कहा— जबतक यह व्याध वनसे बाहर नहीं निकल जाता तबतक कछुएको छुड़ानेका उपाय करो।' वे दोनों बोले–"शीघ्र वह उपाय कहिये।" हिरण्यकने कहा— "चित्राङ्ग जलके पास जाकर मरे हुएकी तरह अपनेको दिखावे और लघुपतनक उसके ऊपर बैठकर अपनी चोंचसे झूठे हीकुछ-कुछ खोदे।

यह देख मृगमांसको चाहनेवाला व्याध कछुएको छोड़कर अवश्य ही वहाँ जायगा। इसी बीच, मैं मन्थर (कछुए) के बन्धनोंको काट दूँगा। फिर जब व्याध आप लोगोंके समीप पहुँचे तो आप लोग भाग जाइयेगा।''

चित्रांगलघुपतनकाभ्यां शीघ्रं गत्वा तथाऽनुष्ठिते सति स व्याधः श्रान्तः पानीयं पीत्वा तरोरधस्तादुपविष्टस्तथाविधं मृगमपश्यत्। ततः कर्तरिकामादाय प्रहृष्टमना मृगान्तिकं चलितः। तत्रान्तरे हिरण्यकेन आगत्य मन्थरस्य बन्धनं छिन्नम्। कूर्मः सत्वरं जलाशयं प्रविवेश। स मृग आसन्नं तं व्याधं विलोक्योत्थाय पलायितः। प्रत्यावृत्य लुब्धको यावत्तरुतलमायाति तावत्कूर्ममपश्यन्नचिन्तयत्—उचितमेवैतन्ममासमीक्ष्यकारिणः।

चित्राङ्गेति—चित्रांगलघुपतनकाभ्यां = चित्रांगश्च लघुपतनकश्च इति चित्रांगलघुपतनकौ ताभ्याम् तदाख्यमृगवायसाभ्यां, तथाऽनुष्ठिते सति = हिरण्यकवचनानुसारेणाचरिते सति, स व्याधः = स मृगयुः, श्रान्तः = भ्रमणेन परिश्रान्तः, पानीयं = जलम्, पीत्वा = निपीय, तरोः = वृक्षस्य, अधस्तात् = अधोभागे उपविष्टः सन् तथाविधं = मृतमिव, मृगं = हरिणम्, अपश्यत् = ददर्श। ततः = तदनन्तरम्, कर्तरिकां = छुरिकाम्, आदाय = गृहीत्वा, प्रहृष्टमनाः = प्रसन्नचेताः, मृगान्तिकं = मृगस्य अन्तिकं हरिणसमीपम्, चलितः = प्रस्थितः। तत्रान्तरे = तस्मिन्नेव समये, हिरण्यकेन = मूषकेण, आगत्य = अभ्युपेत्य, मन्थरस्य = कच्छपस्य, बन्धनं छिन्नं = भिन्नम्, कर्तितमिति यावत्। स कूर्मः = कच्छपः, सत्वरं = शीघ्रम्, जलाशयं = सरोवरम्, प्रविवेश। सः = प्रसिद्धः, मृगः = चित्रांगः, आसन्नं = समीपागतम्, तं व्याधं = तं लुब्धकम्, विलोक्य = अवलोक्य, उत्थाय = समुत्थाय-पलायितः = अपलायिष्ट, प्रत्यावृत्य = पुनरागत्य, लुब्धकः = व्याधः, यावत् = यदा, तरुतलम् = वृक्षाधस्तात्, आयाति = आगच्छति, तावत् = तदा, कूर्म कच्छपम्, अपश्यन् = अनवलोकयन्, अचिन्तयत् = विचारयामास, एतत् = इदम् = हस्तागतवस्तुनो नाश इत्यर्थः, असमीक्ष्यकारिणः = अविचार्यकार्यकारिणः, मम = व्याधस्य उचितमेव = योग्यमेवेति।

हिरण्यकके कहे अनुसार चित्रांग और लघुपतनकने शीघ्र जाकर सब कार्यको किया। बाद थके एवं वृक्षके नीचे बैठे हुए उस व्याधने जल पीकर उस प्रकार (कौवेसे खोदे जाते हुए) मृगको देखा। बाद में प्रसन्न हो छुरी लेकर मृगकी ओर चला। इसी बीच हिरण्यकने आकर कछुएका बन्धन काट डाला और

वह कछुआ शीघ्र ही तालाबमें घुस गया, एवं हरिण भी अपने नजदीक आये हुए बहेलियेको देख उठकर भाग चला। लौटकर जब व्याध वृक्षके नीचे आया तो कछुएको भी न देख सोचने लगा—मेरे ऐसे बिना विचारे कार्य करने-वाले पुरुषकी यह गति उचित ही है।

यतः—यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च॥ १८७॥

अन्वयः—यः ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते, तस्य ध्रुवाणि नश्यन्ति अध्रुवं च नष्टम् एव॥ १८७॥

य इति—यः=पुरुषः, ध्रुवाणि=निश्चितानि, हस्तगतानीति यावत् परि-त्यज्य=विहाय, अध्रुवाणि=अनिश्चितानि, अन्यत्र स्थितानि वस्तूनि निषेवते =आश्रयते, प्राप्तुमिच्छतीति यावत्। तस्य=पुंसः, ध्रुवाणि=हस्तस्थितानि वस्तूनि नश्यन्ति, हि=इति चार्थे (ह्यध्रुवाणीति पाठे) अध्रुवम्=अनिश्चितम् अस्थिरमिति यावत्, नष्टमेव=पूर्वतोऽप्राप्तमेव, हस्तगतत्वाभावात्॥ १८७॥

क्योंकि—जो पुरुष निश्चित (स्थिर-हाथमें आये हुए) पदार्थको छोड़कर अनिश्चितकी ओर दौड़ता है, उसका निश्चित अर्थात् हाथ में आया हुआ पदार्थ नष्ट हो जाता है, और अनिश्चित तो नष्ट ही है॥ १८७॥

ततोऽसौ स्वकर्मवशान्निराशः कटकं प्रविष्टः। मन्थरादयः सर्वे त्यक्तापदः स्वस्थानं गत्वा तथा सुखमास्थिताः।

तत इति—ततः=तदनन्तरम्, असौ=व्याधः, स्वकर्मवशात्=स्वादृष्ट-वशात्, निराशः=हताशः, कटकं=स्वसैन्यावासस्थानम्, त्यक्तापदः=त्यक्ता आपत् यैस्ते मुक्तविपत्तयः मन्थरादयः सुखमास्थिताः=सुखेनावसन्।

पश्चात् वह अपने प्रारब्ध (भाग्य) को कोसता हुआ निराश होकर अपने सैन्यावासमें चला गया और मन्थर आदि भी आपत्तिसे मुक्त हो अपने स्थानपर जाकर सुखपूर्वक निवास करने लगे।

अथ राजपुत्रैः सानन्दमुक्तम्—"सर्वे श्रुतवन्तः सुखिनो वयम् सिद्धं नः समीहितम्।" विष्णुशर्मोवाच—एतावता भवतामभिलषितं सम्पन्नम्, किन्त्वपरमपीदमस्तु।

अथेति—अथ=अनन्तरम्, सानन्दम्=आनन्देन सहितं सानन्दम्, क्रिया-विशेषणमिदम्, समीहितम्=अभीष्टम्। अभिलषितं=मनोरथः, सम्पन्नं=सिद्धम्। किंतु=पुनः, अपरमपि=अन्यदपि, इदं=वक्ष्यमाणम् अस्तु=सम्पद्यताम्।

बाद राजपुत्रोंने कहा—"हम लोग (आपके कहे हुए) मित्रलाभ प्रसङ्ग को सुने और सुखी हुए। हम लोगों का मनोरथ सिद्ध हुआ।" विष्णुशर्मा बोले—"इतनेमें आप लोगों की अभिलाषा पूरी हुई, किन्तु यह और भी हो—"

मित्रं प्राप्नुत सज्जना जनपदैर्लक्ष्मीः समालम्ब्यतां
भूपालाः परिपालयन्तु वसुधां शश्वत्स्वधर्मे स्थिताः।
आस्तां मानसतुष्टये सुकृतिनां नीतिर्नवोढेव वः
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवांश्चन्द्रार्द्धचूडामणिः ॥ १८८ ॥

इति हितोपदेशे मित्रलाभो नाम प्रथमः कथाप्रसङ्गः।

अन्वयः—सज्जनाः ! (यूयं) मित्रं प्राप्नुत, जनपदैः लक्ष्मीः समालम्ब्यताम्, भूपालाः शश्वत् स्वधर्मे स्थिताः (सन्तः) वसुधां परिपालयन्तु, वः नीतिः नवोढा इव सुकृतिनां मानसतुष्टये आस्ताम् चन्द्रार्धचूडामणिः भगवान् (शंकरः) जनस्य कल्याणं कुरुताम् ॥ १८८ ॥

मित्रमिति—सज्जनाः=सत्पुरुषाः, (यूयम्) मित्रं = सुहृदं, प्राप्नुत = लभध्वम्। जनपदैः = देशैः, लक्ष्मीः=श्रीः, समालम्ब्यताम् = आसाद्यताम्। भूपालाः=राजानः, शश्वत् = नित्यम्, स्वधर्मे=स्वमार्गे, स्थिताः सन्तः, वसुधां= पृथ्वीम्, परिपालयन्तु = रक्षन्तु। वः = युष्माकम्, नीतिः = राजनीतिः, नवोढेव= नवपरिणीता स्त्रीव। सुकृतिनां=विदुषाम्, मानसतुष्टये = चित्तप्रसादनाय, आस्ताम् = भवतु, भगवान् = ऐश्वर्यवान्, चन्द्रार्धचूडामणिः = चन्द्रार्धः—इन्दु-खण्डः चूडामणिः शिरोभूषणम् यस्य सः—शिवः, जनस्य = लोकस्य कल्याणं = मंगलम्, कुरुतां = जनयतामिति ॥ १८८ ॥

सज्जन (आप) लोग सच्चे मित्रोंको प्राप्त करें, देश लक्ष्मीको प्राप्त करे, राजा लोग सर्वदा अपने धर्ममें रहकर पृथ्वीकी रक्षा करें, और आप लोगों की यह राजनीति नवविवाहिता स्त्रीके समान विद्वानोंके अन्तःकरणको प्रसन्न करे, तथा अर्धचन्द्रको धारण करनेवाले भगवान् शंकरजी मनुष्योंका कल्याण करें ॥ १८८ ॥

इति श्रीविश्वनाथशर्मविरचिता हितोपदेशे मित्रलाभीये
विमलाख्य संस्कृत-हिन्दीव्याख्या
समाप्ता।

श्लोकानुक्रमणी

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

(मूलपाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका,
नोटस् एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री सहित)

अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थाङ्क)	सं० जगदीशलाल शास्त्री
अभिज्ञानशाकुन्तलम् (सम्पूर्ण)	सुबोधचन्द्र पन्त
अभिषेक नाटक (भासकृत)	मोहनदेव पन्त
अमर-भारती	रामचन्द्र द्विवेदी व रविशंकर नागर
कथासरित्सागर (सोमदेव-कृत)	जगदीशलाल शास्त्री
काव्यदीपिका	परमेश्वरानन्द शास्त्री
काव्य-प्रकाश	रामसागर त्रिपाठी
कादम्बरी (पूर्वार्द्ध)(उत्तरार्द्ध)	मोहनदेव पन्त
चन्द्रालोक	सुबोधचन्द्र पन्त
दशकुमारचरित (सम्पूर्ण)	सुबोधचन्द्र पन्त एवं विश्वनाथ झा
चित्रकाव्यकौतुकम् (संस्कृत)	रामरूप पाठक, सं० प्रेमलता शर्मा
दशरूपक	बी० एन० पाण्डेय
ध्वन्यालोक (तृतीय व चतुर्थ उद्योत)	रामसागर त्रिपाठी
पंचतन्त्र (सम्पूर्ण)	श्यामाचरण पाण्डेय
महाश्वेता वृत्तान्त	सं० मोहनदेव पन्त
मालविकाग्निमित्र	संसारचन्द्र व मोहनदेव पन्त
मृच्छकटिक	रमाशंकर त्रिपाठी
मेघदूत (सम्पूर्ण)	संसारचन्द्र
रत्नावली नाटिका	बी० एन० पाण्डेय
विक्रमोर्वशीयम्	रामविलास त्रिपाठी
वृत्तरत्नाकर	श्रीधरानन्द शास्त्री
वेणीसंहार	रमाशंकर त्रिपाठी
शिशुपालवध (१-४ सर्ग)	जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
सौन्दरनन्द काव्य	सूर्यनारायण चौधरी
साहित्यदर्पण	शालिग्राम शास्त्री

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

मूल्य : रु० २२